हिन्दी के महावीर प्रबन्ध काव्यों का आलोचनात्मक अध्ययन

डॉ. दिव्यगुणाश्री

एम.ए.पीएच.डी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिन्दी के महावीर प्रबन्ध काव्यों का आलोचनात्मक अध्ययन

डॉ. दिव्यगुणाश्री
एम.ए., पीएच.डी.

विचक्षण स्मृति प्रकाशन
अहमदाबाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रेरिका	:	प. पू. स्व. प्रवर्तिनी जैन-कोकिला श्री विचक्षणश्रीजी म.सा. की सुशिष्या शतावधानी शासनज्योति प. पू. श्री मनोहरश्रीजी म.सा. एवं विदुषीवर्या प.पू. श्री मुक्तिप्रभाश्रीजी म.सा.
अर्थ सौजन्य	:	जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक खरतरगच्छ संघ सांचोर (राज.)
प्रथम संस्करण	:	मई १९९८
मूल्य	:	सदुपयोग
प्राप्तिस्थान	:	श्री मुनिसुव्रतस्वामी जैन मंदिर, दादासाहेबना पगलां, नवरंगपुरा, अहमदाबाद-३८० ००९.
लेआउट टाइपसेटिंग	:	मयंक शाह, रमणीय ग्राफीक्स, ४४/४५१, ग्रीनपार्क एपार्टमेन्ट, सोला रोड नारणपुरा, अहमदाबाद-३८० ०१३. (फोन : ७४५१६०३)
मुद्रक	:	सर्वोदय ओफसेट, १३, गजानंद एस्टेट, ईदगा चोकी के पास, दरियापुर, अहमदाबाद-१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प. पू. स्व. विश्वप्रेम प्रचारिका प्रवर्तिनी श्री विचक्षणश्रीजी म.सा.

जन्म	:	वि.सं. १९६९, अमरावती
नाम	:	दाखीबाई
दीक्षा	:	वि.सं. १९८१, जेठ वदी ५ पीपाड़
दीक्षा नाम	:	विचक्षणश्री
शिक्षागुरु	:	स्वर्णश्रीजी
दीक्षागुरु	:	जतनश्रीजी
स्वर्गवास	:	वि.सं. २०३७, जयपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परम वंदनीया, शासनज्योति, शासनउत्कर्षिणी
गुरुवर्यश्री मनोहर श्रीजी म.सा.

गुरुवर्या आप शासन के ताज है
आपकी सरलता क्षमता पर हमें नाज है,
तुम जीओ हजारों वर्ष गूंजता नाद है
नत मस्तक हो यही मंगल कामना का साज है ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स.....म.....र्प.....ण

समर्पित है यह उन मातृ- वत्सला
जीवन-निर्मात्री, संयम-प्रदात्री
प्रातःस्मरणीय परमश्रद्धेय
शासनज्योति, शतावधानी
गुरुवर्या श्री मनोहरश्रीजी म.सा. को
जिन की प्रेरणा
जिनका मार्गदर्शन
इस लेखन का
आधार ही नहीं
वरन् मेरे
जीवन की
प्रत्येक दिशा को
आलोकित करनेवाला
प्रकाश पुंज
है....
उन्हें सादर सविनय सविधि
कोटिश वंदन-प्रतिवंदन
-श्री मनोहरचरणरज,
दिव्यगुणाश्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आशीर्वचन

"स्वान्तसुखाय परजनहिताय" इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर साध्वी दिव्यगुणाश्रीजीने जनमानस को आत्मोन्मुख बनाने के लिए "हिन्दी के महावीर प्रबन्ध काव्यों का आलोचनात्मक अध्ययन" इस विषय पर शोध कार्य किया है।

साहित्य दर्पण का कार्य करता है। जिस प्रकार दर्पण मुखाकृति पर लगे हुए दागों का निरीक्षण करता है ठीक उसी प्रकार साहित्य भी जन-मानस को सही दिग्दर्शन कराने में सक्षम है। भौतिकता की चकाचौंध से भ्रमित पथिकों को आत्म विकास का मार्ग दिखाता है। साध्वीजीने कठिन परिश्रम करके प्रस्तुत शोधग्रन्थ को सम्पूर्ण कर जिनशासन का गौरव बढ़ाया है।

विषय का तलस्पर्शी एवं सूक्ष्म ज्ञानार्जन करने के लिए लक्ष्य निर्धारण आवश्यक है। इसी हेतु साध्वीजीने पीएच.डी. करने का निर्णय किया। अध्ययनशील रहने में कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। इसमें भी श्रमण पर्याय तो संघर्ष से परिपूर्ण होता है। इसके बावजूद भी अथक् प्रयास करके इन्होने साहित्यसेवा की यह बहुत ही सराहनीय कार्य है।

अन्तःकरण से यही मंगल आशीर्वाद देते हैं कि भविष्य में इसी प्रकार संयम-साधना के साथ साथ साहित्य साधना चलती रहे।

१५-४-९८ विचक्षण-पदरेणू

अहमदाबाद मनोहरश्री

मुक्तिप्रभाश्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रद्धासह.....शुभकामना

पू. आदरणीय साध्वी श्री मनोहरश्रीजी म.सा. की शिष्या आ. दिव्यगुणाश्रीजी तपस्विनी साध्वी है। आत्मकल्याण की भावना से त्यागपथ की पथिक साध्वी श्री को ज्ञान-प्राप्ति की उतनी ही पिपासा है। चारित्र्य के साथ ज्ञान प्राप्ति की उनकी तीव्रेच्छा ही उनका यह शोधग्रंथ है।

जब संघ के महानुभाव विशेषकर श्री नारणचंद मेहता आदिने मुझसे आग्रह किया कि मैं साध्वीजी के शोधकार्य में निर्देशक बनूं। मैं बड़ी दुविधा में पड़ा। जो स्वयं मार्गदर्शक हैं....उनका क्या मार्गदर्शन करूँ ? पर व्यावहारिक दृष्टि से यह मैने स्वीकार किया और कुछ बैठकों के पश्चात साध्वी जी की दृढ़ता, शोधकार्य की तीव्रता आदि के परीक्षण के पश्चात् विषय तय हुआ- "हिन्दी के महावीर-प्रबंध काव्यों का आलोचनात्मक अध्ययन।"

साध्वी दिव्यगुणाश्रीजी श्वे. मूर्तिपूजक खरतरगच्छ की परंपरा में दीक्षित साध्वी है। उन्हें भ. महावीर पर तटस्थ कार्य करना था और वह उन्होने बड़ी ही तटस्थता से यह कार्य किया। भ. महावीर के विषय में दिगंबर और श्वेतांबर मान्यतायें क्या हैं इन्हें उन्हीं के मतानुसार रखकर कहीं भी अपनी निजी साम्प्रदायिक मान्यताओं को हावी नहीं होने दिया। शोधग्रंथ का यह अध्याय "भ. महावीर के संबंध में दिगंबर-श्वेतांबर मान्यतायें" अपने आप में अनूठा है।

साध्वीजीने भारतवर्ष में भ. महावीर पर लिखे गये प्रबंधों की खोज की, उनकी समीक्षा की और विविध कवियों के दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए भ. महावीर की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवनशैली, सिद्धांतो का प्रतिपादन करते हुए उनका नए संदर्भो में मूल्यांकन किया।

सविशेष रूप से नारी का स्थान, हिंसा का व्यापक समर्थन और वर्तमान संदर्भो में उसकी उपयोगिता, प्रबंधो में प्रस्तुत राष्ट्रीयता, आर्थिक समस्या, सामाजिक, धार्मिक,राजनैतिक परिवेश के साथ जैनधर्म-दर्शन के सिद्धांतों की समीक्षा प्रस्तुत की है।

शोधार्थी साध्वी जी ने इन प्रबंधों का भावपक्ष एवं कलापक्ष की दृष्टि से मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। कलापक्ष की दृष्टि से प्रबंधों की समीक्षा उनकी विशेष उपलब्धि है। कुल मिलाकर यह उनकी विशेष उपलब्धि हैं कि वे महावीर के जीवन-सिद्धांतो के प्राचीन-अर्वाचीन संदर्भों को जोड़ सकीं।

मैं साधुवाद देता हूँ साध्वीजी के अथक परिश्रम को, मातृभाषा हिन्दी न होते हुए भी उनका हिन्दीमें प्रबंध प्रस्तुत कर अपनी राष्ट्रीय भावना का परिचय देने पर। पादविहारी साध्वी जी विहार में भी अपने अध्ययन के प्रति अधिक जागरुक रहीं। इन बाह्य परेशानियों में भी हिम्मत नहीं हारी। मुझे आश्चर्य भी था कि जिन्हें इस डिग्री से कोई भौतिक लाभ नहीं हैं वे कितनी तन्मयता से कार्यरत हैं। पर, वास्तव में जिन्हें कोई लोभ -लालच नहीं वे ही कुछ अच्छा कर पाते हैं इसकी वे उदाहरण बन गईं। उन्होंने जिस प्रकार ग्रंथालयों में समाधि लगाकर अध्ययन किया वह तारीफ के योग्य है। उनके इस ज्ञान-यज्ञ में उनकी गुरुणी पू. साध्वी मनोहर श्री जी म.सा. एवं साथी संघस्थ एवं साध्वीगण का सहयोग-प्रेरणा-मार्गदर्शन एवं सुविधा प्रदान करने की भावना सराहनीय रही। संघ के श्रावकों का सहयोग भी प्रसंशनीय रहा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुझे विश्वास है कि यह शोधप्रबंध भ. महावीर के जीवन-कृत्य, सिद्धांतो पर नई दृष्टि प्रदान करेगा और भविष्य के जिज्ञासुओं को प्रेरित भी करेगा। मैं पुनः साध्वीजी के इस प्रयास की अनुमोदना करता हूँ उन्हें अपनी श्रद्धा के साथ शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

२५-३-९८ डॉ. शेखरचन्द्र जैन

अहमदाबाद निर्देशक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वकथ्य

मेरा यह महाप्रबंध "हिन्दी के महावीर प्रबंध काव्यों का आलोचनात्मक अध्ययन" प्रस्तुत करते हुए मैं हर्ष और गौरव का अनुभव कर रही हूँ। पिछले अठारह वर्ष के साध्वी-जीवन में मैंने जैन धर्म और दर्शन का गुरूचरणों में बैठकर अध्ययन किया। अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर जिनका जैन मान्यता से शासनकाल चल रहा है और ऐतिहासिक दृष्टि से भी भगवान इस देश की संस्कृति के महान ज्योतिर्धर रहे। भगवान महावीर का जीवन मैं धार्मिक श्रद्धा और भावना से पढ़ती रही और उनके पथ का तथाशक्ति अनुगमन करती रही। मेरे मन में महावीर एक संप्रदाय विशेष से अधिक जन-जागरण के अग्रदूत रहे हैं। भगवान महावीर जैन दृष्टि से तीर्थंकर माने गये हैं, पर हम विशाल दृष्टि से देखें तो वे भारतीय जन-जीवन के मुक्तिदाता रहे हैं। विच्छृंखल देश के मार्गदर्शक बने। महावीर ने उस समय जबकि देश धर्म के नाम पर अहिंसा के घिनौने क्रियाकाण्डों में उलझा हुआ था, जाति-पाँति और ऊँच-नीच की संकीर्णताओ में दिन-प्रतिदिन पतन की ओर जा रहा था। जब नारी की स्थिति बदतर हो चूकी थी। शोषण का साम्राज्य बढ़ रहा था, उस समय क्रान्ति का शंखनाद इस महामानवने फूँका। देश में धर्म के नाम पर पहले तांत्रिकों-मांत्रिको के नाम के जाल को तोड़ा। अंधविश्वासों, हीनभावनाओं से ग्रसित मानव को मुक्ति का पंथ बताया।

महावीर ने सबसे पहले लोगों को उस वास्तविक धर्म का परिचय दिया जो मानव को मानव बनाता है। लोगों को उन्हीं की जनभाषा में सरल शब्दों में सत्पथ दर्शाया। उन्होंने समाज के हर व्यक्ति को किसी भी भेदभाव के बिना अपना शिष्य बनाया। पहली बार लोगों को महसूस हुआ कि कोई उनका अपना हितैषी भी है। महावीर ने एकान्तवाद का विरोध करते हुए अनेकान्तवाद का समर्थन किया। वे मानते थे कि अपना ही दृष्टिकोण सही है - ऐसा मानना और दूसरों पर थोपना एकांतवाद है, परन्तु अपेक्षा की दृष्टि से दूसरों के विचारों को जानना, समझना, परीक्षण करना और स्वीकार करना यह अनेकान्तवाद है, भाषा में इसे स्याद्वाद के रुपमें प्रस्तुत किया गया है। यह महावीर की विशाल वैचारिक भावना और हृदय की विशालता का प्रतिबिंब है। महावीरने पहली बार स्त्री को पतिता या चार दिवारों की विलास की सामग्री न मानकर उसे पुरुष के समकक्ष तपस्विनी और मुक्ति की अधिकारीणी माना। मानवमात्र स्वतंत्र है, उसे स्वतंत्रतापूर्वक जीने का अधिकार है यह उद्घोष किया। अहिंसा मात्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपदेशों के लिए या दूसरों के लिये नहीं, अपितु स्वयं अहिंसा के सामने अहिंसक बनकर उदाहरण प्रस्तुत किया।

महावीर के ये गुण मुझे बचपन से ही आकर्षित करते रहे, ज्यों-ज्यों मैं उनके जीवन को पढ़ती गयी, हर बार एक नयी दृष्टि मेरे सामने उभरती गयी। मुझे लगा महावीर जैन धर्म के दायरें में ही सीमित न रहे, उनके सिद्धांत और आदर्श विश्व को सत्य, अहिंसा, प्रेम और मानवता का संदेश दे सके। अतः उसी विशाल परिप्रेक्ष्य में मैंने यह अध्ययन प्रारंभ किया। जैसी ही मेरी जिज्ञासा बढ़ी मैं भगवान महावीर पर लिखे गये साहित्य का अवलोकन करने लगी। मुझे इन सब में से काव्यविधा में रुचि होने के कारण उनके संबंध में लिखे गये प्रबन्ध अधिक रुचिकर लगे। यद्यपि भगवान महावीर पर अनगिनत मुक्तक काव्य लिखे गये हैं। इन प्रबंधों में भगवान महावीर का जीवन तत्कालीन परिस्थितियाँ उनके सिद्धांत आदि का बड़ा ही सरस वर्णन हैं। इन सबका उल्लेख मैंने प्रत्येक कृति के संक्षिप्त विवेचन में प्रस्तुत किया हैं।

महाप्रबंध लिखना मुझ जैसी विहार करनेवाली साध्वी के लिये असंभव सा लगता था, पर ज्ञान की पिपासा की तृप्ति भी आवश्यक थी। चार-पाँच वर्ष पूर्व जयपुर और भरतपुर चातुर्मासों में इसी विषय को लेकर अध्ययन किया। कुछ लिखा भी, पर लगता था अभी निमित्त नहीं आया था। कुछ निराशा भी थी, पर गत वर्ष अहमदाबाद के चातुर्मास के दौरान संयोग मिला। डॉ. शेखरचंद्र जैन के मार्गदर्शन में कार्य का प्रारंभ किया और मन की दृढ़ भावना के कारण यह कार्य संपन्न कर सकी।

यह मेरा दावा नहीं है कि मैंने कोई खोजकार्य किया, पर उत्तम प्रबंधों का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर सकी और जिन महान कवियों ने अपनी भावनायें कार्यबद्ध की उनका रस दर्शन कर सकी। साध्वी होने के नाते स्वान्तः सुखाय ही मेरा परम संतोष है।

मैं सर्वप्रथम उदारचेता वात्सल्यमूर्ति शतावधानी शासनज्योति प. पूजनीया मनोहरश्रीजी म.सा. के आशीर्वाद और सत्प्रेरणा को कैसे भूलूँ। जो मेरी इस अध्ययन-कल्पना को साकार करनेवाली रही है। इस महाप्रबंध की प्रेरणास्रोत वे ही हैं। मैं कृतज्ञ हूँ प.पू. विदुषीवर्या श्री मुक्तिप्रभाश्रीजी म.सा. की जिनका आद्यन्त सहयोग मुझे मिलता रहा। यदि संघस्थ साध्वीगण की ममता और उत्साह-वर्णन न मिला होता तो मैं इतनी समता से कार्य संपन्न न कर पाती।

इस शोधग्रन्थ में डॉ. शेखरचन्द्र जैन के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिनकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रेरणा और मार्गदर्शन तथा कुशल निर्देशन में यह शोधकार्य यथासमय पूर्ण हो सका।

भरतपुर के निवासी डॉ. रामकृष्ण शर्माजी का सर्वप्रथम सहयोग रहा।

महाप्रबंध के संशोधन लेखन में लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर के ग्रंथालय से मुझे जो सहायता प्राप्त हुई है, उसमें कुशल अध्यापक और सहयोगियों नें मदद की है। इसमें रूपेन्द्रभाई, अमृतभाई, सलोनीबहन, पारूलबहन और भारतीबहन का विशेष सहयोग उपलब्ध हुआ है। अंत में एक बार पुनः उन सभी महानुभावों के प्रति साधुवाद व्यक्त करती हूँ जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से सहयोगी रहे हैं।

- साध्वी दिव्यगुणाश्री

*****

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय : **पृ.१-५९**

(१) **पूर्वभूमिका**

(२) **जैन धर्म की प्राचीनता**

(३) **तीर्थंकर परंपरा में भगवान महावीर**

ऋषभदेव, नमि, नेमी, पार्श्वनाथ, महावीर

(४) **प्रस्तुत प्रबंधों का साहित्यिक परिचय**

वर्धमान, भगवान महावीर, चरम तीर्थंकर महावीर, वीरायन, श्रमण भगवान महावीर, तीर्थंकर महावीर, जय महावीर, परम ज्योति महावीर, त्रिशलानंदन महावीर और वर्धमान पुराण।

द्वितीय अध्याय : **पृ.६०-१०२**

भगवान महावीर का जीवन-परिचय :- वीर जन्म के पूर्व की स्थिति, जन्मस्थान, बाल्यकाल, शक्ति-परिचय, यौवनावस्था, विरक्ति, दीक्षाग्रहण, साधनापक्ष, जन-कल्याण एवं हितोपदेश, अन्तिम देशना व निर्वाण।

प्रमुख चरित्रों का चरित्र-चित्रण :

(अ) पुरुष पात्र : *(१) सिद्धार्थ (२) नन्दीवर्द्धन*

(ब) नारी पात्र : *(१) त्रिशला (२) यशोदा (३) शची (४) चंदनबाला*

तृतीय अध्याय : **पृ.१०३-२०४**

प्रबंधों का भावपक्ष

(अ) प्रबंधो में जैन दर्शन :

(१) ईश्वर (२) विश्वरचना (३) पंचमहाव्रत (४) छह द्रव्य (५) सात तत्व (६) कर्मवाद (७) स्याद्वाद (८) सप्तभंगी न्याय (९) अपरिग्रह (१०) बारह व्रत

(ब) प्रबंधो में राष्ट्रीय भावना :

राष्ट्र शब्द की व्याख्या, भारतीय दृष्टिकोण, पाश्चात्य दृष्टिकोण, राष्ट्रीयता के पोषकतत्व,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजनीतिज्ञता, देशदर्शन, (प्राकृतिक सौन्दर्य), अतीत भारती का चित्रण, जागरण गीत, अभियान गीत, वर्तमान भारत का चित्रण, राष्ट्रीय स्वाभिमान की कमी।

प्रबंधो के आधार पर युगीन परिस्थितियों का अंकन

महावीरकालीन परिस्थितियाँ :

राजनीतिक परिस्थितियाँ, सामाजिक-विवाह के विविध प्रकार, बाल विवाह, बहुपति और बहुपत्नीप्रथा, विधवा विवाह, सतीप्रथा और जैन धर्म, गणिकायें एवं वेश्याएँ, परदा प्रथा। धार्मिक और आर्थिक परिस्थिति।

(क) प्रबंधो में नारी भावना :

महावीरकालीन नारी-स्थिति, नारी-उत्थान।

(ड) प्रबंधों में प्रकृति-चित्रण :

जन्म के पूर्व की, जन्म के समय, उपसर्गों के समय, केवलज्ञान के समय, वन में पदार्पण के समय, और निर्वाण के समय।

(इ) प्रबंधो में रस-दर्शन :

शान्तरस, श्रृंगाररस, वात्सल्यरस, करुणरस, रौद्ररस और भयानक रस आदि।

(ई) अतिशय :

जन्मातिशय, केवलज्ञानातिशय और देवातिशय।

चतुर्थ अध्याय : पृ.२०५-२७५

प्रबंधों का कलापक्ष

प्रबंधो की भाषा :-

शब्दशक्ति - *अभिधा, लक्षणा और व्यंजना।*

शब्द - *तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी, मुहावरें और कहावतें।*

छन्द - *मात्रिक और वर्णिक।*

मात्रिक - *चोपाई, पादाकुलक, राधिका, रोला, सार, चतुष्पदी त्रिभंगी और दोहा आदि।*

वर्णिक - *वंशस्थ, द्रुतविलम्बित, मालिनी और शार्दूलविक्रीडत आदि।*

अलंकार - उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, स्वभावोक्ति, संदेह, व्यतिरेक, अनुप्रास, दृष्टान्त और उदाहरण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम अध्याय

(१) पूर्वभूमिका

(२) जैन धर्मकी प्राचीनता

(३) तीर्थंकर परंपरामें भगवान महावीर

ऋषभदेव, नमि, नेमि, पार्श्वनाथ, महावीर

(४) प्रस्तुत प्रबन्धों का साहित्यिक परिचय :

(१) वर्धमान

(२) भगवान महावीर

(३) चरम तीर्थंकर महावीर

(४) वीरायन

(५) श्रमण भगवान महावीर चरित्र

(६) तीर्थंकर महावीर

(७) जय महावीर

(८) परम ज्योति महावीर

(९) त्रिशलानंदन महावीर

(१०) वर्धमान पुराण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्व भूमिका

धर्म और दर्शन मनुष्य के लिए आवश्य ही नहीं अपितु अनिवार्य है। जब मानव चिन्तन के सागर में डुबकी लगाता है तब दर्शन का और जब वह उस चिन्तन का अपने जीवन में प्रयोग करता है तब धर्म का जन्म होता है। मानव के जीवन की उलझन को सुलझाने के लिए ही धर्म और दर्शन का जन्म हुआ। धर्म और दर्शन ये दोनों ही एक दूसरे से पूरक हैं। चिन्तकों ने धर्म में बुद्धि, भावना और क्रिया तीन तत्त्व माने हैं। बुद्धि से ज्ञान, भावना से श्रद्धा और क्रिया से आचार अपेक्षित है। जैन दृष्टि में इसी को सम्यक् श्रद्धा, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र कहा जाता है। 'काण्ट' ने धर्म की व्याख्या करते हुए ज्ञान क्रिया को महत्त्व दिया है। [१] महान दार्शनिक सुकरात की दृष्टि से धर्म और दर्शन भिन्न नहीं परंतु अभिन्न है। [२] उसके पश्चात् ग्रीक व युरोपीय दार्शनिकों में धर्म और दर्शन को लेकर मतभेद उपस्थित हुआ है। दार्शनिक सुकरातने जो दर्शन और धर्म का निरूपण किया वह जैन धर्म से बहुत कुछ संगत प्रतीत होता है। जैन धर्म के आधार पर पांच भेद माने गये है। [३] उसमें ज्ञानाचार भी एक है। ज्ञान और आचार परस्पर सापेक्ष हैं। इस दृष्टि से विचार दर्शन और आचार धर्म है। जैन धर्म में मुख्य रूप से दो तत्व हैं- एक अहिंसा और दूसरा अनेकान्त। अहिंसा धर्म है और अनेकान्त दर्शन है। इस प्रकार दर्शन धर्म है और धर्म दर्शन है। विचार में आचार और आचार में विचार यही भारतीय चिन्तन की विशेषता है।

जैन धर्म की प्राचीनता

जैन धर्म में मान्य तीर्थंकरों का अस्तित्व वैदिककाल के पूर्व भी विद्यमान था। इतिहास इस परंपरा के मूल तक नहीं पहुँच सका है। उपलब्ध पुरातत्व संबंधी तथ्यों के निष्पक्ष विश्लेषण से यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि तीर्थंकरों की परंपरा अनादिकालीन है। वैदिक वाङ्मय में वात-रशनामुनियों, केशीमुनि और वात्य क्षत्रियों के उल्लेख आये हैं, जिनसे यह स्पष्ट है कि पुरूषार्थ पर विश्वास करनेवाले धर्म के प्रगतिशील व्याख्याता तीर्थंकर प्रागैतिहासिक काल में भी विद्यमान थे। मोहन-जो-दडों के खंडहरों से प्राप्त योगीश्वर ऋषभ की कार्योत्सर्ग मुद्रा इसका जीवंत प्रमाण है। यहां से उपलब्ध

---

१. डॉ. नेमिचंद्र शास्त्री : तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा पृ.१.

२. सन्दर्भ - आचार्य हस्तिमलजी : जैन धर्म का मौलिक इतिहास पृ.३७

३. स्थानाङ्ग ५ उद्दे. २ सूत्र ४३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्य पुरातत्व संबंधी साम्रगी भी तीर्थंकर परंपरा की पुष्टि करती हैं। वैदिक संस्कृति में ही वेदों को सर्वोपरि महत्व देकर मानव-ज्ञान की पूर्ण प्रतिष्ठा नहीं हुई है, अपितु श्रमण संस्कृति में भी वीतराग, हितोपदेशी और सर्वज्ञ तीर्थंकर की प्रतिष्ठा को महत्व प्रदान किया हैं। दीपक स्वयं प्रकाशित होता है और दर्पण स्वभावतः स्वरूपावलोकन का अवसर प्रदान करता है। इसी प्रकार तीर्थंकर भी समस्त सांसारिकता से उपर उठकर मानवता का संदेश देते हैं।

भारतीय संस्कृति को परिपुष्ट एवं संवर्धित करने में एवं इसके स्वरूप निर्माण में जैन संस्कृति का महान योगदान है। साहित्य, कला, संगीत, चित्रकला एवं मानवमूल्यों के प्रति आस्था इत्यादि में जैन संस्कृति की बड़ी भारी देन हैं। जैन धर्म की विचारधारा प्राग्वैदिक है इसके प्रमाण प्राप्त होते हैं। ऋषभदेव के विषय में अनेक खोजपूर्ण प्रमाणिक तथ्य प्राप्त हुए हैं। मोहन जोदड़ो से प्राप्त चित्रों की मुद्रायें इसका प्रमाण हैं। जैन मतानुसार चौदह मनु हुए है तथा अन्तिम मनु नाभिराज थे तथा ऋषभदेव इन्हीं के पुत्र थे जिन्होने हि समस्त संसार को असि, मसि, कृषि एवं लिपि विद्या की शिक्षा दी।

वेद संसार के प्राचीनतम ग्रंथो में माना गया है तथा चारों वेदों में ऋग्वेद सर्वप्रथम है। इन वेद ग्रंथो मे श्री ऋषभदेव, श्री अजितनाथ व. श्री अरिष्टनेमि तीनों तीर्थंकरों का वर्णन है। ऋग्वेद में एक स्थान पर भगवान ऋषभदेव को पूर्वज्ञान का प्रतिपादक और दुःखनाशक कहा गया है।[१] ऋग्वेद में ऋषभदेव को ऋषि भी कहते है।[२] श्रीमद् भागवतपुराण में ऋषभदेव को जनता का कल्याण करने के लिए अवतरित हुआ माना गया है।[३] इस प्रकार वेदों, पुराणों तथा बौद्ध ग्रंथों में भगवान ऋषभदेव का वर्णन है। जिससे प्रमाणित होता है कि वे श्रमण और ब्राह्मण संस्कृति के सर्वप्रथम आदि पुरूष हैं। इस बात का प्रमाण मिलता है कि इ. पू. प्रथम शताब्दि में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की पूजा होती थी। भागवतपुराण जिसका १८ पुराणों में महत्वपूर्ण स्थान है,

---

१. असूतपूर्वा वृषभो ज्यायानिमा अरयशुरूधः सन्ति पूर्वीः।
दिवो न पाता विदथस्य धीभिः क्षत्रं राजाना प्रति वो दधाथे। ऋग्वेद ५२-३८

२. तन्मयतर्त्स्य देवत्व सजातमग्रः। ऋग्वेद ३१/१७

३. नित्यानुभूतनिजलाभ निवृत्ततृष्णः श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तबुद्धेः।
लोकस्य यः करुणाभयात्मलोकमाख्यन्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै। श्रीमद् भागवत ४/६/१९/५६९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसमें भी ऋषभदेव को जैन धर्म का संस्थापक माना गया है। महान दार्शनिक डॉक्टर राधाकृष्ण इस कथन से पूर्ण सहमत हैं। अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि ऋषभदेव प्रागैतिहासिक पौराणिक पुरूष है जिनका कि वेदों पुराण ग्रंथो में वर्णन है। भगवान ऋषभदेव को महापुराण में प्रजापति भी कहा गया है। [१]

तीर्थंकर परंपरा में भगवान महावीर

तीर्थंकर शब्द तीर्थ उपपद कृञ्+अप से बना है। इसका अर्थ जो तीर्थ धर्म का प्रचार करे यह तीर्थंकर है। तीर्थ शब्द भी तृ+थक से निष्पन्न है। अर्थात् जिस के द्वारा संसारमहार्णव है या पापाविकों से पार हुआ जाय, यह तीर्थ है। इस शब्द का अभिधागत अर्थ घाट, सेतु या गुरू है और लाक्षणिक अर्थ धर्म है। बौद्ध साहित्य में अनेक स्थलों पर तीर्थंकर शब्द व्यवहृत हुआ है। [२] साम-ञ्ञफलसूत्र में छह तीर्थंकरो का उल्लेख किया गया है। [३] किन्तु यह स्पष्ट है कि जैन साहित्य की तरह मुख्य रूप से यह शब्द वहां प्रचलित नहीं रहा है। कुछ ही स्थलों पर उसका उल्लेख हुआ है। किन्तु जैन साहित्य में इस शब्द का प्रयोग अत्यधिक मात्रा में हुआ है।

जो तीर्थ का कर्ता या निर्माता होता है वह तीर्थंकर कहलाता है। श्रमण, श्रमणी, श्रावक और श्राविका इस चतुर्विध संघ को भी तीर्थं कहा गया है। इस तीर्थ की जो स्थापना करते है उन विशिष्ट व्यक्तियों को तीर्थंकर कहते हैं। संस्कृत साहित्य में तीर्थ शब्द 'घाट' के लिए प्रयुक्त हुआ है। संसाररूपी एक महान नदी है, उस में कहीं पर क्रोध के मगरमच्छ हैं, कही पर माया के विषेंले सर्प फुत्कार करते हैं तो कहीं पर लोभ के भंवर विद्यमान हैं। अनन्त दया के सागर तीर्थंकर प्रभु ने साधकों की सुविधा के लिए धर्म के घाट का निर्माण किया। अणुव्रत, महाव्रतों के नियम आदि की व्यवस्था की जिससे साधक को संसाररूपी भयंकर समुद्र को पार करने में सुविधा रहे। तीर्थ का अर्थ सेतु भी है। चाहे कितनी बड़ी से बड़ी नदी क्यों न हो, यदि सेतु है तो निर्बल से निर्बल व्यक्ति भी सुगमता से पार कर सकता है। तीर्थंकरों ने साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप संघस्वरूप सेतु का निर्माण किया है।

---

१. आषाढमासबहुलप्रतिपददिवसे कृति।
कृत्वा कृतयुगारम्भं प्राजापत्यमुपेयिवान॥ महापुराण १९०/१६/३६३

२. बौद्ध साहित्यका लंकावतार सूत्र

३. दीघनिकाय सामञ्ञफलसूत्र. पृ.१६-२२ हिन्दी अनुवाद.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चोबीस तीर्थंकर :

प्रस्तुत अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थंकर हुए है। चौबीस तीर्थंकरो के सम्बन्ध में सबसे प्राचीन उल्लेख दृष्टिवाद के मूल प्रथमानुयोग में था, पर आज वह अनुपलब्ध है।[१] आज सबसे प्राचीन उल्लेख समवायाङ्ग,[२] कल्पसूत्र,[३] आवश्यक निर्युक्ति[४] आदि में मिलता हैं। इसके पश्चात् चउपन्न महापुरिसचरियं,[५] त्रिषष्ठिशालकापुरुष चरित्र,[६] महापुराण,[७] उत्तर पुराण,[८] आदि ग्रंथो में विस्तार से प्रकाश डाला गया है। स्वतंत्र रूप से एक-एक तीर्थंकर पर विभिन्न आचार्यो ने संस्कृत, अपभ्रंश, प्राकृत, गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी व अन्य प्रान्तीय भाषाओमें अनेकानेक ग्रंथ लिखे हैं व लिखे जा रहे हैं।

जैन इतिहास में त्रिषष्ठ शलाका पुरुषों के वर्णन है। इनमें से चौबीस तीर्थंकर ऐसे शलाका पुरुष है, जिन्होने मानव-सभ्यता के उस काल में ही एक क्रमबद्ध रूप देने का प्रयत्न किया। तीर्थंकरो से पूर्व चौदह कुलकरों का उल्लेख है। शलाका पुरुषोमें से प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ, इक्कीसवें नमिनाथ, बाईसवें नेमिनाथ, तेईश्वें पार्श्वनाथ तथा चौबीसवें वर्धमान महावीर पुराण व इतिहास की पर्हुंच में हैं। शेष तीर्थंकरो के उतने ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

ऋषभदेव :

चौबीस तीर्थंकरो में सबसे प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव हैं। उनके अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए आगम व आगमेतर साहित्य ही प्रबल प्रम ण हैं। जैन दृष्टि से भगवान ऋषभदेव वर्तमान अवसर्पिणीकाल के तृतीय आरे के उपसंहार काल में हुए है।[१] चौबीस में तीर्थंकर भगवान महावीर और ऋषभदेव के बीच का समय असंख्यात वर्ष का

---

१. (क) समवायाङ्ग सूत्र १४७
(ख) नन्दीसूत्र, सूत्र-५६ पृ.१५१-१५२, पूज्यश्री हस्तिमलजी द्वारा संपादित
२. समवायाङ्ग सूत्र -२४
३. कल्पसूत्र तीर्थंकर वर्णन
४. आवश्यक निर्युक्ति ३६९
५. भाचार्य शीलाङ्क, चोप्पन्नमहापुरिसचरियं-अनुवाद आ. हेमसागर
६, आचार्य हेमचन्द्र-जैन धर्म सभा, भावनगर
७. आचार्य जिनसेन-भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी
८. आचार्य गुणभद्र-भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी
९. (क) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति (ख) कल्पसूत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है।[१] भगवान ऋषभदेव का उल्लेख जैन पुराणों के अतिरिक्त अनेक ग्रंथों में बड़े गौरव के साथ हुआ है। ऋग्वेद, श्रीमद् भागवत इत्यादि में ऋषभनाथ का विशद वर्णन हैं। वे सर्व पूज्य और सर्व सम्मत है, उनको लेकर कोई विवाद नहीं हैं। वे योगेश्वर है प्रागार्य है, वेदपूर्व है। वेदों में वेदांतीत है। मोहन-जो-दडों के अवशेषो मे उनको लेकर स्पष्ट प्रमाण मिले हैं। वैदिक दृष्टि से ऋषभदेव भगवान प्रथम सतयुग के अन्त में हुए है और रामकृष्ण के अवतारों से पूर्व हुए हैं।[२] जैन दृष्टि से आत्मविद्या के प्रथम पुरस्कर्ता भगवान ऋषभदेव हैं।[३] वे प्रथम राजा, प्रथम जिन, प्रथम केवली, प्रथम तीर्थंकर और प्रथम धर्मचक्रवर्ती थे।[४] इसी अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे के तीस वर्ष और साढ़े आठ शेष रहते उनका निर्वाण हो गया।

इस अवसर्पिणी काल में जैन धर्म के आदि प्रणेता समाजस्रष्टा और नीति-निर्माता भगवान् ऋषभदेव हुए हैं। उस समय इस भरतक्षेत्र में न धर्म था, न परिवार-प्रथा थी, न समाजव्यवस्था थी, न राज्यशासन था, न नीति और न कला का उद्भव हुआ था। उस समय की प्रजा वृक्षो के फलो पर अवलम्बित थी, जिन्हे कल्पवृक्ष की संज्ञा प्रदान की गई हैं। जैन शास्त्रो में वह युगलकाल के नाम से प्रसिद्ध हैं, क्योंकि मनुष्य का मनुष्य के साथ अगर कोई संपर्क था तो वह नर और नारी का ही था।

भगवान ऋषभदेव के पिता महाराजा नाभि थे जो इस काल के अन्तिम कुलकर थे। उनकी माता का नाम मरुदेवी था। युगलिक सभ्यता में ही उनका बाल्य काल व्यतीत हुआ।

कालचक्र तेजी के साथ घूम रहा था। प्रकृति में आमूल परिवर्तन हो रहा था। मानव प्रकृति में भोग लिप्सा का विकास हो रहा था और भौतिक प्रकृति की फलदायिनी शक्ति का ह्रास हो रहा था। इस दोहरे परिवर्तन के कारण पहली बार अशान्ति का उद्भव हुआ। जो वृक्ष उस समय की प्रजा के जीवन निर्वाण के साधन थे, वे पर्याप्त फल नहीं देते थे और कृषि कर्म आदि से लोग अनभिज्ञ थे। इस परिस्थिति में एक भारी प्राण संकट उपस्थित हुआ। उस संकट का सामना करने के लिए युगानुकूल जो नूतन व्यवस्था की

---

१. जिनेन्द्र मत दर्पण भाग १, पृ.१०

२. धम्माणं कासवो मुहं, उत्तराध्ययन १६, अ. २५

३. उसहे णामं अरहा कोसलिए पढमराया पढमजिणे, पढम केवली.

४. पढमतित्थयरे, पढमधम्मवरचक्कवट्टी समुप्पज्जित्थे- (जम्बुद्वीपप्रज्ञप्ति, २/३०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गई, उसने भोगभूमि को कर्म भूमि में परिणत कर दिया।

गुणकर्म के आधार पर ऋषभदेव ने मानव व्यवस्था की और कर्म पुरूषार्थ पर खड़ा करके मनुष्य को स्वावलंबी बना दिया। प्रजा के हित के लिए लेख, गणित, नृत्य, गीत सो प्रकार की शिल्प कला आदि बहतर कलाएं पुरुषों की और चौसठ कलाएं स्त्रीयों की [1] निर्माण की। सर्वप्रथम अपनी पुत्री ब्राह्मी को लिपि की शिक्षा दी और इस कारण वह लिपि आज तक ब्राह्मी लिपि के नाम से विख्यात है।[2]

ऋषभदेवजी की सुनंदा और सुमंगला दो पत्नियाँ थी। विवाह के पश्चात् ऋषभदेव का राज्यभिषेक हुआ। [3] छः लाख पूर्व [4] से कुछ न्युन काल तक सुनंदा और सुमंगला के साथ विवाह संबंध से रहते हुए भगवान को संतानोत्पत्ति हुई। सुमंगला ने भरत और ब्राह्मी तथा सुनंदाने बाहुबलि और सुंदरी को युगल रूप में जन्म दिया। सुमंगला के कालान्तर में युगल रूप से ४९ बार में कुल ९८ पुत्रो को जन्म दिया। इस प्रकार प्रभु के १०० पुत्र और दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुई। [5] लोक जीवन की सुव्यवस्था करने के पश्चात् प्रजा का भार अपने पुत्रों को सोंपकर भगवान ऋषभदेव परिग्रह से विमुक्त हो दीक्षित हो गये।

एक हजार वर्ष तक निरन्तर कठोर तपश्चचरण करने के पश्चात वे जिन वीतराग एवं पूर्ण ज्ञानी हो गये। तत्पश्चात् उन्होने समाज व्यवस्था और धर्मव्यवस्था करके मानव जीवन को एक प्रशस्त और उच्चतर ध्येय प्रदान किया। गृहस्थों के लिए अणुव्रतों का तथा साधुओं के लिए महाव्रतों का उपदेश दिया। भगवान के धर्मोपदेश की वह विमल स्त्रोतस्विनी अति दीर्घ मार्ग को पार करती हुई आज तक प्रवाहित हो रही है।

तीर्थंकर नमि:

अनासक्ति योग के प्रतीक। २१ वें तीर्थंकर नमिनाथ है। ऋषभनाथ के अन्नतर नमिनाथ का जीवनवृत्त जैनेतर साहित्य में उपलब्ध होता है। नमि मिथिला के राजा थे

---

१. जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति : ऋषभ-चरित्र :

२. सन्दर्भ : सुशीलमुनिजी -"जैन धर्म" पृ.१४

३. तीर्थंकर - महावीर पृ.३० भाग-१

४. संदर्भ-हस्तीमलजी-"जैन धर्म का मौलिक इतिहास" पृ.१६

५. कल्पसूत्र किरणावली, १५१-२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और उन्हें हिन्दु पुराणों में जनक के पूर्वज के रूप में माना गया हैं। नमि की अनासक्तवृत्ति इतनी प्रसिद्ध थी, जिससे उनका वंश ही विदेह कहलाता था। अहिंसा का प्रचार नमि के युग में विशेष रूप से हुआ था। उत्तराध्ययन में नमि-प्रव्रज्या का सुंदर वर्णन उपलब्ध होता है।[१] और यहाँ उन्हीं के द्वारा वे वाक्य कहे गये हैं, जो वैदिक व बौद्ध परंपरा के संस्कृत व पालि साहित्य में गूंजते हुए पाये जाते हैं। इस प्रव्रज्या में आये हुए वचनों की तुलना पालि जातक और महाभारत के कई अंशो से की जा सकती है।[२]

तीर्थंकर नमि की अनासक्तवृत्ति मिथिला में जनक तक पायी जाती है। कहा जाता है कि अहिंसात्मक प्रवृत्ति के कारण ही उनका धनुष प्रत्यंचाहीन रूप में उनके क्षत्रियत्व का प्रतीक मात्र रह गया था। राम ने शिव-गांडीव को फिर प्रत्यच्च्यायुक्त किया। सीता स्वयंवर के अवसर पर रामने इसी प्रत्यच्च्याहीन धनुष को तोड़ कर धनुष पर पुनः प्रत्यच्च्याकी परंपरा प्रचलित की। वस्तुतः अहिंसा में ही शौर्य और पराक्रम की वृत्ति निहित है।

तीर्थंकर नेमिनाथ :

२२ वें तीर्थंकर नेमिनाथ का वर्णन जैन ग्रंथो के साथ ऋग्वेद, महाभारत आदि ग्रंथो में पाया जाता है। वह महाभारत का युग था। यह काल ईस्वी पूर्वे १००० के लगभग माना जाता है। नेमिनाथ यदुवंशी थे। उनके पिता अंधकबृष्णी के ज्येष्ठ पुत्र समुद्रविजय थे, कृष्ण, वसुदेव से उत्पन्न उनके चचेरे भाई थे। नेमिनाथ का विवाह संबंध गिरिनगर (गिरनार) के राजा उग्रसेन की विदुषी कन्या राजुलमती से होना निश्चित हुआ था, किन्तु जैसे ही बारात गिरिनगर पहुँची नेमिनाथ का ध्यान अतिथियों को भोजन के निमित्त गया। सेंकडो पशुओं की करुणार्द चीत्कार पर गया। उन्होने संसार का परित्याग कर दिया और विवाह मण्डप में जाने की अपेक्षा वे तपोवन में चले गये। बाईसवें तीर्थंकर के रूप में उन्होने अहिंसा और करूणामूलक जीवन दृष्टि को एक सुव्यवस्थित सिद्धांत के रूपमें प्रचारित किया।

---

१. *"सुहं वसामो जीवामो जेसिं मो णत्थि किंचण।*
मिहिलाए डज्झमाणीए ण मे डज्झइ किंचण॥" - उत्त. ९-१४

२. *"सुसुखं वत जीवाम येसं नो नत्थि किंचन।*
मिथिलाए दहमानाय न मे किंचन दह्यते॥" - पालि-महाजनक-जातक

"मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे किंचन दह्यते।" - म. भा. शांतिपर्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकर पार्श्वनाथ :

तीर्थंकर पार्श्वनाथ ऐतिहासिक युग पुरूष थे। यह अनेक प्रमाणों से सिद्ध हो चूका है। जैन साहित्य की नहीं, बौद्ध साहित्य भी तीर्थंकर पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता को स्वीकार करता है। भगवान का जन्म बनारस के राजा अश्वसेन और उनकी रानी वामादेवी के कुक्षिसे हुआ था। उन्होने तीस वर्ष की अवस्था में गृह त्यागकर सम्मेदशिखर पर्वत पर तपस्या की। यह पर्वत आज तक पार्श्वनाथ पर्वत के नाम से प्रसिद्ध है। पार्श्वनाथ ने केवलज्ञान प्राप्तकर ७० वर्ष तक श्रमण धर्म का प्रचार किया। पार्श्वनाथ के जीवन-प्रसंग में कमठ का महत्वपूर्ण स्थान है। इसी के कारण पार्श्वनाथ की साधना में निखार और परिष्कार आया है। क्षमा और वैर के घात प्रतिघातों का मार्मिक वर्णन हुआ है। पार्श्वनाथ क्षमा के प्रतीक और कमठ वैर का। क्षमा और वैर का द्वन्द्व अनेक जन्मों तक चला है और अन्त में वैर पर क्षमा की विजय हुई है।

सम्मेदशिखर पर्वत तीर्थंकर पार्श्वनाथ 'हिल' के नाम से प्रसिद्ध है। जैन पुराणों के अनुसार पार्श्वनाथ का निर्वाणकाल ईस्वी. पूर्वे ७७७ ठहरता है। पार्श्वनाथ की जैन धर्म के तत्युगीन रूप पर गहरी छाप है, वे ऋषभनाथ से नेमिनाथ तक चली आती धर्म परंपरा के समवेत संस्करण हैं। उनमें तीर्थंकर ऋषभ का आकिंचन्य अपरिग्रह और कर्मठता। नमिनाथ की अनासक्तवृत्ति एवं नेमिनाथ की करुणा प्रधान अहिंसावृत्ति सामायिक धर्मचक्र के रूप में प्रतिष्ठित हैं। पार्श्वनाथ ने अहिंसा के सुव्यवस्थित सिद्धांत के रूप में प्रतिष्ठि कर क्षमा की धारा प्रचलित की।

भगवान महावीर :

भारत का पूर्वीय भाग मुख्य रूप से हिंसापूर्ण यज्ञादि कर्मकाण्डों का केन्द्र था। धार्मिक दासता चारों ओर अपना प्रभुत्व जमा रही थी। जन-मानस उस विकृत वातावरण से उब चूका था और वह किसी दिव्य-भव्य प्रकाश पुञ्ज अपलक प्रतीक्षा कर रहा था जो उसे धर्म का प्रशस्त एवं सही मार्गदर्शन कर सके।

ऐसे समय में चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के दिन मगध के विदेह जनपद में वैशाली के क्षत्रिय कुण्ड के अधिपति राजा सिद्धार्थ और रानी त्रिशला के यहाँ भगवान महावीर का जन्म हुआ। तीर्थंकर पार्श्वनाथ के २५० वर्ष पश्चात् प्रगतिशील परंपरा के संस्थापक चौबीसवें तीर्थंकर महावीर हुए। इन्होने अपनी व्रत संबंधी प्रगतिशील क्रान्ति के द्वारा जैन धर्म को युगानुकूल रूप दिया। तीर्थंकर पार्श्वनाथ की तीर्थ परंपरा को ढहते हुए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घाटों का पुनरुद्धार इन्होने किया। श्रमणों की प्राचीन साधना श्रम, शांति और संयम की थी। महावीर ने भी इसी साधना मार्ग को गतिशील बनाया।

निश्चय ही महावीर धर्म प्रवर्तक ही नहीं, अपितु महान लोकनायक धर्मनायक क्रान्तिकारी सुधारक, सच्चे पथप्रदर्शक और विश्व-बंधुत्व के प्रतीक थे। उनमें अलौकिक साहस, सुमेरु तुल्य अविचल दृढता, सागरोपम गंभीरता एवं अद्भूत सहनशीलता विद्यमान थी। उन्होंने रूढिवाद, पाखण्ड, मिथ्याभिमान और वर्ण भेद के अंधकार पूर्ण गंभीर गर्त में गिरती हुई मानवता को उठाने में अथक प्रयास किया। इस प्रकार इस युग की तीर्थंकर परंपरा की अंतिम कडी भगवान महावीर हैं। महावीर ने जन-जीवन को उन्नत किया ही, साथ ही उन्होंने साधना का ऐसा मार्ग प्रस्तुत किया, जिस मार्ग पर चलकर सभी व्यक्ति सुख और शांति प्राप्त कर सकते है।

उनके ध्यानयोग की साधना आत्मसाधना थी, भय से पर थी, प्रलोभनो से परे और राग-द्वेष से परे थी। वे निर्जन वन में ध्यानस्थ मुद्रा में अविचल रहकर स्व की खोज करते रहे। उनके मनमें कोई भी विकल्प नहीं था। मैत्री भावना का सर्वोच्च आदर्श, जिसे पुष्पों से ही नहीं, कंटकों से भी प्यार था। सतानेवालों के प्रति भी एक सहज करूणा और कल्याण की कामना विद्यमान थी। महावीर समत्वयोग के साधक थे और वे करूणा के देवता थे। उन्होंने विष को अमृत बना दिया और वैर-विरोध का शमनकर समता और शांति का मार्ग स्थापित किया।

प्रस्तुत प्रबंधो का साहित्यिक परिचय

महाकाव्यों की समीक्षा

प्रस्तुत महाकाव्यों में कवि भगवान महावीर के गर्भ में आने से लेकर उनके परिनिर्वाण तक की विशाल आध्यात्मिक जीवन यात्रा को परंपरा के आलोक में अपनी कल्पना एवं प्रखर प्रतिमा सुंदर रीति से चित्रण करने में सफल हुए हैं। उन्होने महाकाव्यों के लक्षणों को ध्यान रखते हुए काव्य की रचना की है। प्रायः सभी प्रबंधों में महाकाव्यों के शास्त्रों के इन लक्षणों का निर्वाह किया गया है। कथानक न बहुत बड़ा और न बहुत छोटा, सर्गबद्ध, नाटक की सन्धिया से संघटित, सुसंबंध, किसी महान घटना पर आधारित है। रुद्रहव हेमचंद्र के अनुसार अवान्तक कथाओं का भी समावेश हुआ है। नायक सद्वंशी क्षत्रिय या देवता होना चाहिए। यह गुण भगवान महावीर में पूर्व रूप से विद्यमान था। महाकाव्यों में वस्तु-व्यापार वर्णन पर अधिक बल दिया गया है। प्रकृति चित्रण,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन के विभिन्न व्यापारों और परिस्थियों का वर्णन विस्तार पूर्वक हुआ है। समग्र युग-जीवन का वर्णन इन्हीं के द्वारा संभव हुआ है। रस और भाव-व्यंजना का विवेचन करते हुए इन कवियों ने सभी रसों का स्वाभाविक निरूपण किया है। इन में शांतरस प्रधान है। साथ ही श्रृंगार, वीर आदि सभी स्वाभाविक रूप से वर्णित होते गये हैं। शैली गरिमामयी और गंभीर है। छंदो का रम्य प्रयोग अपेक्षित है। कवियों ने कहीं छन्दो कहीं अछन्दस प्रयोग भी किया है । अलंकारो को सभी आचार्यो समान महत्व दिया है, जो इन महाकाव्यों की भी शोभा बन गये हैं। भाषा भी पात्रो के अनुकूल गरिमामयी और गंभीर है। कवियों ने प्रांजल तत्सम और बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया हैं।

***

वर्धमान महाकाव्य

रचयिता - **महाकवि अनूप शर्मा**

कविवर पं. अनूप शर्मा का "वर्धमान महाकाव्य" तीर्थंकर महावीर के समग्र जीवन एवं दर्शन को चित्रित करन वाला खड़ी-बोली (आधुनिक हिन्दी) का प्रथम महाकाव्य है जो सं. २००७ में भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुआ था। कुल १७ सर्गो में विभक्त एवं १९९७ चतुष्पदी छंदो में रचित "वर्धमान महाकाव्य"प्रधानतः भक्ति एवं वैराग्य का काव्य है, जो खड़ी बोली के महाकवि पं. श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"के प्रियप्रवास महाकाव्य एवं स्वयं श्री अनूप शर्मा के सिद्धार्थ काव्य के अनुरूप तत्सम शब्दावली से युक्त छंदो में रचित हैं। संपूर्ण "वर्धमान काव्य"वंशस्थ छंद में लिखा गया है, पर घटना परिवर्तन में कहीं-कहीं मालिनी और द्रुत विलम्बित छंदो का भी प्रयोग किया गया है, जब कि उपसंहार शिखरिणि छन्द में है। प्रिय-प्रवास साकेत, कामायनी, यशोधरा, सिद्धार्थ, बुद्ध चरित आदि आधुनिक महाकाव्यों में आलोच्य "वर्धमान महाकाव्य" भाव एवं कलाविधान दोनों ही दृष्टियों से उल्लेखनीय है।

भारत की सांस्कृतिक परंपरा में महान आत्माओं का गुणानुवाद एक महत्वपूर्ण तत्व रहा है। कवियों ने अपने आराध्य का गुण-गान कभी आत्मनिवेदन के रूप में किया है तो कभी चरित नायक के रूप में उसकी महानता व्यंजित की है। वाल्मीकि, कालीदास, भवभूति, सूर, तुलसी, मीरां, पुष्पदंत, स्वयंभू, सकलकीर्ति, ब्र. जिनदास, शुभचंद्र, धानतराय, दौलतराम, नवलराम आदि कवियों ने अपने उपास्य की सगुण एवं निर्गुण दोनों प्रकार से भक्ति की है। महावीर तीर्थंकर और सिद्ध दोनों ही रूपों में काव्यों में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्णित रहे हैं। निर्वाण प्राप्तिसे पूर्व उनका सगुण स्वरूप और जन्म मरण के बंधन से छूटने पर उनका सिद्ध स्वरूप निर्गुण स्वरूप है।

वर्धमान महाकाव्य के सबंध में मुख्य विचारणीय बात यह है कि ग्रन्थ न तो इतिहास है न जीवनी। यदि आप भगवान महावीर की जीवन सबंधी समस्त घटनाओं का और तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का क्रमवार इतिहास इस ग्रंथ में खोजना चाहेंगे तो निराश होना पडेगा। यह तो महाकाव्य है, जिस में कविने भगवान के जीवन और व्यक्तित्व को फलक बनाकर कल्पना की तूलिका चलाई है।

भगवान महावीर जैन धर्म के उन्नायक अन्तिम तीर्थंकर थे, उनके पांच नाम थे, जो गुणाश्रित थे- वीर, अतिवर, महावीर, सम्मति और वर्धमान। प्रस्तुत काव्य के शीर्षक के लिए वर्धमान नाम ही उपयुक्त समझा गया। दूसरी और भगवान महावीर का वर्धमान नाम इतना प्रचलित है कि भगवान की विहार और उपदेश भूमिका एक खंड बंगाल में इस नाम से ही (वर्धमान) प्रसिद्ध है।

कवि श्री अनूप शर्मा ने अपने इस वर्धमान का काव्य में महाकाव्योचित सभी तत्वों- कथा, प्रंबंध, इतिहास, प्रसिद्ध कथा नायक, प्रकृति वर्णन, सौन्दर्य निरूपण, पद-लालित्य, अर्थ गाम्भीर्य, रस-निर्झर, कलाविधान आदि में काव्य कुशलता का उचित निर्वाह किया है। पदे-पदे रूपक और उपमा अंलकारो की छटा दर्शनीय है। साक्षात् सरस्वती का प्रतीक संपूर्ण वर्धमान काव्य महावीर के पिता राजा सिद्धार्थ की राज सभा के समान लगता है।

कविवर ने वर्धमान काव्य के अन्तर्गत प्रथम सर्ग में महाराजा सिद्धार्थ का यश प्रताप और माता त्रिशला रानी रूप-गुण सौंदर्य का अद्वितीय वर्णन किया है। माता त्रिशला के रूप सौंदर्य वर्णन में कवि-कर्म की शालीनता देखते ही बनती है। माता त्रिशला साक्षात् कल्पवल्लरी है -

सुपुष्पिता दन्तप्रभा प्रभाव से,
नृपालिका पल्लविता सुपाणि से।
सुकेशिनी मेचक भृंग यथ से,
अनल्पधी शोभित कल्पवल्लरी ॥[१]

---

१. "वर्द्धमान" कवि अनूप शर्मा प्रथम सर्ग, पद सं. ५९, पृ.५०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रानी त्रिशला की मधुर वाणी को सुनकर कोयल और वीणा दोनों का मान खंडित हो जाता है। लगता है जैसे एक वन में रो रही है, तो दूसरी धराशयी हो गयी है-

सुनी सुधा मंडित माधुरी धुरी,
जभी सुवाणी त्रिशला मुखाब्ज से।
पिकी कुहू रोदन में रता हुई,
प्रलंब भूमे परिवादिनी हुई॥[१]

त्रिशला के श्रीमुख से निःसृत वाणी से समक्ष कोयल का कूंजन रुदन में परिवर्तन होता है और वीणा पृथ्वी पर लेट जाती है।

पंचम सर्ग में राज-दम्पति का प्रेमालाप सामान्य स्तर का प्रेम, श्रृंगार और मनोरंजन का साधन न होकर जीवन के उदान्त भावों को धारण करता है। त्रिशला माता और सिद्धार्थ पिता का वह पारस्परिक प्रेमालाप आध्यात्मिक रूप ले लेता है जब से मोक्ष और तीर्थंकर प्राप्ति की अभीष्ट अभिलाषा के समान एक दूसरे को चाहने का प्रश्न करते हैं -

"प्रभो, मुझे ही किस भांति चाहते ?
यथैव निःश्रेयस चाहते सुखी।"
"प्रिये, मुझे हो किस भांति चाहती ?
यथैव साध्वी पद पार्श्वनाथके।"[२]

इस स्थान पर पहुंचकर सहसा ध्यान आता है कि यहाँ पांचवें सगर्ग में जो राज दम्पति इतने ऊंचे उठकर प्रेम वार्तालाप कर रहे हैं। दूसरे सर्ग में भी तो यही दंपति है जो भगवान के जनक और जननी बननेवाले है। लगता है जैसे कविने दूसरे सर्ग में इन्हें केवल राज दंपति के रूप में ही मानकर रानी-त्रिशला के नख-शिख का वर्णन किया। वास्तव में कवि ने काव्य में दूसरे सर्ग का पार्थिव श्रृंगार यदि पांचवे सर्ग में अपार्थिव और आध्यात्मिक हो गया है। जो कवि की सफल कल्पना का प्रतीक है। कवि अनूप शर्मा ने काव्य में भगवान का च्यवन, जन्म, बाल्यावस्था, आमल की क्रीडा आदि चमत्कारपूर्ण घटनाओं का सुंदर ढंग से वर्णन किया है।

---

१. "वर्द्धमान" कवि अनूप शर्मा, प्रथम सर्ग, पद सं. १०५, पृ.६१
२. वही, पांचवाँ सर्ग पद सं. १५८, पृ. १५८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काव्य में विशेष महत्व की घटना भगवान का विवाह और कौटुंम्बिक स्थिति है। 'वर्धमान' के लेखक ने श्वेतांबर और दिगम्बर मान्यताओं मे समन्वय उपस्थित करने का प्रयत्न किया है। कवि ने भगवान के विवाह का आध्यात्मिक रूप प्रस्तुत किया है और श्वेतांबर तथा दिगम्बर आम्नाय की मान्यताओं में सामंजस्य स्थापित किया है। वर्धमान काव्य का यद्यपि ध्यान से अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि कविने दिगम्बर और श्वेताम्बर आम्नाय में ही नहीं, जैन धर्म और ब्राह्मण धर्म में भी सामञ्जस्य स्थापन का प्रयत्न किया है। कवि स्वयं ब्राह्मण है। उन्होने अपनी ब्राह्मणत्व की मान्यताओं को भी इस काव्य में लाने का प्रयत्न किया है। वास्तव में भगवान महावीर के जीवन में ही सच्चे ब्राह्मण को आदर स्थान प्राप्त हुआ है।

दिगम्बर संप्रदाय भगवान महावीर को अविवाहित मानता है, परंतु श्वेतांबर संप्रदाय उनको विवाहित मानता है। श्री भगवान के मोक्षगामी होने के बहुत वर्ष के अनन्तर विदेह देशमें घोर अकाल पड़ा था। फलतः उनके अनुयायी, जो जीवित बच सके, दक्षिण की ओर चले गये। अनुयायियों के तितर-बितर हो जाने के कारण बहुत सी धार्मिक सामग्री नष्ट भ्रष्ट हो गयी तथा उनके जीवन वृत्तान्त का बहुत कुछ भाग लुप्त हो गया। अतएव, ऐतिहासिक आधार पर उनकी जीवनी का लिखना असंभव हो गया। कहा जाता है कि उनकी पत्नी का नाम यशोदा तथा कन्या का प्रियदर्शना था। कुछ हो, विवाह होने व न होने से उनकी वैयक्तित महत्ता पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। यह ग्रंथ सांप्रदायिक दृष्टि-कोण से नहीं लिखा गया है, अतः लेखक का क्या मत है, यह जाना नहीं जा सकता। यों तो लेखक ने मुक्तिदारा का पति मानकर भगवान की पूजा-प्रशंसा की है।

"वर्धमान काव्य" शान्त रस से परिपूर्ण वैराग्य और भक्तिपरक है। १६ वर्ष की अल्पावस्था में ही महावीर की वैराग्य भावना प्रबल हो जाती है। प्राकृतिक उपादन भी वैराग्य प्रेरक होते है-

मनुष्य का जीवन है वसन्त सा।
हिमर्तु प्रारंभ निदाघ अन्त में।[१]

"वर्धमान काव्य"के १३ वें सर्ग में वैराग्य को परिपुष्ट करनेवाली अनित्य,

---

१. "'वर्धमान' : कवि अनूप शर्मा "आ[illegible]" पृ.११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आश्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधि, दुर्लभ और धर्म इन द्वादश भावनाओं का अनुचिन्तन प्रस्तुत किया गया है।

कवि ने काव्य में वर्णन, प्रकृति चित्रण, कथानक, प्रेमश्रृंगार, षड्ऋतुओं का वर्णन, वैराग्य और उपदेशात्मक तथ्य आदि विषयानुसार क्रम से सर्गो का विभाजन किया है। कवि ने भगवान महावीर के जन्म से लेकर निर्वाण तक का सजीव चित्रण किया है। उन्होने भगवान महावीर के जीवन को अन्तस तक टटोलकर पाठक के सामने उजागर करने में सफल हुए है। जिस समय भगवान अन्तर बाह्य सब प्रकार के परिग्रहों से मुक्त होकर विकार शून्य दिगम्बराकार, अनुपम रत्नत्रय आभूषण को धवल-धारक बने उस समय से दीक्षा चित्रण का सुंदर चित्रांकन किया है।

अहो। अलंकार विहाय रत्न के,
अनुप रत्नत्रय, भूषितांग हो,
तजे हुए अंबर अंग-अंग से,
दिगम्बराकार विकार शून्य हो ॥ [१]

भगवान महावीर ने तीस वर्ष की सुख वैभव पूर्ण युवावस्था में अनित्य, अस्थिर एवं नश्वर जान परित्याग कर योग साधना के कठिन मार्ग को अपनाया। सम्पन्न जीवन का त्यागकर सामान्य जन जैसा जीवन स्वीकार किया और इसी कारण वे एक प्रियदर्शी लोकनायक के रूप में प्रसिद्ध हुए।

प्रस्तुत वर्धमान काव्य लिखने का कवि का मूल उद्देश्य जीवन के सत्यांश की प्रतिष्ठा करना रहा है। तथा भगवान महावीर के बताये हुए वैयक्तिक, सामाजिक, बौद्धिक, धार्मिक सभी स्तरों पर अहिंसक क्रांति का मार्ग प्रशस्त करना है। अहिंसा, अपरिग्रह के बल पर राष्ट्र के प्राणियों को नवचेतना देना ही मुख्य उद्देश्य रहा है। उनका समस्त जीवन ही राष्ट्र के लिए समर्पित था। स्व और पर का कल्याण करते हुए आत्मोत्थान करना ही भगवान का लक्ष्य रहा है। भगवान महावीर आत्मवादी थे। उनका यह अभिमत था कि हर व्यक्ति अपनी पहचान करके अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है। इसी संदर्भ में उन्होने 'अप्पा दिवो भव' आत्म दिपक बनो, इस प्रेरक सूत्र का संधान किया। कवि ने महाकाव्यों के अनुरूप 'वर्धमान' में वर्णन सौंदर्य, पद-लालित्य, अर्थ गांभिर्य रस, निर्जर और

---

१. "वर्धमान" : कवि अनूप शर्मा सर्ग -१४, पृ.४३२, पद -११९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काव्य-कौशल सभी का समावेश किया है। पद-पद पर रूपको, उपमाओं और अन्य अलंकारो की छटा दर्शनीय है। अलंकार निदर्शन के लिए शब्दावृत्ति, अर्थावृत्ति और अनुप्रास आदि का यशोचित उपयोग किया गया है -

भयन्द हेमन्त जलेव भूप की,
सु दीर्घ हेमंत निशेव आयु थी।
सुसह्य हेमनेत जीव पार्थ के,
विनष्ट हेमंत नलेव शत्रु थे ।।[१]

परंपरागत अलंकार कौशल के अतिरिक्त कविवर अनूप ने 'वर्धमान' काव्य में अपनी भावमयी कल्पना से सुषमा के अनेक नये सुमन खिलाये। कहीं कहीं शब्दों की कल्पना में अर्थ और मृदुता का इतना विस्तार भरा है कि परिभाषाएँ और कल्पनाएँ काव्यमय हो गई है।

यद्यपि भाषा-शैली की दृष्टि से यह सफल कृति है, फिर भी कहीं-कहीं भाषा में विलष्टता आ गयी है। जिससे समजाने में कठिनता भी उत्पन्न होती है।

वास्तव में 'वर्धमान' काव्य प्रधानतः भक्ति और वैराग्य का काव्य है। भगवान महावीर ने अविचलित कठोर तपस्या, निरन्तर आत्मचिन्तन एवं मौन साधना के बाद ही कैवल्य सर्वज्ञता की प्राप्ति की। कैवल्य प्राप्ति के बाद भगवान 'वर्धमान' ने जो उपदेश दिये है, कविवर श्री अनूप ने इस महाकाव्य में उन्हें आचार की पवित्रता एवं दोष त्याग की प्रधानता से युक्त किया है। प्रारंभ से अंत तक कवि का दृष्टिकोण यही रहा हैं कि 'वर्धमान' महाकाव्य सर्व साधारण के लिए बोधगम्य हो और इसके उपदेश जीवनोपयोगी हो। कवि ने इसका पूरा ध्यान रखा है-

जितन्द्र बोले यह धर्म वाक्य,
जो कि सर्व साधारण बोधगम्य थे।
गृहस्थ के साधु समाज के सभी,
बता चले धर्म तथैव कर्म भो ।।[१]

---

१. "वर्धमान" : कवि अनूप शर्मा प्रथम सर्ग, पद. सं. ४३, पृ. ४५.

२. वही, सर्ग-१७, पद. सं. १४९, पृ. ५६२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसे उदात्त भावों से परिपूरित कविवर पं. अनूप शर्मा की यह अनुपम कृति 'वर्धमान महाकाव्य' मनुष्य मात्र के जीवन के उन्नयन हेतु पठनीय, माननीय और आचरणीय है।

***

भगवान महावीर (महाकाव्य)

रचयिता - **कवि रामकृष्ण शर्मा**

कवि शर्माजी द्वारा रचित प्रस्तुत 'भगवान महावीर' काव्य हिन्दी साहित्य में रचित श्रेष्ठ महाकाव्य है। इसमें सभी तत्वों का समावेश हो जाता है। उदात्त कथानक, उदात्त चरित्र, उदात्त भाव, उदात्त कार्य और उदात्त शैली आदि लक्षणों से युक्त यह महाकाव्य है। 'भगवान महावीर'महाकाव्य प्रोढ़तम काव्य-रचना का सूचक है। यह भगवान महावीर काव्य इक्कीस सर्गो में बाँटा हुआ है। प्रत्येक सर्ग में एक रस और एक छन्द का निरुपण किया है। सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तन है और आगामी सर्ग का संकेत भी किया है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में कुछ न कुछ संबोंधन के रूपमें निरूपण है। यह कवि की विशेषता है।

जब मैने ग्रंथ के पृष्ठ पर दृष्टि डाली तो उसमें बड़े अक्षरो में यही लिखा हुआ था कि "राष्ट्रीय एकता, अखण्डता एवं विश्व-शान्ति के लिए समर्पित।" उनके हृदय मे राष्ट्र के प्रति प्रेम फूट फूट भरा है जो इस ग्रन्थ से परिलक्षित होता है। उषाकालीन प्रभात से कवि ने काव्य का प्रारंभ किया है। महाकाव्य के समस्त गुणों का निर्वाह शर्माजी के काव्यमें निहित है। भगवान महावीर काव्य सत्यं शिवं सुंदरमं की सूक्ति से युक्त है।

कवि अपने उद्गारों को व्यक्त करते हुए कहते है कि इस विश्व में विविध प्रकार के धर्म व्याप्त हैं। किन्तु सभी धर्मो का सिद्धांत एक ही है। चाहे जैन हो या हिन्दू हो, या मुस्लीम, शिख, पारसी हो इश्वर तो एक ही है। सभी संप्रदाय मिलकर अहिंसा का झंडा लहरा कर विश्व में शान्ति का दीप जलायें। महावीर के मार्ग पर चलकर वसुन्धरा को स्वर्ग बनाये। इसी बात का कवि काव्य के माध्यम से जगत को उदबोधन देना चाहते हैं।

कविने सर्ग के आरंभ में भारत देश की परिस्थितियों का वर्णन किया है। ततूपश्चात कविने सेवक रूप बनकर काव्य की रचना करना प्रारंभ किया है। लघुता चरण करने से ही कार्य की सिद्धि होती है। कविने काव्य का प्रारंभ मंगलाचरण से किया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। जिस में त्रिशलानंदन वीर की आत्मभाव से आरती उतारी है। प्रथम सर्ग "दिव्य प्रेरणा" में कविने सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण किया है। ऐसे समय पर सुख-शान्ति का महा पाठ पढाने के लिए दिव्य प्रेरणा देने के लिए इस धरा पर मनुष्य के रूप में दिव्यज्योति जन्म लेती है, उसे पाकर मानव जगत धन्य हो जाता है। इस सर्ग में कवि ने ऋषभदेव के चरित्र का भी संकेत दिया है कविने दिगंबर, श्वेतांबर मान्यताओं का सामञ्जस्य करते हुए भगवान के जन्म आदि के बारे में विवेचन किया है। कवि ने अरिहंत के बारह गुणों का अर्थात् आठ प्रतिहार्य और चार अतिशय का काव्य में वर्णन किया हैं। 'जन्मधाम' सर्ग में वीर की जन्मस्थली की चर्चा की है। राजा सिद्धार्थ और रानी त्रिशला के विषय में विद्वानो के मतभदों का वर्णन तथा त्रिशला के सौंदर्य का सुंदर वर्णन किया है। भगवान के जन्म से पूर्व में प्रकृति के अनुकूल अलौकिक चित्र को कविने निरूपित किया है। 'दिव्यशक्ति अवतरण' सर्ग में गर्भ परिवर्तन का विवरण, सोलह स्वप्नो का फलादेश, जन्म के समय चारो और जड़ और चेतन प्रकृति में हर्षोल्लात्स का मनोरम वातावरण, जन्मोत्सव मनाना दानादि का वर्णन किया है। 'शैशवलीला' सर्ग में कविने अपनी काव्य कौशलता से प्रभु की बाल्यावस्था का शारीरिक एवं सौंदर्य-चेष्टाओं का उनकी अन्तः प्रकृति का भी सजीव और हृदयग्राही चित्र अंकित किया है। उनके वात्सल्य-चित्रण में ममतामयी माता के स्नेहपूर्ण हृदय की व्याकुलता और औत्सुक्य की व्यंजना भी सुंदर बन पड़ी है। जिस समय माता त्रिशला मुदित होकर पलने में झुला झुलाकर मधुर स्वरों में सब मिलकर लोरियाँ गा रही है उस समय के वात्सल्य का सजीव चित्रण कविने किया है।

गाती रसमय मुदित लोरियाँ
आओ परियाँ नवल गोरीयाँ।[१]

***

आरी निंदीया। प्यारी निंदिया।
माथे सोहे मोहन बिंदीया। [२]

भगवान घूटनियाँ से चलना सीख रहे है उस समय का तादृश्य अद्वितिय चित्रण किया है-

---

१. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "शैशवलीला" सर्ग-४, पृ.४६
२. वही, पृ.४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छम छम पायल बजती
किंकिनियाँ कलखसा
माता के मन आनंद भरती [१]

***

झूम झनन झून झनियाँ
बजती पैरो में पैजनियाँ
लाला चलता चाल घुंटनियाँ। [२]

माता से बालक कहता है कि है माँ ! मुझे चन्दा दे दो, मैं खेल खेलूंगाँ -

मच गया शिशु दे मां चन्दा
खेल रचाउँगा गल फन्दा ॥ [३]
दे दे गेंद चंदनी डंडा
बना कलम यह ले सरकंडा ॥ [४]

जिस समय वर्धमान बालक पनहारिन का खेल खेल रहा था, बालक ने दुलहनियाँ की मथनियाँ पर पत्थर मारा तो गिर पडी। इसी का अलौकिक चित्रण कवि ने काव्य में किया है।

मारा ढे ला गिरी मथनियाँ।
लड़ने को आ गई दुलहनियाँ ॥
बरजो रानी बालक अपना
अभी उम्र का छौना छोटा,
दिखा रहा रसरंजित सपना ॥

इस प्रकार कवि ने काव्य में विविध प्रकार की क्रीडा द्वारा बालक की बालसुलभ चेष्टा का सुंदर चित्रण किया है। यह बाल लीला वर्णन हमे सूर के बालवर्णन की स्मृति कराता है। कविवर सूरसागर का प्रभाव स्पष्ट लगता है। 'ज्ञान-सौपान' सर्ग में कविने बालक को ज्ञानार्जन के लिए कलाचार्य के पास भेजने, बड़े भाई नन्दी वर्धन द्वारा छोटे

---

१. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "शैशवलीला" सर्ग-४, पृ.४८
२. वही
३. वही, पृ.४९
४. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाई वर्धमान कुमार को ज्ञान और जीवन की व्याख्या समझाने का सुंदर ढंग से काव्य में अंकन किया है। 'परिणय सूत्र' सर्ग में कविने विवाह प्रसंग का सजीव चित्रण किया है। शादी के पश्चात् माता द्वारा बेटी यशोदा को दिये गये हितोपदेश का अंकन किया है। यशोदा के विरह वर्णन के करूण दृश्य को कविने अनूठे ढंग से व्यक्त किया है। 'सदगृहस्थ सरिता' सर्ग में राजकुमार वर्धमान और रानी यशोदा ने माता-पिता की सेवा का दृढ संकल्प करना, गृहस्थ जीवन के कर्तव्यों को निभाना और लड़की को जन्म देना आदि विस्तृत वर्णन हुआ है। 'प्रव्रज्या प्रस्ताव' सर्ग में कविने माता-पिता व बड़े भाई से दिक्षा की आज्ञा प्रदान करने का, वर्धमान कुमार को समझाना, माता-पिता के स्वर्गवास के बाद दिक्षा ग्रहण करना आदि बातें कविने तर्क सहित समझायी है। बड़े भैया का छोटे भैया का प्रति प्रेम वात्सल्य तथा छोटे भाई का बड़े भाई के प्रति मान-मर्यादा, आदर, सन्मान, आज्ञा-पालन करना आदि विविध बातें प्रस्तुत कर कविने काव्य के द्वारा जन-जगत को बोध दिया है कि माता-पिता एवं परिवार के साथ किस प्रकार विनयादि व्यवहार रखना चाहिए ? नन्दीवर्धन उपदेशामृत सर्ग में कविने नन्दीवर्धन के शब्दों में छोटे भाई को समझाने का वर्णन किया है। भाई-भाई में परस्पर कितना स्नहे है यह तथ्य इस सर्ग से ज्ञात होता है। 'संन्यस्तसर्ग' में भगवान की वैराग्यपूर्ण दशा, लौकांतिक देवादि द्वारा दिक्षा का भव्य समारोह, दैनिक वाजिंत्र, चारों और पुष्पों की वर्षा, सुगंधमयी वातावरण, प्रकृति में भी अनुकूल वातावरण आदि का चित्रण कवि ने सजीव रूप से प्रस्तुत किया है। 'तपस्या' सर्ग में महावीर सुख-साधनों को छोड़कर साधना के कंटकाकीर्ण पथ पर बढ़ चले। उतार-चढ़ाव, अनुकूलता-प्रतिकूलता आदि संयोगों में भी भगवान लेशमात्र भी विचलित नहीं हुए उसी का वर्णन कविने इस सर्ग में किया है। ''चंदनाउद्धार'' सर्ग में कविने चंदना को किन-किन परिस्थितियों में गुजरना पड़ा तत पश्चात् नारी का उत्थान, भगवानने कैसे किया उसीका उत्तम चित्रण काव्य में किया है। 'ऋजुकूला जृम्भि' का सर्ग में कवि ने भगवान के केवल ज्ञान प्राप्ति का वर्णन दिया है। 'समवशरण परिषद' सर्ग में भगवान को केवल ज्ञान के पश्चात् देवों द्वारा समवशरण की भव्य और विराट रचना, ग्यारह गणधरों की शंका का समाधान, उपदेश सुनना, भगवान के शिष्य बनना आदि का वर्णन इस सर्ग में है। 'यशोदा विरह' सर्ग में कविने यशोदा का विरह वर्णन किया है। वह लौकिक न होकर अलौकिक है क्योंकि भगवान महावीर साधारण पुरूष नहीं थे और उनके साथ संबंध नारी सामान्य नहीं थी। यशोदा भगवान के प्रति अनुनय-विनय में अपने अन्तर की निश्चल और अलौकिक भावना प्रगट करती है। वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने प्रियतम को किसी न किसी प्रकार प्राप्त करना चाहती है। प्रकृति के कण-कण में उसे खोजने का प्रयास करती है। 'वैशाली परिवर्तन' सर्ग में भगवान के पदार्पण से जड़ व चेतन प्रकृति में परिवर्तन, नगरजनों में उल्लास, पत्नी यशोदा और लड़की प्रियदर्शना का वंदन हेतु भगवान के पास आना आदि प्रसंगो का चित्रण है। 'जन कल्याक ज्योति' सर्ग में भगवान का विविध स्थानों में भ्रमण करते हुए जनता का कल्याण करने का वर्णन है। "भारत भ्रमण सर्ग" में कविने भगवान की वह वाणी जो जगत के कल्याण हेतु गूंज रही थी, जिस अद्भूत एवं जादू भरी वाणी से भारत जाग्रत हो उठा था। उसकी चर्चा की है। 'चतुर्विध संघ व्यवस्था' सर्ग में भगवानने चतुर्विध संघ की स्थापना करने में जो प्रयास किया है वह पूर्णतः सफल हुआ है इस में संघ की स्थापना, एकता का जो वातावरण बना उसका उत्सव हुआ है। 'पावापुर निर्माण' सर्ग में कविने भगवान के निर्वाण समय का करूण व सजीव चित्रण खींचा है। 'तीर्थंकर चिन्तन' सर्ग में कविने भगवान द्वारा प्रतिपादित तात्विक जैन ज्ञान-दर्शन का स्पष्ट रूप से विवेचन किया है। अंतमें कविने भावांजलि द्वारा अपने भावों को व्यक्त किया है। कवि का भारतभूमि के प्रति कितना अनन्य प्रेम है वह कविता के अध्ययन से ही ज्ञात हो सकता है।

प्रस्तुत काव्य लिखने का कवि का मूल उद्देश्य जन कल्याण रहा है। महावीर की वाणी जन-जन तक पहुँचाकर देश का उत्थान हो। संसार में विषमताएँ, दुराचार, अहिंसा आदि का विस्तार बढ़ चूका है। उन सभी बुराईओं को दूर करने के लिए काव्य के माध्यम से भगवान का अमर संदेश विश्व में फैलाकर शांति का राज्य स्थापित हो, यह कवि का मूल उद्देश्य छिपा हुआ है। भाषा-शैली की दृष्टि से यह महावीर सफल काव्य है। सर्ग के अनुपांत में अवश्य कहीं कहीं बेमेल है। जैसे 'तीर्थंकर चिन्तन' सर्ग कविने विस्तृत किया है जो संपूर्ण दार्शनिक तत्वों से सभर लेने से पाठक के हृदय पर शुष्कता भी पैदा हो सकती है। फिर भी काव्य के अंदर गहराई से डुबकी लगाने पर ही हमें उज्ज्वल मोती प्राप्त हो सकते हैं। साधना, ध्यान, तपस्या, सेवा और परोपकार द्वारा ही हम शुभ्र मणियों को प्राप्त कर सकते हैं।

***

चरम तीर्थंकर भगवान महावीर

-आचार्य श्रीमद् विद्याचंद्रसूरि

चरम तीर्थंकर श्री महावीर श्रीमद आचार्य विजय विद्याचन्द्र सूरीजी द्वारा रचित सचित्र काव्य है। कृति भगवान महावीर के २५०० वें निर्वाणोत्सव के अवसर पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशित हुई थी। आचार्य श्री जैन साधु हैं, विद्वान कवि होने के कारण उन्होने अपनी कवित्व शक्ति का प्रयोग आध्यात्म चिंतन एवं भगवद् भक्ति के प्रचार प्रसार के लिए किया। श्री मदनलाल जोशी ने अपने संपादकीय में सच ही लिखा है कि 'प्रस्तुत काव्य के माध्यम से भगवान महावीर का त्याग तप एवं साधना में लीन आदर्श जीवन प्रस्तुत कर जहाँ भौतिकवादी इस युग के समक्ष महावीर की अहिंसा, महावीर के सत्य एवं उनके अस्तेय ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह आदि मौलिक एवं शाश्वत सिद्धांतो की उपयोगिता के साथ आध्यात्मिक चेतना की जागृति का कार्य किया, यहीं हिन्दी साहित्य को भी संपन्न एवं समवर्धनशील बनाने का प्रशंसनीय कार्य किया है।'

जैन मुनियों ने मात्र आत्मसाधना ही नहीं कि है, अपितु उत्तम साहित्य की मौलिक रचना की है। प्रायः सभी विषयों पर ज्ञानवर्धक साहित्य की रचना वे हजारों वर्षो से करते आ रहे हैं। संस्कृत, प्राकृतिक अपभ्रंश की साहित्य सम्पदा से जैन साहित्य ही नहीं भारतीय भाषाओं का साहित्य भी समृद्ध हुआ है। संस्कृत के स्त्रोत साहित्य को देखें तो जैन स्त्रोत साहित्य सब से अधिक समृद्ध हैं।

वर्तमान युग में जन भाषा हिन्दी में भी उत्तम काव्य रचनायें इन साधकों ने प्रस्तुत की हैं। वर्तमान युग में अनेक जैन मुनि गद्य-पद्यमय रचनाओं का सृजन कर रहे हैं जिन में आचार्य विद्यासागर, आचार्य तुलसी और आचार्य महाप्रज्ञ, नानालाल महाराज, जवाहरमुनि, मधुकरमुनि, अमरमुनि, आदि अनेक संत हैं, इन्हीं की ज्योर्तिमय परंपरा में विजय विद्याचन्द्र सूरीजी का भी स्थान है। उनकी अन्य प्रबंध रचनाओं में दशावतारी महाकाव्य, शिवादेवी नन्दन काव्य हैं और यह चरम तीर्थंकर महावीर उनका चरित्र काव्य है। जैन मुनियों द्वारा प्रस्तुत साहित्य की विशेषता यह है कि उन्होने उत्तम चरित्रों का आलेखन कर जन समाज को उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया। उनकी कृतियों धार्मिक से अधिक चरित्र निर्माण की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण हैं।

पण्डित हीरालाल शास्त्री ने लिखा है-उदियमान समाज के सामने नवीन आयामों, नवीन वैज्ञानिक विश्लेषणों से युक्त तर्कबद्ध धार्मिक पुष्टियों एवं मान्यताओं को रखना आवश्यक है, जिसके चिंतन की दिशा में युवा मानस आत्मचिंतन करता रहें तथा अपनी परंपरागत सांस्कृतिक धरोहर को विशेष सँवारने, जीवित रखने में बौद्धिक एवं वैचारिक पृष्टि प्रदान करता रहें। .....शास्त्रतत्व चिंतन जैसे शुष्क विषय को लोकप्रति तथा सरल सरस दंग से प्रस्तुत करने का विधि वैचित्रय है पद्य एवं काव्य।

सामान्यतः धर्म और उसके सिद्धांतों की चर्चा शुष्क और नीरस मानी जाती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। परन्तु काव्य के मधुर संगीतात्मक पुट से उस नीरसता को भी सरसता में परिवर्तित करने का कार्य कवि करते हैं। मुनि श्री ने भगवान महावीर के पूर्व भवों और वर्तमान जीवन की घटनाओं का मार्मिक विश्लेषण किया है। उनके गुणों, शक्ति सिद्धांतो का तर्कबद्ध शैली में प्रस्तुतीकरण हुआ है।

आचार्यश्रीने अपने प्राक्कथन में कृति के विषय में बहुत कुछ स्पष्टताएँ की हैं। रचना का उद्देश्य प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं कि वर्तमान साहित्य से उत्पन्न विकृत हटाने के लिए आचार्यों, विद्वानों, संतों, साहित्यकारों, कवियों एवं कलाकारों का यह परम कर्तव्य है कि वे अपनी तपः पूत साधना के द्वारा ऐसे साहित्य की रचना करें जो आज के मानव को विशेषकर युवावर्ग को सही दिशा प्रदान कर सके। और उनके जीवन में धार्मिक प्रवृत्ति, नैतिक निष्ठा तथा आध्यात्मिक चेतना की जागृति हो सके। मुनि श्री मानते हैं कि दिव्य चरित्र के पावन प्रकाश की अनुभूति महापुरूषों के चरित्रों से ही होती हैं। उनके गुरुदेव ने उन्हें प्रेरणा और उपदेश देते हुए कहा था-"उत्तम साहित्य से अपने मस्तिष्क का भंडार भरों और सदैव स्वाध्याय शील बनों इससे जीवन में चारित्रिक विकास होता है। सत् साहित्य के स्वाध्याय के आधार पर उस के अनुरूप विचारों से जैन दर्शन के साहित्य की अभिवृद्धि करों।" गुरुदेव के इसी आशीर्वाद का फल मुनिश्री की प्रबंध और मुक्तक रचनाएँ हैं।

कृति में भगवान महावीर के पूर्व २६ भवों का वर्णन हैं, भगवान महावीर के पांचों कल्याणकों का वर्णन हैं। साथ ही ११ गणधर के ऐतिहासिक तथ्यों का निरूपण करते हुए गणधरवाद के संबंध में दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। कृति इन्हीं चरम तीर्थंकर श्री महावीर को समर्पित की गई है जो ज्योतिपुंज, जगत के आधार हैं। जिन की वाणी जनकल्याणी है और उन्होने सतपथ दिखलाकर जगत के जीवों का कल्याण किया हैं।

कृति का प्रारंभ मंगलाचरण से हुआ है जिसमें कवि भरतक्षेत्र की पावन भूमि को वंदन करता है जहाँ उन्नत सिद्धात्माओं ने जन्म लेकर जग का कल्याण किया। वे महावीर और गुरुवर यतिन्द्रसूरीजी को वंदन करते हैं। कवि की नम्रता यह है कि वह इस काव्य रचना को प्रभु की कृपा का ही वरदान मानते हैं जिससे प्रेरित होकर वह उनके गुण-गान करने के लिए प्रस्तुत हुए हैं। कृति का प्रारंभ कवि ने महावीर के प्रथम भव महाराज नयसार से प्रारंभ किया है और महावीर से पूर्व २६ भवों में विविधवार कर्मो और भावों के कारण देव, नारकी, तिर्यंच, मनुष्य योनि धारण करता रहा है। कभी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यकत्व धारणकर उच्च पदों पर रहा तो कभी मिथ्याज्ञान में फँसकर कष्ट भी सहन करता रहा। इस प्रकार २६ भवों को भोगता हुआ अंत में तीर्थंकर गोत्र के शुभबंध को बांधकर महावीर के रूप में जन्मे। कवि ने प्रथम ३९ पदों में इन २६ भवों की अति संक्षिप्त में प्रस्तुति की है। इन भव वर्णनों का उद्देश्य सिद्ध करता हैं कि मनुष्य को सत्य या असत्य, उच्च या नीच, स्वर्ग-नर्क, सुख-दुःख सभी पूर्व और वर्तमान कर्मो के कारण ही उपलब्ध होते हैं। कर्म को ही मूलाधार माननेवाला जैन दर्शन यह स्पष्ट करता है कि मरीचि का जीव यह जानकर भी कि उसे तीर्थंकर बनना हैं, -यहि वह तदनरूप साधना नहीं करता है तो उसे भी भव-भव भटकना पड़ता है। विभिन्न परिस्थितियों में और विपरीत परिस्थितियों में जो क्षमा, करुणा, समता और सम्यकत्व धारण नहीं कर सकता उसे नरक और तिर्यंच गति भी भोगनी पड़ती है। महावीर के ये पूर्वभव यही दर्शाते हैं कि व्यक्ति को सम्यकत्व धारण कर शुभ कार्य करने चाहिए। अन्यथा उत्तम जन्म और मुक्ति नहीं मिल सकती। इसके उदाहरण स्वयं उनके ये पूर्व भव हैं।

कवि मुनि श्री विजयविद्याचनद्रसूरिजी मूर्तिपूजक श्वेतांबर आम्नाय के आचार्य होने से पूरी काव्य रचना का आधार श्वेतांबर मान्यता एवं परंपरा रही है। जो स्वाभाविक भी है। भ. महावीर की कतिपय जीवन घटनाओं तक ही ये मान्यताएँ पृथक हैं। सिद्धांतो उपदेशों में कोई अंतर नहीं है।

तीर्थंकरो के गर्भ (च्यवन) जन्म, दीक्षा, केवल ज्ञान एवं मोक्ष ये पांच महत्वपूर्ण जीवन के प्रसंग या घटनाएँ होती है। जिन्हें जैन परिभाषा में कल्याणक कहा गया है। मान्यता के अनुसार ये घटनाएँ विश्व का कल्याण करनेवाली होती है। जगत के जन-जन के सुख हेतुक होती है। तीर्थंकर का गर्भ में आना ही इस तथ्य का प्रतीक होता है कि धरती पर ऐसी भव्य दिव्य आत्मा जन्म लेने जा रही है जो स्वयं कष्ठ सहकर भी विश्व में फैले संकटों का निवारण करेगा। अन्याय, हिंसा, अनीति, वहम, कुरीतियों के अंधकार को अपमे व्यक्तित्व एवं कृतित्व की किरणों से काटेगा। उनका जन्म चराचर के लिए आनंदोत्सव का कारण इसीलिए बनता है। उसके जन्म का उत्सव सभी मनाते हैं। जागरण के अग्रदूत का स्वागत होता है। वातावरण में प्रसन्नता, सुखन्याय अंकुरित होने लगते हैं। संसार के सभी उपलब्ध भौतिक सुख बाँध नहीं पाते। संसार को सुख प्रदान करने के लिए दुःख से छुटकारा दिलाने के लिए वह राजवैभव छोड़कर सर्वस्व त्याग तर उस पथ का पथिक बनता है। जहाँ से संसार के सुख के अमृत की खोज प्रारंभ होती है। वह स्वयं प्रकाशित होता है और पर प्रकाश का उपाय प्राप्त कर लेता है। तीनों लोकों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का ज्ञान उसमें झलकने लगता है। वह बड़े से बड़े कष्ट, दुःख, वेदना, परिषह, सहन कर क्षमा का दान देकर मानों लोगों को सहनशक्ति एवं सत्य के लिए समर्पण की प्रेरणा देते है। पूर्णज्ञान की उपलब्धि प्राप्त करके वह जगत के लोगों को ज्ञान के आलोक की ज्योति प्रदान करता है। वह धर्म सभाओं द्वारा ज्ञान का प्रसार करता है। तीर्थ की स्थापना करता है। नए युग, नए ज्ञान के प्रकाश की किरणें बिखेरता है और अंत में अपने आत्मा के समस्त दोषों से मुक्त होकर संसार भ्रमणों के कारणों से मुक्त होकर सिद्धत्व की अंतिम मंजिल पर प्रतिष्ठित हो जाता है। उसके निर्वाण के बाद भी युगों तक उसके सिद्धांत जन-जन के पथ दर्शक बने रहते हैं।

जैन मान्यता के अनुसार ये पांच कल्याणक मनाये गये इन्हीं का भक्ति पूर्ण साहित्यिक वर्णन मुनिश्री ने किया है। उन्होने महावीर के पूर्व भव नन्दनमुनि के मासोपवास का वर्णन किया है एवं तदनन्तर देवानन्दा के गर्भ में ८२ दिन तक रहने का वर्णन श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार किया है।

उत्तम तीर्थंकर गौत्र का जीव माता के गर्भ में आते ही उनके कारण माता उत्तम चौहह स्वप्न दैखती हैं।[१] ये स्वप्न प्रतीकात्मक होते हैं जो अवतरित बालक के रूप, गुण, शिक्षा, प्रतिष्ठा, लोक कल्याण संयम तथा मुक्ति के प्रतीक होते हैं। गर्भस्थ शिशु के समाचार जानकर इन्द्र कुशल देवांगनाओं को माता की सेवा मे नियुक्त करती हैं। चारों दिशाओं में सुख, समृद्धि और वसंत का आनन्द छा जाता हैं। अकाल आदि दूर हो जाते हैं। प्रजा धन-धान्य से सुखी होती है। वातावरण में धर्ममय, सुखमय, परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगता है।

चैत्र मास की त्रियोदशी के दिन महावीर का जन्म होता है। तीनों लोकों में आनंद छा जाता है। छप्पनकुमारियाँ दशों दिशाओं से माता की सेवा के लिए, जन्मोत्सव की खुशी मनाने के लिए आ जाती है। जननी और पुत्र को स्नान कराती हैं, विविध प्रकार के नृत्य करती हैं, गीत गाती हैं। तीर्थंकर के जन्म से इन्द्र का आसन डोलता है। वह अनेक देवों के साथ क्षत्रिय कुण्ड में आता है और सभी देवगण अभिषेक के लिए शिशु महावीर को सुमेरु पर्वत पर ले जाता है। सौधर्म इशान आदि इन्द्र प्रभु को गोदी में लेकर बैठते है। और प्रभु का क्लशों से अभिषेक करते हैं। देवांगनायें मधुर गीत गाती

१. दिगम्बर सम्प्रदाय में सोलह स्वप्नों का उल्लेख हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं और इन्द्रगण भगवान के रूप को देखकर इतने प्रसन्न और विह्वल हो जाते हैं कि अपने अनेक रूप ही नहीं बनाते अपितु पूरे शरीर में आँखे बनाकर प्रभु को निहारते है। अष्ट द्रव्य से शिशु की पूजा करते हैं। बालक को माता के पास रखकर सभी देवगण नन्दीश्वर द्वीप की वंदना करने जाते हैं। आठ दिन तक उत्सव मनाया जाता है। सारा नगर और प्रान्त इस उत्सव में आनंदित हो जाता हैं, वातावरण मधुर बनता हैं, माँ शिशु का मुख निहारकर धन्य हो उठती हैं। (दिगम्बर मान्यता के अनुसार शची माता के पास मायावी शिशु सुलाकर अभिषेक के लिए तीर्थंकर शिशु को ले जाती है।)

बालक का नाम वर्धमान रखा जाता है। उनका लालन-पालन सुख-समृद्धि और लाड-प्यार में होने लगता है। उनके चरण-कमल से कोमलतायें, रूप कामदेव सा सुन्दर था, उनकी कटी और वक्ष सिंह के सदृश्य थे, शरीर चन्द्र सा धवल और शीतल था। शरीर वज्रऋषम नाराच सा मजबूत और सोने से तपी देह लोगों को आकर्षिक करती। पिता की गोदी में खेलते हुए वर्धमान मनोहर लगते हैं, उसकी बालचेष्टायें और क्रीडायें सभी का मन मोह लेती है। आठ वर्ष के राजकुमार मित्रों के साथ खेलते हैं। इसी समय एक मिथ्यात्वी देव उनका परीक्षण साप बनकर करने आता है, लेकिन वर्धमान उसे साधारण रस्सी सा पकड़ कर फेंक देते हैं और दूसरी बार उसके बालक रूप में उसकी पीठपर चढ कर मुष्ठी प्रहार से उसे घायल भी करते हैं और जब वह देव असली रूप में आकर क्षमा करता है तो उसे क्षमा देते हैं-

जो आगे बढ आयेगा वह, चढे पीठ पर उतनी बार।
इसी नियम से आगे बढकर, चढे पीठ पर राजकुमार।
यो मित्रों के साथ खेलकर, जीत गये सिद्धार्थकुमार।
देख अवधि से दृष्य इन्द्र ने, कहे सुरों से आत्म-विचार।[1]

***

क्षमा-याचना कर तू इनसे, ये हैं करुणाकर प्रभु वीर।
इनकी करुणा-दृष्टि अमृत-सी, हरती है भव-भय की पीर।
प्रभु वन्दन कर सविनय सुरने, लिया क्षमा का अनुपम दान।
प्रभु गुण गाता गया इन्द्र संग, देवमुक्ति हो अपने स्थान।[2]

---

१. चरम तीर्थंकर महावीर : आचार्य श्री विद्याचन्द्र सूरि, पृ. १९
२. वही, पृ.२०, पद सं. ७४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्धमान का समरवीर राजा की कन्या यशोदा से विवाह होता है। (दिगम्बर आम्नाय में महावीर को बालब्रह्मचारी और अविवाहित बताया गया है :जगत का विध्वंस और निर्माण, जन्म और मरण की परंपरा को देखकर उनका मन वैराग्य से भर उठता है वे सोचते हैं मैं उस पथ का पथिक बनना चाहता हूँ जो कर्मो से प्रपंच से मुक्ति की ओर ले जाता है।

वर्धमान के मन का वैराग्य जानकर लोकांतिक देव उन्हें प्रेरित करते हैं और अपने बडे भाई नन्दीवर्धन से आज्ञा लेकर दीक्षा ग्रहण करना चाहते हैं। तीस वर्ष की अवस्था में वे घर छोड़ते हैं। दीक्षा उत्सव मनाया जाता है, धूमधाम से उनकी शोभायात्रा निकाली जाती है और अशोक वन में पहुँचकर पंचमुष्ठि केशलुंचन करते हैं। उन्हें चौथा मनःपर्याय ज्ञान प्राप्त होता है। प्रभु एक योगी की कुटिया पर पहुँचते हैं और वहाँ से भी पंच अभिग्रह धारण कर सम्पूर्ण परिग्रह त्यागकर करपात्री बनकर वनमें परिषह सहते हुए तपस्या करने लगते हैं। चार मास तक अनेक परिषह सहकर वे परिषह जयी बनें। तपस्या के दौरान उनपर गोपालकों के प्रहार, शूलपाणी यक्ष द्वारा किये गये अनेक उपसर्ग होते रहें। चंडकौशिक जैसे विषधर को भी क्षमा का दान दिया जब कभी भी उन्हें निर्विघ्न आहार मिला तब पंचदिव्य प्रकट होते रहे। महावीर ने उन अनार्य प्रदेशों में लोगों के उपसर्गो को सहन किया और अपनी निर्ग्रन्थता, करूणा क्षमा से लोगों के मन जीते, उन्हें सतपथ दिखलाया। चरित्र में सुमेरु से दृढ महावीर को मायावी देवांगनायें कटपूतना यक्षणी नहीं डिगा पायी। कवि ने कटपूतना यक्षणी द्वारा दिये गये उपसर्गो का अद्वितीय चित्रण काव्य में प्रस्तुत किया है-

स्निग्ध श्याम सुन्दर केशों से, छिटक-छिटक जल बारम्बार।
शीत समीर बहाकर करती, हास्य विनोद विलासोच्चार।
निजमाया से मोहित करने लगी दिखाने अपना नाच।
ध्यानमग्न एकाग्र रहे प्रभु, आने दी न तनिक भी आँच[१]

***

भगवान को करूणा के उस तट पर पहुँच गये थे जहाँ गोशालक की तेजोलेश्या स्वयं झेल लेते हैं। संगम देव का उपसर्ग शारीरिक कष्ट सहन कर छ महिने तक सहन

१. चरम तीर्थंकर महावीर : आचार्य श्री विद्याचन्द्र सूरि, पद सं.१०९, पृ.२९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते रहते हैं। अब तो तपस्या उस चरम अवस्था तक पहुँच गयी हैं कि ६-६- महिने तक आहार की भी सुध नहीं रहती बिहार करते-करते प्रभु कौशाम्बी नगरी पहुँचते हैं और गोचरी से पूर्व बड़ा ही कठिन अभिग्रह लेते हैं। वे उसी के हाथ से आहार लगें जो लड़की राजा की कन्या हो, सिर मुड़ा हुआ हो, जिसको तीन उपवास हो गये है, पांव में बेड़ी पड़ी हो, आँखों में आँसू हो, मुख पर उदासी हो, जिसका एक पाँव देहरी के बाहर हो, और जो सूप में उड़द के बाकुले लेकर खड़ी हो। बिहार करते करते इसी अभिग्रह साथ वे आगे बढते हैं और चंदनबाला के द्वारे से जाते समय उसे ऐसी ही स्थिति में पाते हैं और उस आहार का ग्रहण करते हैं जिससे पंच दिव्य प्रगट होते हैं और चंदनबाला पुनः राजकुमारी का सौन्दर्य प्राप्त करती है और बाद में उनकी प्रथम शिष्या बनती हैं। कायोत्सर्ग में तपस्यारत महावीर के कानों में कीले ठोंक दिये जाते हैं लेकिन प्रभु विचलित नहीं होते इस दृढ तपस्या से उन्हें केवल ज्ञान की प्राप्ति होती है। महावीर की तपस्याकाल साढे बारह वर्ष का रहा। केवल ज्ञानी प्रभु पावापुर पधारते हैं जहाँ देव उनके लिए समोवशरण की रचना करते हैं।

समवशरण अर्थात् धर्म-सभा में संसार के समस्त ज्ञान के ज्ञाता जब इस धर्म सभा में बिराजते हैं तब चराचर के मनुष्य, देव, पशु-पक्षी सभी उपस्थित होते हैं। अपने पारस्परिक वैरभाव को भूलकर वे पूर्ण मैत्री के साथ सभा में बैंठते हैं। प्रभु की दिव्य कल्याणकारी वाणी को अपनी-अपनी भाषा में समझकर बोध ग्रहण करते हैं। वे आत्मकल्याण का पथ प्राप्त करते हैं। समवशरण में अष्ट प्रातिहार्य या अतिशय प्रगट होते हैं। प्रभु की दिव्य वाणी का सरल अर्थ उनके शिष्य जो गणधर कहलाते थे वे करते थे। ये गणधर ज्ञानी ब्राह्मण होते थे। तत्कालीन ज्ञानी, वेदपाठी ब्राह्मण आते थे शास्त्रार्थ में प्रभु को पराजित करने पर, समवशरण के निकट पहुँचते ही उनका ज्ञान गर्व चूर-चूर हो जाता था। और वे प्रभु के शिष्य बनने का सौभाग्य प्राप्त करते थे।

प्रस्तुत कृति में भगवान के ११ गणधर इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायूभूति, अव्यक्त, सुधर्म, मण्डित, मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचलभ्रात, मैतार्य एवं प्रभास के भगवान के सम्पर्क में आने का वर्णन हैं। साथ ही प्रभु द्वारा उन्हें जीव, पुद्गल, तत्व, संसार रचना, स्याद्वाद, कर्मवाद, जीव-आत्मा का भिन्नत्व त्रिरत्न, आदि दर्शन का बोध दिया गया। प्रभु के दर्शनतर्क एवं सत्य को समझकर ये सभी उनके शिष्य बनते गये। दीक्षित होकर परिव्राजक बनते गये। इस गणधरवाद के अन्तर्गत कवि मुनिश्री ने जैन दर्शन के विविध मौलिक पक्षों की चर्चा, व्याख्यायें प्रस्तुत की हैं जो अत्यन्त ज्ञानवर्धक हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी समवशंरण में प्रभु द्वारा अनेक प्रश्नों के संशयों के निवारण किए गये हैं। ये पश्नोत्तर ही जैन दर्शन के प्राण हैं। प्रश्न कर्ताओं में राजा श्रेणिक-बिम्बसार प्रमुख है। इन्हीं समवशरण में जैन दर्शन के चार निक्षेपे, सप्तनय, सप्तभंगी आदि का ज्ञान-दर्शन का मौलिक ज्ञान विश्व को प्राप्त हुआ।

भ. महावीर ने चंदनबाला को दीक्षा देकर श्रमणी संघ की स्थापना का क्रांतिकारी कार्य किया। नारी समानता का यह प्रथम शंखनाद था।

महावीर की देशना या उपदेश लगभग ३० वर्षो तक इस भारतभूमि को प्राप्त होते रहे। प्रभुने बारह व्रतों और बारह तप का निर्देश देकर संयम का महामंत्र दिया ये ही संसार से मुक्त होने का रामबाण इलाज है। संसार में परस्पर प्रेम बढे और मोह का त्याग हो अतः अपरिग्रहव्रत पर विशेष जोर दिया। समाज की एकता और विश्वशांति के लिए यह अपरिग्रह धारण करना आवश्यक है। समता ही मानव मात्र के प्रति प्रेम का उपाय है। इसी में परस्पर के प्रति करूणा, दया, क्षमा पनपते हैं। अपरिग्रह से ही अत्याचार रोके जा सकते हैं। प्रभु की इस अहिंसामयी वाणी से प्रभावित असंख्य लोग राजा-महाराजा उनके शिष्य बने।

वैशाली कौसाम्बी कौशल, विदेह आदि प्रदेशों में उनका विहार हुआ और धर्म प्रभावना का प्रसार होता गया।

एक बार गौतमगणधर के पूछने पर प्रभु पंचमकाल (वर्तमानकाल)की स्थिति की भविष्यवाणी करते हुए काल के प्रभाव का वर्णन करते हैं कि इस काल में विकृतियाँ बढेगी। दक्षिण दिशा में हा-हाकार फेलेगा। वर्षा आदि ऋतुएँ अनियमित होगी। अकाल, अतिवर्षा के तांडव होंगे। स्वच्छंदता जनमानस को विकृत करेगी। व्याधियाँ फैलेगी, पर्यावरण में असंतुलन होगा, शक्तिशाली शक्तिहीन होने लगेंगे, स्वार्थ, व्यभिचार. अविवेकीपन बढेगा, राजा-प्रजा सी मर्यादायें टूटेंगी, द्वन्द्व होगा, छल, कपट बढेगा गुरु की महिमा घटेगी व धर्म पर शंकाएँ की जायेगी। पश्चात् छठ्ठे आरे में यह दुःख और भी बढेगा। प्रभुने अपने त्रिकाल ज्ञान द्वारा यह भविष्य बताया। और, सच भी है आज हम वह सब साक्षात् देख और भोग रहे हैं।

इस प्रकार ७२ वर्ष की आयु पूर्ण कर कार्तिक मास की अमावस्या की पिछली रात वे इस नश्वर देह को त्यागकर देहातीत बन गये। शेषचार अघातियाँ कर्मो का क्षयकर केवली पद पर आसीन हुए।

किंचित मोह से व्यथित गौतम गणधर भी ज्ञान का पथ पाकर केवल ज्ञानी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बने। इन दोनों प्रसंगो का आनंद लोगों में दीप प्रज्जवलित कर व्यक्त किया।

कवि कृति के अंत में अपने महान तपस्वी, मनीषी गुरु की वंदना करता है। अंत में अपनी लघुता-नम्रता को प्रस्तुत करते हुए कृति की त्रुटियों के लिए क्षमा याचना करता है।

जहाँ तक कृति की कथा का प्रश्न है- वह प्रचलित कथा ही है। प्रायः हर महावीर कथा-काव्य या गद्य लेखकों ने उसे ग्रहण किया है। पर कथा को अपनी कला अपने भक्तिपूर्ण मनोभावों से उसे प्रस्तुत करना ही कवि-लेखक की विशेषता होती है। यही विशेषता इस कृति में भी विद्यमान है। कवि-मुनि हैं-महावीर के पथानुगामी है। अपनी भक्ति, श्रद्धा सभी का इस प्रबंध कथा में कवि ने यथा स्थान पर समावेश किया है। भावपक्ष की दृष्टि से कथा के प्रसंग उसका शांतरस, निरूपण, बोधगम्य उपदेश, दृढ चरित्र की उपसर्ग सहन शक्ति आदि के वर्णन हैं।

कला पक्ष की दृष्टि से विचार करें तो इस प्रबंध या कथा को काव्य द्वारा प्रस्तुत करना उनकी कोमल मनोभावों की ही अभिव्यक्ति है। जब मन करूणा से भर उठे। आराध्य के प्रति भक्ति जब कुलबुलाने लगे। अनुभूति अभिव्यक्ति होने को मचल उठे- तभी कविता की धारा प्रवाहित होती है। यही धारा इस कृति में मुनि के अन्तर्भाव-भक्ति को प्रवाहित करते है।

यद्यपि पुरा काव्य एक ही छंद में है पर प्रत्येक चतुष्पदी में भाव सभरता उसके प्राण है। भाषा सरल, हृदयग्राही एवं भावानुकुल है। आवश्यक व स्वतः प्रयुक्त अलंकारों का प्रयोग हुआ है-कहीं भी उन्हें भरने का प्रयत्न नहीं किया। इससे प्रत्येक पद स्वाभाविक वर्णन का प्रतीक बन गया है। चाहे आनंद की अनुभूति हो, वैराग्य के भाव हो, प्रकृति चित्रण हो, उपसर्ग की कहानी हो-सभी में भाषा भावों की अनुगामिनी बनी है। कृति में से प्रत्येक भाव के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। कवि द्वारा बालक महावीर का बालवर्णन सूर के कृष्ण या तुलसी के रामबाल वर्णन की याद दिलाता है।

बालक के गर्भ-जन्म के समय की प्रकृति का सौंदर्य या तपस्यारत वीर के जंगलों की प्रकृति का वर्णन वातावरण के अनुकूल होने से सहज लगता है। यह प्रभाव वर्णन कौशलका है, जिसका आधार भाषा की चयन शक्ति है।

कृति की सर्वाधिक विशेषता इसमें दिये गये चित्र है। प्रायः प्रत्येक घटना के चित्र पूरे काव्य को चाक्षुष बनाते है, जिससे पाठक का मन महावीर के चरित्र को आँखों से हृदयंगम कर पाता है।

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

कविने जहाँ तत्वचिंतन, जैनदर्शन की बातें उठाई है। गणधरवाद के संदर्भ में जो दार्शनिक विवेचन है वह इतना सरल है कि साधारण पाठक भी उसके सारतत्व को ग्रहण कर सकता है। कविश्री की यह विशेषता रही है कि उन्होने सरलतम भाषा का, लोक व्यवहार में प्रचलित शब्दों का प्रयोग कर के सिद्धांत के गहन विषय को भी लोकभोग्य बनाने का प्रयत्न किया है।

यह कृति सचमुच भगवान महावीर के पूरे जीवन का आईना है जिस में उनके पूरे व्यक्तित्व को उभारा गया है। जैन धर्म को समजने का सरल ग्रंथ भी है। भक्तिभाव का निचोड़ भी है। हिन्दी साहित्य के चरित्र काव्यों में इसका मूर्धन्य योगदान है।

कवि की सत्य निष्ठा यह है कि उन्होने महावीर के निग्रंथ, करपात्री ही दर्शाया है। यह अलग बात है कि यह चित्रों द्वारा उनके दिगंबरत्व को छिपाया गया है। यह आवश्यक नहीं था।

अंत में इतना ही कि ऐसी कृतियाँ ही जन-जन तक जैन धर्म को पहुँचाने में सक्षम होगी।

***

वीरायन काव्य

- कवि रघुवीरशरण "मित्र"

कवि द्वारा रचित "वीरायन" एक उच्च कोटि का प्रबंध काव्य है। उन्हों ने काव्य में जीवन के समस्त अशिव का हरण करने के लिए शिव से प्रार्थना की है। इस काव्य में कवि ने मानव-जीवन की दरिद्रता, व्यथा और शोषण का स्पष्ट उल्लेख दिया है। तथा शिव से अपनी तुलना करता हुआ मानवता के उद्धार के लिए उनका आहवान करता हैं। सारांश यही है कि "मित्रजीने"शिव विषयक "वीरायन" काव्य में मानवतावादी एवं राष्ट्रीय भावना का अत्यंत मार्मिक तथा ओजपूर्ण भाषा में चित्रण किया है।

"पुष्प प्रदीप" सर्ग के प्रारंभ में भगवान महावीर की महिमा गायी है, पूज्य तीर्थंकर की पूजा की है, कैवल्य की आरती उतारी है। सर्वशक्ति संपन्न के स्यादवाद को सजाया है। समाज को विविध भावनाओं के पुष्प अर्पित किए है। कवि भावाभिव्यक्ति करते हुए कहते है कि मैं वहाँ वहाँ गया जहाँ जहाँ वीर भगवान के चरण गये थे। उन पहाडियों पर चढा जिन पर लोक भगवान की धूलि चंदन है। धन्य है वह धरती जो ज्ञानेश्वर की गरिमा से गौरवान्वित है। पूज्य है वे स्थान जहाँ मोक्षेशवर पर सुर-असुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जड़-जीव पुष्प-वर्षा करते हैं। महावीर के जन्म से पूर्व की स्थिति का वर्णन, वर्तमान राजनीति का गद्दार लोगों का तथा तत्कालीन परिस्थितियों का कविने काव्य में सुंदर ढंग से वर्णन किया है जैसे-

वह कौन आज जिसके मन में छल-कपट नहीं तम भरा नहीं।
वह कौन सुखी है इस युग में, जो दुःखी नहीं गम भरा नहीं। [१]

***

उनका जीना व्यर्थ हुआ था, जो न डालते डाका।
स्वर्ण डकैती से मिलता था, कविता करके फाका। [२]

***

कविने इस सर्ग में देश के गौरव का सुंदर चित्रण किया है। इस पुष्प-प्रदीप सर्ग के अन्त में अपनी आत्महीनता तथा नम्रता प्रगट की है। कवि आत्मनिवेदन करते हुए कहते है -

न भुलूँ न भटकूँ न अटकूँ दया हो। [३]

***

मुझे हर कुपथ से हटाना हटाना। [४]

***

बहुत रो चूका हूँ, बहुत खो चूका हूँ।
बहुत सो चुका हूँ, बहुत बो चुका हूँ॥
दिखा दो मुझे पथ जहाँ तक गया हो। [५]

"पृथ्वी पीड़ा" सर्ग में कवि ने भयानक युद्ध की करूण कथा कही हैं। इस धरती पर अनेक भयंकर युद्ध हुए, उस पीड़ा व्यथा की अभिव्यक्ति पृथ्वी माता ने अपनी वाणी द्वारा की है। धरती माता वेदना के कथनों को व्यक्त करती हुई कहती है कि-

---

१. "वीरायन" : कवि मित्रजी, "पुष्प प्रदीप" सर्ग-१, पृ.२४.

२. वही, पृ.२५.

३. वही, पृ.३४.

४. वही

५. वही, पृ.३५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैं मौन सब सहती रही
हर आग में हर राग में।[१]
मरघट बने है वक्ष पर,
ज्वाला धधकती देह में।
आँखे बरसती मौन रह,
जलती चिताएँ मेह में।[२]

***

"तालकुमुदनी" सर्ग में रानी त्रिशला और राजा सिद्धार्थ का जन्मोत्सव, यौवनावस्था, परिणय और साथ में संयोग-वियोग का अनोखा चित्रण किया है। "जन्मज्योति" सर्ग में कवि ने सोलह स्वप्नों का वर्णन, जन्मोत्सव, संगीत, शिशु का चमत्कार, शिशुक्रीडा का वर्णन किया है। इस "बालोत्पल" सर्ग में कविने बालजीवन, बालआदर्श, बाल परीक्षा, माता का आश्चर्य, वीर बाल मित्रों के साथ भोजन करना, संगम देवता का बाल परीक्षा हेतु आना, वीर का अनन्त बल दर्शन, संगम का मद चूर होना तथा बाल वीर की गरिमा आदि का विस्तृत वर्णन किया है। कविने "जन्म जन्म के दीप" सर्ग में वीर भगवान की पूर्व जन्म की कथाएँ, पराजित संगम देव का इन्द्रलोक में आना, इन्द्र द्वारा शंका समाधान, जीवन की विकास दशाएँ, भौतिक और आध्यात्मिक सुखों की उपलब्धियां, धर्माचारण के चमत्कार, सूक्तियाँ तथा बीच बीच में नीतिपरक दोहें आदि का चित्रण किया है। "प्यास और अंधेरा" सर्ग में कवि ने वैशाली गणराज्य की दशा, आम्रपाली प्रसंग, अन्तर्वेदना से पीड़ित आम्रपाली की आग, संघर्ष, लूंट, अपहरण, सामाजिक प्रहार, सामाजिक और धार्मिक दशा आदि का विस्तृत चित्रण सुंदर ढंग से किया है। "संतापसर्ग" में कविने दुःखी गणतंत्र, व्यथा से क्रान्ति, वैशाली पर आक्रमण, देश की दशा, युद्ध की दशा और चंदना उद्धार आदि का विवरण किया है। "विरक्ति" सर्ग में कविने विवाह वैषम्य, त्रिशला और सिद्धार्थ के साथ वाद-विवाद का सुंदर चित्रण किया है। माता त्रिशला पिता सिद्धार्थ के सामने शादी का प्रस्ताव रखती हुई कहती है कि पतिदेव! आप बेटे को समजाओ। मैं प्यारे बेटे कों वैरागी न होने

१. "वीरायन" : कवि मित्रजी, "पृथ्वी पीड़ा", द्वितीय सर्ग, पृ.४८
२. वही, पृ.४९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूँगी, उसका ब्याह रचाऊँगी, इस बात पर राजा सिद्धार्थ रानी त्रिशला को प्रत्युत्तर देते हुए कहते है कि-

जिसका मन साधू हुआ,
उसे न भाता ब्याह।
जिसकी सबक चाह है,
उसे न अपनी चाह ॥ [१]

***

वीरत्रिशला संवाद का कविने अलौकिक वर्णन किया है। कुमारने माँ को संसार के स्वरूप का स्पष्टीकरण करते हुए समझाया है कि-

ब्याह बड़ा जंजाल माँ!
ब्याह बड़ा उत्पात।
बड़ो बड़ो को डस गई,
सुंदरता की घात। [२]

रानी यशोदा प्रियतम वर्धमान कुमार को शादी के विषय में उपालम्भ देती हुई कहती है कि-

पहले चाह ब्याह की भर दी,
अब विरक्ति के गीत गा रहे।
तन में मन में आग लगाकर,
स्वामी! तुम को योग भा रहे ॥ [३]

***

"वनपथ" सर्ग में कविने रानी यशोदा का भक्ति रूप, राजकुमार वीर का निर्वेद, भौतिकता का परित्याग कर वन की ओर प्रस्थान, राजगृह चित्रण, भगवान के माता-पिता और संबंधियों को वन पथ से विदा का करूण दृश्य अंकित किया। राजकुमारी यशोदा का भक्ति स्वरूप का चित्रण देखिए-

---

१. "वीरायन" : कवि मित्रजी, "विरक्ति", सर्ग-९, पृ.२१८.
२. वही, पृ.२२९.
३. वही, पृ.२४८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मग में वियोगीनी खड़ी खड़ी गाती थी जाओ जय पाओ।
मेरे मनहर मेरे उपास्य ! मेरी पूजा को हो जाओ। [१]

***

जिस समय राजमहलों को छोड़कर कुमार वन की ओर प्रस्थान कर रहे हैं, उस समय का नगरजन और परिवार का दारूण दृश्य कविने चित्रित किया है। माता त्रिशला को करूण रूदन करती हुई देखकर कुमार समजा रहे है कि-

बोले सन्मति माता मत रो, तुम रोओगी सब रोयेंगे।
यह प्रजा तुम्हारी तुम पर है, तुम खोओगी, सब खोयेंगे। [२]

भगवान महावीरने ज्ञातखण्ड उद्यान में पहुँचकर पंच मुष्टि केश लोंच कर के दीक्षा अंगीकार की। राजा नंदीवर्धन, स्वजन एवं प्रजाजन वियोग व्यथित मन से अपने अपने घरों की ओर लौटने लगे। नंदीवर्धन बंधु-बिछोह को संभाल न सके। उनके मुखार्विन्द से वेदनापूरित उद्गार फूट पडे-

त्वया बिना वीर ! कथं व्रजामो ?
गृहे धुना शून्यवनोपमाने। [३]

***

"है वर्धमान, हे बन्धु ! अब तो घर भी वन के समान बन गया है। तुम्हारे बिना मैं घर कैसे लोटुँ ?" इस प्रकार राजा नंदीवर्धन आश्वत होकर अपने कर्तव्य में लग गये, पर महावीर की सलौनी छवि उनके अन्तर में सदा अंकित रह गयी। उनके दिव्य प्रकाश में वे सदा सत्पथ पर चलते रहे।

प्रस्तुत वीरायन काव्य में कवि ने दिगम्बर और श्वेताम्बर आम्नायों के अनुसार, तत्वों का समन्वय करके भगवान महावीर की जीवनी को लिखा है। श्वेताम्बर मतानुसार भगवान के माता-पिता का स्वर्गवास होने के पश्चात् उन्होने दीक्षाग्रहण की। किन्तु दिगम्बर मतानुसार भगवान की दीक्षा के समय माता-पिता जीवित थे। श्वेताम्बर मतानुसार भगवान विवाहित थे तथा प्रियदर्शना नामकी लड़की भी थी। दिगम्बर मतानुसार भगवान

---

१. "वीरायन" : कवि मित्रजी, "वनपथ", सर्ग-१०, पृ.२५५.
२. वही, पृ.२५७.
३. कल्पसूत्र : सुबोधिका टीका : षष्ठ क्षण : पत्र २७५ (ले. जवाहकचंद पटनी कृत - श्री वर्धमान महावीर)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अविवाहित थे। कवि रघुवीरशरण "मित्र" ने "वीरायन" काव्य को भेदभाव से रहित, दोनों की मान्यताओं का समावेश करके सुंदर ढंग से काव्य की रचना की है जो पाठकों के हृदय को परिवर्तन कर दै। "दिव्य-दर्शन" सर्ग में कविने वन के देवी-देवता पशु-पक्षी आदि वनचारी लोगों की भक्ति व श्रद्धा का वर्णन प्रस्तुत किया है। जड़-प्रकृति भी सजीव होकर भगवान का स्वागत करने तत्पर हो उठी है। अहिंसक जीवों को उपदेश देना, गंगा एवं वसंतऋतु का चित्रण, पिशाच प्रेत आदि शेतानों द्वारा भगवान को उत्पात तथा विजय प्राप्त करना। भगवान ने चार घाती कर्मो को क्षय करते अप्रतिहत केवल-ज्ञान एवं केवलदर्शन प्राप्त होने का आलेखन किया है। "ज्ञानवाणी" सर्ग में कविने इन्द्रादी देवताओं के हर्ष, समवशरण की रचना करना, तीर्थंकर का मौन, स्थान स्थान पर समवशरण की रचना करना, इन्द्रोपाय द्वारा भगवान का मौन मुखर होना, भगवान द्वारा प्राणीमात्र को ज्ञान-दान प्राप्त होना आदि के वर्णन इस सर्ग में किये है। "उद्धार" सर्ग में कविने चन्दनाको बंधन मुक्त, नारी का उद्धार, अर्जिका संघ स्थापन, जनोद्धार, जनोपकार, आदि के सुंदर और विस्तृत वर्णन किए हैं। इस "अनन्त" सर्ग में कवि मित्रने भगवान के निर्वाण प्राप्ति का उल्लेख किया है। महावीर के तीस वर्ष तक भारत में विभिन्न भागों में परिभ्रमण करते विविध प्रकार की धार्मिक प्रवृत्तियों का आयोजन करके जनता का उद्धार किया उस विहारकाल का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है।

तीर्थंकर जीवन का तीसवाँ चातुर्मास भगवानने अप्पापुरी के हस्तिपाल राजा की लेखनशाला में किया। वहाँ मल्लगण के नौ राजा, लिच्छवीगण के नौ राजा तथा अन्य अनेक उपासकों को अड़तालीस घण्टों तक देशना देकर कार्तिक की अमावास्या को निर्वाण प्राप्त किया। "युगान्तर" सर्ग में कविने मोक्ष के बाद मुक्तेश्वर महावीर का प्रभाव, वीरदर्शन का जीवन में उपयोग, जैन धर्म से देश और दुनिया में उपलब्धियाँ, भगवान महावीर के पथ पर महात्मा गाँधी का अनुगमन करना, आज की परिस्थितियों को दिशादान आदि बातों का विस्तार से वर्णन किया है। कविने काव्य के माध्यम से भगवान की अमृतवाणी का पान कराकर जन-जगत को अनुपम भेटं प्रदान की है। पाठक लोग काव्य का चिन्तन मननपूर्वक करते भगवान के वचनामृत का श्रद्धापूर्वक हृदयागम करें, यही कवि की अभ्यर्थना है। कवि की रचना स्वान्तः सुखाय होते हुए भी लोकहितकारी है।

***

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण भगवान महावीर चरित्र

- अभयकुमार योधेय

"योधेयजी" रचित महावीरजी के प्रस्तुत जीवन-चरित्र में, समग्रतः एक ऐसा दर्शन बिम्ब उभरता है जो सम्प्रेरित करता है कि सांसारिक वस्तुओं का परित्याग करें, मोह-माया-ममता से मुक्त हों, आत्मा की आन्तरिक ऊर्जा और उसके गौरव को प्राप्त करें। यह जीवन चरित्र इंगित करता है कि केवल पोथे पढकर ही सही मंजिल नहीं मिलती, बल्कि लोग-जीवन में घुल मिलकर ही कष्टों को अनुभवों की आग में तप कर ही प्रेम-दया-करूणा-क्षमा-सेवा-श्रम-अहिंसा, मनन आदि पूर्ण साधनात्मक-सकर्मक-प्रकृति को साधकर ही जीवन-मोक्ष मिल सकता है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय आडंबर से दूर होकर अहिंसा से ही, मानव-कल्याण हो सकता है। अतः अनेकान्तवाद, सप्तभंगी-नय या स्याद्वाद के सोपानों पर चढकर किसी भी कूट-गुटबन्दी से अलग रहकर ही मनुष्य आत्मानंद प्राप्त कर सकता है। यों ये सब मानवता के वे मूल्य हैं जिनका सीधा संबंध जगत के शिवं-सत्यम्-सुंदरम् से है, जो हर युग के, हर देश के, हर धर्म के मानव की आकांक्षा के केन्द्र और उसकी जीवनोपलब्धि के सार हैं।

कवि "योधेयजी" ने श्रमण भगवान महावीर चरित्र को नव सोपानों में विभाजित किया है। "प्रथम सोपान" में महावीरकालीन परिस्थितियाँ तथा हरिणिगमेषी द्वारा गर्भ परिवर्तन क्रिया को तर्क सहित सिद्ध करना। माता त्रिशला को शुभ स्वप्न दर्शन होना, स्वप्नों का विश्लेषण, जन्मकल्याणक मनाना आदि वर्णन है। "द्वितीय सोपान" में कवि ने सूर के समान भगवान महावीर की बाल-लीला का सुंदर चित्रण दिया है। भगवान की अंगोपांग आदि क्रिया को देखकर माता के हृदय में विविध प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं।

चलाकर छोटे छोटे हाथ
पाँव से सभी खिलौने ठेल।
मचल-सा उठा पालने में-
रही माँ, देख पुत्र का खेल॥[१]

***

---

१. श्रमण भगवान महावीर : कवि योधेयजी, "बाल-लीला", प्रथम सोपान, पृ.७७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय सोपान में कविने भगवान की तरुणावस्था का प्रकृति के अनुकूल अलौकिक चित्रण किया है-

कुञ्ज-वीथि से निकले तो कलियाँ मुस्काई
कुल-वधुओने घूंघट खोल
योवन में मदमाती सुंदरिया शरमाई
अकुलाई पर होंठ न खोले। [१]

***

यौवनावस्था को प्राप्त होने पर मस्तिष्क में विविध विचारों का चिन्तन, रानी यशोदा का गुण-सौंदर्य का वर्णन, माता-पिता का अत्याग्रह के कारण उनकी इच्छा पूर्ति के लिए शादी करना आदि वर्णन किया है। शादी के पश्चात् गृहस्थ जीवन का विवरण, वासना और विवेक के बीच चिन्तन, माता-पिता का आत्मचिन्तन तथा समाधिमरण लेकर ध्यानमग्न हो जाना, स्वर्गवास, नंदीवर्धन को चिन्ता होना, महलों में रहकर भी योगी अवस्था, भगवान संसार की विचित्रता पर चिन्तन करते हुए कहते है कि-

कोई इस नश्वर दुःख सुख की माया से,
बच सकने का राह खोजकर आगे आए।
और मोह के महा भयंकर भंवर जाल से
छुटकारा पा सकने का रास्ता बतलाए॥ [२]

***

जिस समय भगवान घर छोड़ने का पूर्ण निर्णय कर लेते है उस समय रानी यशोदा का कारूण दृश्य कविने अंकित किया वह वास्तव में कवि की काव्य कौशलता का ही प्रतीक है-

ऐसे ही जाना था, तजकर
तो क्यों मुझको ले आए ?
तो क्या मेरे अन्तर्मन में,
टीस जगाने को लाए ? [३]

१. श्रमण भगवान महावीर : कवि योधेयजी, "तरुणावस्था", तृतीय सोपान, पृ.९३.
२. वही, पृ.११५.
३. वही, पृ.१२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

***

भगवान के हृदय में चलनेवाले आत्मचिंतन का बड़ा मनोवैज्ञानिक वर्णन कविने प्रस्तुत किया है। इसी अध्याय में उनका दीक्षित होना, पुष्पवृष्टि की वर्षा, देवदुन्दुभी बजना आदि कविने सुंदर वर्णन किया है। दीक्षा के पश्चात् भगवान को मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होना, तथा बड़े भैया नंदीवर्धन की स्थिति, और ब्राह्मण सोमदेव को दान का वर्णन कविने अपने काव्य कौशल से किया है। ''पंचम सोपान'' में कविने भगवान का वन में प्रवेश होना,जंगली प्राणियों क उपद्रव, तप में लीन होने का वर्णन किया है। जब भगवान साधना की उच्च कोटि पर आरूढ होते हैं उस समय की अनुकूल प्रकृति का सुंदर चित्रण काव्य में अंकित किया है-

निकल पड़े तब वर्धमान के अन्तर के स्वर
एक और निर्झर था, मधु का फूट पड़ा।
टप-टप लगे टपकने, हर सिंगार कुसुम.
स्वर-धारा का फव्वारा-सा छूट पड़ा॥[१]

***

वन में जीवजन्तु से त्रास, ग्वालों की क्रूरता, इन्द्र द्वारा रक्षा होना, शूलपाणियक्ष का उपसर्ग, चण्डकौशिक सर्प का उद्धार, विभिन्न गावों में भ्रमण करते हुए भगवान ने अनेक उपसर्गो को समता के साथ सहन करने का उल्लेख है। ''षष्ठम् सोपान'' में गोशाला भगवान का शिष्य बनना, विभिन्न स्थानों में विचरण करते हुए भगवान के द्वारा गोशाला की रक्षा। कर्म को खपाने के निमित्त भगवान का अनार्य देश में पधारना और अनेक कठिन से कठिन उपसर्गो का मेरु की भाँति अड़िग रहकर सहन करने आदि के भयानक चित्रण कविने प्रस्तुत किये हैं।

''सप्तम् सोपान'' में संगम देव द्वारा कठिन से कठिन विविध उपसर्गो द्वारा भगवान को पीड़ा पहुँचाना, दुःख से अति पीड़ित चंदनबाला का उद्धार, ग्वालों द्वारा भगवान के कानों में कीले गाढना आदि भयानक उपसर्गो के चित्रण किए हैं। साढे बारह वर्ष तक उत्कृष्ट साधनाकर जृम्भक गाँव में भगवान को केवलज्ञान, देवदुंदुभि बजना, दर्शो दिशाओं में पुष्पों की वर्षा करना, अपापा नगरी में प्रभु की प्रथम देशना, समवशरण

---

१. श्रमण भगवान महावीर : कवि योधेयजी, सोपान-५, पृ.१८२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की रचना का चित्रात्मक वर्णन कवि ने किया है। भगवानने नारी मुक्ति एवं समाज के नव निर्माण के विषय में जो उपदेश दिए हैं उनका उल्लेख कविने सरल भाषा में समजाया है। ''अष्टम् सोपान'' में ग्यारह गणधरों का वर्णन हैं। भगवान के दर्शनमात्र से गणधरों के ज्ञान का अहंकार नष्ट होता है, वे मिथ्यामार्ग छोड़कर भगवान के चरणों में दीक्षित होते हैं। चंदनबाला, मेघकुमारमुनि, प्रसन्नचंद्रऋषि, अर्जुनमाली और शालीभद्र आदि सभी का वर्णन किया है। ''नवम् सोपान'' में भगवान विचरते हुए पावापुरी पहुँचे, वही भगवान की अंतिम देशना हुई। गौतमको तत्वादि का ज्ञान दिया। संघ आदि की उचित व्यवस्था की, अमावस्या की रात्रि को भगवानने देहत्याग किया, गौतम गणधर का विलाप का करूण दृश्य मार्मिक शैली में व्यक्त किया है-

जान लिया गौतम ने,
यह पथ में ही आते।
वज्र गिरा माथे पर,
क्यों, प्राण नहीं आते ?[१]

मोह की रेखा खत्म होते ही गौतम को केवलज्ञान हुआ। अन्त में भगवान की आरती तथा अष्टकर्मो को नष्ट करके सिद्धावस्था को प्राप्त हुए।

काव्य के अन्त में कवि का उद्बोधन है कि अपने युगमें महावीर स्वामी ने असद् प्रवृत्तियों का, कठिनतम् श्रम-साधना द्वारा, परहिार-परिष्कार करने का और मोक्ष प्राप्त करने का जन-जन को संदेश दिया है। उन्होने मानवमूल्यों को प्रस्थापना का उपदेश दिया जिससे जीव बाह्य जड़-प्रकृति की रागमाया से मुक्त होकर आत्मोपलब्धि के लिए सम्प्रेरित होता है। यह संदेश किसी एक युग, एक भू-भाग, एक धर्म-जाति सम्प्रदाय का नहीं, बल्कि सब के लिए, सब जगह के लिए, सब समय के लिए है।

वैचारिक दृष्टि से कवि योधेयजी का यह महावीर चरित्र काव्य उच्च काटि का है। महावीर के चरित्र को कविने मानवीय संवेदना से जोड़ा है।

***

१.　श्रमण भगवान महावीर : कवि योधेयजी, नवम् सोपान, पृ.३४७

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

तीर्थंकर महावीर

-डॉ. कवि छैलविहारी गुप्त

"तीर्थंकर महावीर" आठ सर्ग का सरल भाषा में लिखा गया महाकाव्य है। इसमें भगवान महावीर के लोकहितरत जीवन को, प्रसादगुण संपन्न शैली मे लिखा है। संपूर्ण ग्रंथ के वाँचन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि कविने कविकर्मरत होने से पूर्व महावीर के जीवन पर उपलब्ध प्रायः सभी पूर्व एवं परवर्ती संदर्भो का गहरा अध्ययन किया है और ऐतिहासिक तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में ही अपनी कल्पना में उन्हें गूंथा है। देखा गया है, काव्य और इतिहास प्रायः समान्तर नहीं चल पाते, इतिहास की नीरसता और अविकल तथ्यनिष्ठा काव्य की रसवंती धारा को रुद्ध करती है, किन्तु कविने काव्य और इतिहास को एकीकृत और अन्योन्य पूरक बनाने में आशातीत सफलता प्राप्त की है। महाकाव्य में कहीं कोई ऐसा प्रसंग नहीं है जो इतिहास या परंपरा से असंगत है। इस माने में डॉ. गुप्त की काव्य-यात्रा एक अद्वितीय उपलब्धि है। कहा जाएगा कि प्रस्तुत काव्य में सहज ही तथ्य, सत्य और कल्पना की एक ऐसी त्रिमिति प्रस्तुत है जो समाज और व्यक्ति दोनों को ही कृतकृत्य करती है।

कवि की लेखन-शैली उनके निश्चल और शब्दाडम्बर रहित व्यक्तित्व के अनुरूप ही है। अपनी निष्कपट वीतराग पदावली में भगवान महावीर को आहूत करते हुए लेखक ने पूरी सावधानी से काम लिया है, यह सावधानी इतनी संपूर्ण है कि इसने स्वयंमेव सहजता का रूप ले लिया हैं। इसलिए महाकाव्य में कई प्रसंग इतने मर्मस्पर्शी बन पड़े है कि सामान्य पाठक भी उन पर मुग्ध हुए बिना नहीं रह पाता।

बहुधा कहा जाता रहा हैं कि भगवान के या किसी भी तीर्थंकर के जीवनवृत्त पर महाकाव्य लिखना लगभग असंभव है। जहाँ मात्र शान्त रस ही है। अन्य किसी जागतिक स्थिति की कोई संभावना नहीं हैं, वहाँ काव्य के लालित्य और उसकी सुषुमा का निर्वाह भला कैसे संभव हो सकता है ? कवियों को महावीर के जीवन में वैविध्य और साहित्य की कोई संभावनाएँ दिखाई नहीं दी थी या रचनाकारों ने उनका ठीक से आकलन नहीं किया था। डॉ. छेलबिहारी गुप्त ने उन सारी पूर्ववर्त्ती चुनौतियों को स्वीकार कर भगवान महावीर के जीवन को उनकी संपूर्ण गरिमा और पवित्रता के साथ प्रस्तुत किया।

प्रस्तुत महाकाव्य को आठ सर्गो में विभाजित किया गया है। काव्यशास्त्र के अनुसार इस में महाकाव्य के लक्षणों का यथाविधि निर्वाह नहीं हो पाया है फिर भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकर 'महावीर' महाकाव्य संपूर्ण दृश्टि से एक सफल कृति है। कविने आठ सर्गो में भगवान महावीर के गर्भ में आने से लेकर उनके परिनिर्वाण तक की विशाल आध्यात्मिक जीवन यात्रा को परंपरा के आलोक में अपनी कल्पना एवं प्रतिभा के द्वारा सुंदर रीति से चित्रित किया है।

प्रथम सर्ग में कविने महारानी त्रिशला का स्वप्न दर्शन, राजकुमार वर्धमान का जन्मोत्सव, बाललीलाएँ, आदि का सुंदर सरल भाषा में चित्रण किया है। द्वितीय सर्ग में इर्ष्यावश संगमदेव भगवान की परीक्षा हेतु आकर विविध भयानक रूपों को धारनकर प्रभु को भयभीत करते है। उस समय वर्धमान अपनी शक्ति से देव को परास्त करते है। उसका चित्रण कविने लाक्षणिक शैली में किया है -

"फूफकार मारता महाकाल के स्वर में,
निर्भय प्रभुने, जा दबा लिया फणवरमें,
बन गये एक क्षण में प्रभु कुशल सपेरा।"[१]

***

तृतीय सर्ग में बारह भावनाओं का चिंतन महावीर का संयम धारण करना, केश लुंचन आदि का सुंदर चित्रग है। चतुर्थ सर्ग में विभिन्न स्थानों का भ्रमण, अनशनतप, कठोर साधना, कठिन परिषह सहने, अनेक उपसर्गो, चंदना प्रसंग आदि का चित्रण कविने किया है। शीत, उष्ण वर्षा, आँधी और तूफानों में भी मेरू की भाँति अडिग रहकर भगवानने मौन रहकर किस प्रकार साधना की उसीका चित्रात्मक वर्णन किया है जिससे पाठक वह दृश्य आँखो के सामने सादृश्य होने लगता है -

प्रकृति जब होती थी भयभीत
किन्तु योगी नहीं विनीत
धैर्य का ले कंबल ओढ
कि लेत तुफानों से होड ॥[२]

***

---

१. तीर्थंकर महावीर : कवि गुप्तजी, द्वितीय सर्ग, पृ. ३५.
२. वही , पृ. १४७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धरा पर भीषण झंझावात
प्रबल झोकें करते आघात
दिखता था जब जल ही जल
धरा के विकल प्राणी सभी विफल ॥[१]

***

पंचम सर्ग में भगवान को केवलज्ञान, गौतम इन्द्र के बीच संवाद, समवशरण की रचना आदि का विवरण दिया है। कविने काव्य में इन्द्र और गौतम का संवाद रूचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है-

मैं शिष्य बनूँगा, द्विजराज तुम्हारा,
तुम गुरु प्रधान में तुम्हे समर्पित सारा
"गुरूदेव शिष्य बोले यह विप्र विवादि
क्या नहीं परीक्षा लेंगे यह उन्मादी ॥"[२]

षष्ठ सर्ग में कविने गौतम और महावीर के मध्य प्रश्नोत्तर, गणधर गौतम को दिगम्बर मुद्रा धारण करना और गौतमजी के पाँचसो शिष्यों का मुनि चरित्र ग्रहण करना, राजकन्याएं बनना एवं अन्य नर-नारियों का व्रत ग्रहण करना आदि वर्णन किया है। सातवें सर्ग में श्रेणिकराजा का गणधर गौतमस्वामी द्वारा पूर्वजन्म वृतान्त सुनकर दिल में परिताप व ग्लानि उत्पन्न होने आदि का विस्तार से भावानुकूल विषयानुकूल चित्रण किया है। आठवें सर्ग में भगवान महावीर का पावापुरी में आगमन, मोक्षप्राप्ति, परिनिर्वाण, आदि घटनाओं का सुंदर चित्रण हुआ है। जिस समय प्रभु का निर्वाण होता है, उस समय जड़ व चेतन प्रकृति में विलाप का वातावरण छा गया। उसी का शोकमग्न चित्रण प्रस्तुत किया है। उसे पढने पर पाठक का हृदय भी रोने लग जाय। गौतमजी के विलाप का चित्रण भी कविने भावपूर्ण शैली में अंकित किया है। वास्तव में कवि ने अपने काव्य में गागर में सागर का प्रयास किया है वह सफल है।

भाषा की दृष्टि से कवि का यह महाकाव्य सफल है। काव्य की भाषा सरल, ओजपूर्ण तथा भावानुगामिनी है। गहन से गहन भावों को मूर्तकर देने में कवि पूर्ण सफल है। काव्य की भाषा कहीं-कहीं क्लिष्ट है, जिसे कई स्थानों में अर्ध स्पष्टता में उलझन

---

१. तीर्थंकर महावीर : कवि गुप्तजी, चतुर्थ सर्ग, पृ.१४७.

२. वही, पंचम सर्ग, पृ.२०४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पैदा हो जाती है। तात्विक उपदेश अधिक लंबे होने से काव्य के रसास्वादन में नीरसता भी आ जाती है। काव्य लिखने का कवि का मुख्य उद्देश्य जीवन की सत्य घटना का उजागर करना एवं मानवीय आदर्शों की प्रतिष्ठा करना ही रहा है। वर्तमान जीवन के संत्रास, तनाव और क्लेश के बावजूद उदात जीवन मूल्यों की खोज तलाश करना ही कवि का ध्येय रहा है। समग्रतया यह सफल महाकाव्य ही है।

डॉ. गुप्तजी ने अपनी लेखनी द्वारा महावीर के सिद्धांतो एवं आदर्शों को जन-जन में प्रसारित करने का सफल प्रयास किया है वह अनुमोदनीय है। उन्होने काव्य में अहिंसा पर जोर देते हुए लिखा है कि महावीर ने अहिंसा तत्व की जितनी विस्तृत, सूक्ष्म तथा गहन मीमांसा की है उतनी महावीर से पूर्व अन्य धर्म प्रर्वतकों व महापुरुषों ने उसकी उपादेयता पर शायद ही उतना प्रकाश डाला हो। महावीर ने केवल पुरूषों के सामाजिक जीवन पर ध्यान देकर उन्हें सभी प्रकार के जन्म सिद्ध अधिकार पाने के लिए सबल और सचेष्ट ही नहीं किया, वरन उसके साथ ही नारी को धार्मिक क्षेत्र में पुरूष के समान अधिकार प्रदान कर चतुर्विध संघ की स्थापना की। सामाजिक जीवन में उन्होने श्रम और समता पर अधिक बल दिया है। भगवान महावीरने दया, प्रेम, ममता करूणा आदि को प्रस्थापित करके विश्व को "जिओ और जीने दो " का महान संदेश दिया। इस प्रकार कविने महावीर के सामाजिक और आध्यात्मिक वास्तविक जीवनदर्शन का उद्घोष जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। कवि स्वयं जनता को संबोधन करते हुए कहा कि दूसरों की उन्नति और भलाई करना चाहते हो तो पहले स्वयं अपनी आत्मा को "बल्ब" की तरह चमकाओं वही दूसरों को चमका देगा और सब जगह भगवान महावीर की भाँति प्रकाश ही प्रकाश फैल जायेगा। भगवान महावीर की तरह एक नहीं अनेक बड़े बड़े छायादार वृक्ष बनो। जो चाहे सो विश्राम पा सके। तुम स्वयं अभावों व रोगों में जीकर दूसरों को स्वस्थ एवं महान नहीं बना सकते। तुम्हारे संकल्प तुम्हारी अन्तर की ध्वनी पहले दिव्य बने तभी तुम पर हित करके महावीर बन पाओगे।

कवि ने भगवान महावीर के जीवन की अनेक घटनाओं को समाज के सामने रखकर लोगों को भगवान की सहिष्णुता और सहनशक्ति से परिचित कराया। साधना काल में उपसर्गो का भगवानने कैसे शांतिपूर्वक सहन किया ? तार्डना, तर्जना, अपमान और उत्पीडन पद-पद पर होते रहे फिर भी समता के साथ इन कष्टों को कैसे झेला ? विरोधियों के प्रति भी उनके हृदय में स्नेह का सागर उमड़ता रहा। वर्षा, सर्दी, धूप, छाया तथा आँधी और तूफानों में भी उनकी साधना का दीप जलता रहा। हमें भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर की तरह साधना का उज्ज्वल दीप जलाना है। किन्तु यह कब हो सकता है जब उनके पथानुगामी बनकर उनके सिद्धांतो को श्रद्धापूर्वक अपनावें। कविने ब्रह्मचर्य की महिमा का सार समझाते हुए अपरिग्रहवादी बनने को कहा है। प्रभु की सभा में जाँति-पाँति का कोई भेद नहीं था। सभी समान आसन पर बैठते थे। प्रभु का यही सच्चा उपदेश था कि मानव-मानव भाई है। मानव के बीच व्यर्थ घृणा की खाई मत खोदो। प्रेम की वर्षा करो। जब मानव के हृदय में यह भावना व्याप्त हो जाती है तभी वह सच्चे समाज का, राष्ट्र का निर्माण कर सकता है। जब विश्व में अहिंसा का झरना बहने लगेगा तो मानव के सब पाप स्वयं ही नष्ट हो जायेंगे। जिसने अपरिग्रह का मंत्र जीवन में स्वीकारा वही जीवन में सुख व शांति की धारा में लहरायेगा। प्रभु की तरह जन-जन में सभमाव भरो, जन के मन को शुद्ध बनाओ तथा तप और त्याग के घर-घर में जाकर दीप जलाओ। इस प्रकार का वातावरण विश्वमें छा जायेगा तब ही समस्त मानव शांति का अनुभव करेंगे।

भगवान महावीर ने विश्व को अनेकान्तवाद की महान धरोहर प्रदान की है। उसे जीवन में उतारा जाय तो उससे बढकर बौद्धिक अहिंसा की सिद्धिका दूसरा साधन नहीं है, यही कवि का स्पष्ट संदेश है। भगवान महावीर का नाम इस समय यदि किसी सिद्धांत के रूप में पूजा जाता है तो वह अहिंसा है प्रत्येक धर्म की उच्चता इसी बात में है कि उस धर्म में अहिंसा तत्व की प्रधानता हो। अहिंसा तत्व को यदि किसी ने विकसित किया है तो वे महावीर थे।

वास्तव में कवि ने श्रेष्ठतम काव्य के माध्यम से महावीर काव्य की जीवन घटना, विशेष परिस्थिति का सहज और स्वाभाविक चित्रण अंकित किया है।

***

जय महावीर

- माणिकचन्द रामपुरिया

भगवान महावीर का जीवन साधना के उस पुञ्जीभूत उन्नत शिखरसा है, जहाँ पहुँचना किसी भी साधारण मनुष्य के लिए अति दुष्कर है, फिर भी कविने उस शिखर की कल्पना ही की है।

कवि ने जय महावीर काव्य में भगवान के तेजोमय जीवन के विभिन्न अंशो का स्पर्श मात्र ही किया है, क्योंकि उस अगाध महासिन्धु को पूर्ण रूप से बांधना असंभव है। जैसे अगाध सागर लहरा रहा है- तट पर खड़े प्राणी अपने पात्रानुसार जलराशि ग्रहण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर रहे हैं। किन्तु किसीने सर्वांश में सिन्धु को ग्रहण नहीं किया। उसी प्रकार तीर्थंकर भगवान महावीर अथाह अनन्त पारावार हैं। इनके जीवन के विभिन्न अंगो को एक नजर देख लेना भी सबके वश की बात नहीं है। अर्थात् उनके संपूर्ण रूप में जीवन को बाँधने में असमर्थ है।

कवि माणिकचन्द कृत जय महावीर काव्य में जीवन पक्ष की प्रधानता है। सैद्धांतिक पक्ष को कवि ने स्पर्श मात्र ही किया है, क्योंकि सैद्धांतिक पक्ष अभेदकारी है। सभी तीर्थंकर के साथ सैद्धांतिक बातें एक ही रही है-उनमें भेद नहीं है किन्तु जीवन पक्ष में भेद रहा है। जिस प्रकार आदिनाथ भगवान ऋषभदेव के तपोनिष्ठ जीवन की तुलना दयामूर्ति भगवान नेमिनाथ से अथवा किसी अन्य से नहीं की जा सकती, इसी प्रकार चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर के तपस्यामय जीवनकी समकक्षता दूसरे से नहीं हो सकती।

प्रस्तुत महाकाव्य को कविने सोलह सर्गो में विभाजित किया है। प्रारंभ में कविने मंगलाचरण में सर्वप्रथम महावीर की स्तुति की है। प्रथम सर्ग में कविने भगवान के जन्म से पूर्व के वातावरण का चित्रण किया है। दूसरे सर्ग में ब्राह्मण कुल में और गर्भ परिवर्तन का वर्णन, तीसरे सर्ग में राजा सिद्धार्थ के राज-भवन का और स्वप्नों का सुंदर चित्र खींचा है-

सुख के बाजे नित बजते थे-
मनसे सुंदर सब सजते थे।
कोट-कँगूरे सब थे सुंदर-
सुंदरता थी भीतर बाहर ॥[१]

***

जिस समय भगवान का जन्म का समय निकट आता है, उस समय के वातावरण के अनुकूल प्रकृति का सुंदर चित्रण चतुर्थ सर्ग में कविने किया है-

पेडों की फूनगी पर चिड़िया गीत मनोहर गाती।
मलियानिल की पुरवाई-सी हवा गंध ले आती ॥[२]

***

---

१. "जय महावीर" : कवि माणकचन्दजी, सर्ग-३, पृ.३२.
२. वही, सर्ग-४, पृ.४२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान के जन्म से नगर परिवार जनों में खुशी की लहर उठना, देव-देवियाँ इन्द्र आदि भगवान को मेरु शिखर पर ले जाना, जन्मोत्सव मनाकर वापिस महल में लाना, नामकरण आदि का वर्णन चतुर्थ सर्ग में किया है। पंचम सर्ग में भगवान की देव द्वारा परीक्षा, परीक्षा में विजयी बनना तथा इन्द्र द्वारा सभा में महावीर का नाम घोषित होने का वर्णन है। षष्ठम् सर्ग में ज्ञानार्जन के लिए पाठशाला जाना, इन्द्र का पृथ्वी पर आकर विविध प्रश्नों को पूछना, भगवान द्वारा उन प्रश्नों का बुद्धिकौशल से उत्तर देना तथा सभा के लोग आश्चर्यचकित हो जाने का वर्णन है -

महावीर ने सब उद्घाटन-
किया बताकर सब विश्लेषण।
सुन कर जन-जन हुए अचम्भित-
दिव्य ज्ञान से भाव-समन्वित ॥[१]

***

इस सर्ग में भगवान का रानी यशोदा के साथ पाणिग्रहण, मात-पिता के स्वर्गवास बाद दिक्षा का प्रस्ताव, नन्दीवर्धन, भाई की आज्ञा से दो वर्ष घरमें रहना, गृहमें रहते हुए साधुवत् जीवन की पालन करने की चर्चा है। सप्तम् सर्ग में भगवान के वर्षीदान आदि का वर्णन है। अष्टम् सर्ग में कविने भगवान के दिक्षोत्सव का सुंदर वर्णन किया है एवं तात्विक चर्चा का भी उद्घाटन किया है-

जहाँ न तृष्णा, भूख-प्यास है जहाँ न निंद्रा विस्मय।
मोह नहीं, उपसर्ग नहीं है मोक्ष वही है निश्चय ॥[२]

***

नवम सर्ग में सोमदेव ब्राह्मण को देवदूष्य दान में देना, दशम सर्ग में ग्वालों द्वारा उपसर्ग, ग्यारवें में शूलपाणि यक्ष आदि का उपसर्ग, द्वादश सर्ग में चण्डकौशिकका उद्धार, त्रयोदश में सुदंष्टदेव द्वारा नाव में प्रभु पर उपद्रव, कम्बल, सम्बल देव द्वारा भगवान की रक्षा तथा संगमदेव का विविध रूप बनाकर प्रभु पर उपद्रव करना, ग्वालों द्वारा प्रभु के कानों में कीले ठोंकना, गोशालक द्वारा प्रभु पर तेजोलेश्या छोडना आदि प्रसंगो का सुंदर वर्णन सरल भाषा में किया है। चतुर्दश सर्ग में चंदनबाला का उद्धार,

---

१. "जय महावीर" : कवि माणकचन्द्जी, सर्ग-६, पृ.६३
२. वही, सर्ग-८, पृ.८८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचोदस सर्ग में केवलज्ञान के पश्चात्, समवशरण की रचना, इन्द्रभूति शंका के निवारण के साथ धर्म के तत्वों की सैद्धांतिक चर्चा भी प्रस्तुत की है। इस सर्ग में कवि जड़-चेतन की भिन्नता को समझाते हुए उद्‌बोधन देते है कि-

काम-क्रोध सब जड़ पदार्थ है उससे भिन्न जगत में।
आत्मलीन ही रहता केवल भाषित ज्ञान सतत में॥ [१]

***

देश देश में भ्रमण करते हुए भगवान पावापुरी में पधारे। वहाँ उनकी अन्तिम देशना हुई। भगवान के निर्वाण आदि वर्णन किया है। षष्ठोदश सर्ग में इन्द्रादिक द्वारा भगवान की चिता सजाना, देवगण, नगरजनों का शोक, प्रभु के निर्वाण से गौतम स्वामी का विलाप, तत् पश्चात् गौतमस्वामी को केवलज्ञान प्राप्ति आदि के सजीव चित्र अंकित किए है। गौतमस्वामी के विलाप का चित्रण कविने बड़े ही सजीव ढंग से प्रस्तुत किया है जिसको पढकर श्रोताओं की आँखें छलक उठती हैं-

करूण विलाप किया फिर क्षण-क्षण
प्रभु का नाम सुनाकर। [२]

***

लगा कि जैसे बज्र गिरा हो-
फूट-फूट कर रोये।
गुरू की स्मृति में आँसू-जल से
मन का कल्मष धोये। [३]

***

वास्तव में कविने १६ सर्गो में काव्य को लिखकर भगवान महावीर के जीवन का कोना-कोना टटोला है। कविने भगवान के जन्म से लेकर निर्वाण तक का सूक्ष्म और मार्मिक चित्रण किया है। छंद, अलंकार, मुहावरें, उपमाएँ, आदि लेकर काव्य को सुंदर बनाया है। कविने काव्य को प्रमादगुण संपन्न, भावानुगामी भाषा-शैली में चित्रण किया है। उन्होने सरल व सुबोध भाषा में भगवान महावीर की जीवनी लिखकर जैन जगत को ही नहीं साहित्य को भी अनुपम उपहार प्रदान किया है।

---

१. "जय महावीर" : कवि माणकचन्द्रजी, सर्ग-१५, पृ.१३३
२. वही, सर्ग-१६, पृ.१४१
३. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि की आस्था है कि प्रभु महावीर गुणों के रत्नाकर है, धर्मरूपी रत्न के उत्पत्ति स्थान है, भव्य जीवों को एक मात्र शरण है, इन्द्रादिक देवों द्वारा पूजित है तथा स्वर्ग एवं मोक्ष के मूल कारण है। उन प्रभु का यह उत्तम एवं पवित्र चरित्र, जब तक कि इस धरातल पर से काल का अन्त न हो जाय तब तक आर्यखण्ड में सभी स्थानों में इस का प्रचार हो, प्रसिद्धि हो और संस्थित रहे यह मेरी मनोकामना है।

***

परम ज्योति महावीर

- कवि धन्यकुमार जैन "सुधेश"

प्रस्तुत महाकाव्य वीर निर्वाण संवत २४८६ में परिपूर्ण किया गया है अतएव इसमें वंदना को दो तथा तेइस सर्गो के १०८-१०८ छन्द इस प्रकार छन्द संख्या २४८६ है। कवि मानो इस तथ्य को सूचित करते है कि जिस समय यह महाकाव्य पूर्ण किया गया, उस समय परम ज्योति महावीर का निर्वाण हुए २४८६ वर्ष हो चूके थे। इन २४८६ छंदो के अतिरिक्त ३३ छंदो की प्रस्तावना भी पृथक से लिखी है, यों कुल मिलाकर २५१९ छन्द से युक्त यह महाकाव्य है।

मनुष्य क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायों से, समरंभ, समारम्भ, आरम्भ, इन तीन पूर्वक से मन, वचन, कर्म इन तीन की सहायता से कृत, कारित, अनुमोदना इन तीन रूप अर्थात् १०८ (४ X ३ X ३ X ३ = १०८)प्रकार से पाप किया करते हैं। इसी उद्देश्य से कविने महाकाव्य में प्रत्येक सर्ग में १०८ छन्द रखें हैं।

कवि सुधेशजी के इस महाकाव्य की एक विशेषता यह भी है कि सर्गो की संख्या २३ ही निश्चित की है, जो प्रतीति करता है कि जैन धर्म के प्रवर्तक तीर्थंकर महावीर नहीं थे, अपितु इन के पूर्व २३ तीर्थंकर और हो चूके थे, जिन्होने अपने अपने समय में जैन धर्म का प्रचार किया था।

कालदोष से परम ज्योति महावीर के अनुयायी दो भागों में विभक्त हो गये, दिगम्बर और श्वेताम्बर। इस विभाजन के कारण जैन धर्म को अनेक हाँनियाँ उठानी पड़ी परस्पर संघर्षमें दोनों की शक्तियोंका तो अपव्यय हुआ ही, पर इस से वीर-वाणी के यथार्थ रूप पर भी कुठारघात हुआ, जिससे साहित्य में भी यत्र तत्र परस्पर विरोधी कथनों का समावेश हो गया। ऐसी स्थिति में तथ्य के निर्णय हेतु दोनों संप्रदायों के कथनों पर कविने गंभीरतापूर्वक विचार किया। कविने जन साधारण के सदुपयोग हेतु,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परमज्योति महावीर महाकाव्य की रचना की।

प्रस्तुत काव्य ग्रंथ में कविने दिगम्बर और श्वेतामंबर अनुश्रुतियों के आधार पर केवल ज्ञान प्राप्ति के लिए भगवान महावीर की कठोर साधनाओं, अद्भुत त्याग, अलौकिक तप और असीमित देह दमन का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। इस प्रकार बारह वर्ष की तपस्या के बाद जंभिय ग्राम बाहर ऋजुबालिका नदी के तट पर, श्यामक गृहपति के खेत में शालवृक्ष के नीचे, गोदोहन आसन से ध्यान मग्न अवस्था में वैशाख सुदी दशमी के दिन भगवान महावीर ने केवल ज्ञान प्राप्त किया। यह भी एक आकस्मिक घटना थी कि भगवान महावीर को गोतमबंधुत्रयी-इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति शिष्य रूपमें प्राप्त हुए और इनके ग्यारह प्रमुख शिष्यों में आर्य व्यक्त सुधर्म मंडिक, मौर्यपुत्र, अकंपित, अचलभ्राता, मेतार्य, प्रभास जैसे मेधावी विद्वान शामिल थे।

कविने परम ज्योति महावीर त्रिशला के सोलह स्वप्न, जिनेन्द्र को लेकर इन्द्राणी का निर्गमन, देव परीक्षा, महावीर की दीक्षा, दृष्टिविष, विषधर, देवाङ्गनाओं द्वारा परीक्षा और चंदना का आहारदान आदि का सुंदर चित्रण काव्य में प्रस्तुत किया है। भगवान महावीर की करूणा का चित्रण कितना हृदय ग्राही है-

उनके ही मन की करूणा सी,
उनकी यह करूण कहानी है।
यह मसि से लेख्य नहीं इसको,
लिखता कपि दृग का पानी है॥[1]

***

त्रिशला के सोलह स्वप्न -

हर सुमन एक से एक रुचिकर
देखे स्वप्नों की माला में।
उसके उपरांत न जागा वह,
सौभाग्य किसी नवबाला में॥[2]

***

---

१. "परमज्योतिमहावीर" : कवि सुधेशजी, प्रस्तावना पृ.४६

२. वही, सर्ग-३ पृ.१०६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि ने जिनेन्द्र को लेकर इन्द्राणी का निर्गमन का कितना सुंदर चित्रांकन किया है-

पश्चात् उन्हें ले सौरि सदन,
से बाहर वे सामोद चलीं।
कुछ नहीं किसी को ज्ञात हुआ,
वे प्रभु से भर निज गोद चलीं ॥ [१]

***

देव-परीक्षा-भगवान की निर्भीकता का चित्रण देखिए-

अतएव उत्तर करके उसके,
फण पर निर्भय आसीन हुए।
जननी की शय्या सम उस पर,
क्रीडा करने में लीन हुए ॥ [२]

***

महावीर की दीक्षा :

शिर पर के केश लगे उन को,
निज पथ के बाधक कष्टक से।
इससे उखाड़ कर पञ्चमुष्टि -
से दूर किया निज मस्तक से ॥ [३]

***

दृष्टिविष विषधर :

पा नहीं सका जय महानाग,
उन महावीर पर हिंसा से।
पर महावीरने महानाग-
पर जय की प्राप्त अहिंसा से ॥ [४]

***

१. "परमज्योतिमहावीर" : कवि सुधेशजी, सर्ग-७ पृ.२१०
२. वही, सर्ग-९ पृ.२४८
३. वही, पृ.३६१
४. वही, सर्ग-१४ पृ.३८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवाङ्गनाओं द्वारा परीक्षा :

उन पर निज रङ्ग चढाने में,
था अब भी विफल अनङ्ग हुआ।
सुर भामिनियों के भ्रू-भङ्गो
से भी प्रभु-ध्यान न भङ्ग हुआ॥[१]

***

चंदना का आहारदान :

केवल इनता था ध्यान उसे,
ये छह महिने के भूखे है।
औ मुज-अभागिनी के समीप-
केवल ये कोदो रुखे है॥[२]

***

इस प्रकार कविने काव्य में सभी प्रमुख घटनाओं का समावेश करने का प्रयास किया है। जिस प्रकार हमें परम ज्योति महावीर के जीवन में सर्वत्र एक ही रूप वीतरागता के दर्शन होते हैं, उसी प्रकार इस महाकाव्य में भी सर्वत्र एक ही छंद का प्रयोग कविने किया है। प्रत्येक छंद प्रसाद और माधुर्य गुण से युक्त है भाषा सरल-सुबोध है। कहीं कहीं कविने प्रसंगवश अनेक पारिभाषिक शब्दों का भी प्रयोग किया है। कविने ग्रंथ के अंत में परिशिष्ट संख्या १ में २८९ शब्दों का एक संक्षिप्त या पारिभाषिक शब्दकोष भी दे दिया है। इससे सर्व साधारण जनता को अर्थ समझने में सुविधा प्राप्त हो।

वास्तव में सुकवि धन्यकुमारजी ने तीर्थंकर महावीर के विशाल जीवन को शब्दों में उतारा है, जो उनकी उत्तम काव्यकला का ही परिणाम है। उनका महाकाव्य लिखने का मुख्य उद्देश्य है कि अंधकार से ग्रस्त मानव आध्यात्म की परम ज्योति की ओर प्रेरित है। कवि की यह सरल, सरस और सुंदर काव्य रचना जनता के हृदय में धर्म सुधा का सिंचन करे तथा भावियुग में धार्मिक एवं नैतिक चरित्र को आगे बढाने में सक्षम हो। उसी मनोकामना के साथ कविवर धन्यकुमार जैन सुधेशजीने महाकाव्य-''परम ज्योति भगवान महावीर'' की रचना की है।

***

---

१. ''परमज्योतिमहावीर'' : कवि सुधेशजी, सर्ग-१६ पृ.४३०

२. वही, सर्ग-१७ पृ.४४६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिशला नंदन महावीर

- कवि हजारीलाल

सुकवि हजारीलाल रचित "त्रिशला नंदन महावीर" काव्य प्रसादगुण परिपूर्ण भगवान महावीर का जीवन दर्शन परिचायक है। कविने कल्पना से कम भक्ति एवं श्रद्धा से अधिक इस रचना को शसक्त बनाने का प्रशस्त प्रयत्न किया है। अनेक स्थलों पर ऐसे शब्द चित्र है जो अपनी नवीन कल्पनाओं के प्रतीक है।

प्रस्तुत काव्य में कविने भगवान महावीर के सत्ताईश भव एवं उनकी आदि से अन्त तक जीवनी की संक्षिप्त में क्रमबद्ध पूर्ण की है। काव्य में कविने विविध प्रकार की घटनाओं का सुंदर ढंग से, प्रस्तुतीकरण किया है। भगवान महावीर के बाल चरित्र को देखिए-

माँ का पय पान नहीं करते निज हस्त अंगूठा पिलामृत चखते,
भर-भर किलकारी रात दिवस केवल मुस्काया ही करते।
सेवा को दिक् कुमारियाँ थी प्रभु को स्नान कराती थी,
काजल अरू तेल फूलेल लगा नित नये वस्त्र पहनाती थी ॥ [१]

***

इक दिवस देव हाथी बनकर, प्रभु को डरवाने आता है,
नर-नारी भागे पर प्रभुके, हाथों से पकड़ा जाता है।
गज सूढ पकड़ बैठाल दिया, उपर सवार हो जाते है,
प्रभु की निर्भयता ताकत लख नरनारी अचरच लाते है ॥ [२]

***

कविने भगवान महावीर की दिक्षा के पूर्व का वातावरण का भी अद्वितीय चित्रण अंकित किया है-

एरावत हाथी लिए इन्द्र ज्यों ही नगरी में आता है,
तब कुंडग्राम की शोभा का वर्णन कुछ कहा न जाता है।

---

१. "त्रिशलानन्दन महावीर" : कवि हजारीलाल, "बालचरित्र", पृ.३८
२. वही, पृ.३९
३. वही, पृ.४६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हर ओर विमान दिख रहे थे विद्युतसा तेज दमकता था,
जो भी विमान, सन्मुख आता सूरजसा वही चमकता था ॥ [१]

***

कविने चन्दनबाला की माता का करुण चित्रण काव्य में अंकित किया है। नारी की सतीत्व की पराकाष्टा का सजीव चित्रण देखिए-

ओ अधम नीच पापी राक्षस मुँह में रख मुँह की वाणी को,
क्या अबला समज लिया तूने पति बिना आज क्षत्राणी को।
जब तक कटार इन हाथों में कर सकता कोई बात नहीं,
सेवक बन दगा दिया तुने, होता है ऐसा घात नहीं ॥ [२]

***

भगवान के विहार के समय का प्रकृति चित्रण :

श्री वीर प्रभु के आने से छह ऋतुओं के फल फूल हुए,
बावड़ी कूप सरिताओं के जल से आच्छादित कूल हुए।
प्रभु का आगमन सुना ज्यों ही बनमाली फल लेकर आया,
फल भेंट किये महाराज को शुभ समाचार सब बतलाया ॥ [३]

***

निःसंदेह रूप में कवि ने भगवान महावीर की जीवनी को सुंदर ढंग से काव्य में संजोया है। कवि का महावीर काव्य लिखने का मुख्य उद्देश्य यही है कि-

उन वीर प्रभु के भव लिखने इस कविने कलम उठाई है,
जिनका यश वर्णन करने में ऋषियों ने पार न पाई है।
पर कवि का है उद्देश्य यही जह शिव मग पर लग जाता,
जग का हर नंदन वीर बनें पढ त्रिशला नंदन की गाथा। [४]

***

---

१. "त्रिशलानन्दन महावीर" : कवि हजारीलाल, "बालचरित्र", पृ.४६
२. वही, पृ.५९
३. "त्रिशलानन्दन महावीर" : कवि हजारीलाल, पृ.७०
४ वही, पृ.११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि कवि की यह सफल कृति है। भाषा और भाव की दृष्टि से अद्वितीय रचना है। काव्य को लिखकर कविने साहित्य की महान सेवा की है जो समाज इस कवि का ऋणी रहेगा।

***

वर्धमान पुराण

- कवि नवल शाह

प्रस्तुत ग्रंथ का नाम वर्धमानपुराण है। इसके रचयिता कवि का नाम नवल शाह है। उन्होने आचार्य सकलकीर्ति के वर्धमान पुराण के आधार पर इस ग्रंथ की रचना की है। इस ग्रंथ के प्रतिपाद्य विषय का परिचय इसके नाम से ही हो जाता है।

यह खड़ी बोली का एक सरल काव्य ग्रंथ है। इसमें १६ अधिकार है। भगवान महावीर के पूर्व भवों और वर्तमान जीवन का परिचय प्रस्तुत किया गया है। सोलह अधिकार रखने का कारण बताते हुए कविने बड़ी सरस कल्पनाओं का आधार लिया है। तीर्थंकर माताने सोलह स्वप्न देखे थे, महावीर ने पूर्वभव में सोलह कारण भावनाओं का चिंतन करके तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया था, उपर १६ स्वर्ग है, चन्द्रमाकी १६ कलाओं के पूर्ण होने पर ही पूर्वमासी होती है, स्त्रियों के सोलह श्रृंगार बताये गये है, आठ कर्मो का नाशकर आठवीं पृथ्वी मोक्ष मिलती है। यह ग्रंथ भी सोलह मास में ही लिखा गया इस सब कारणों से ग्रंथ में १६ अधिकार दिये हैं। वास्तव में कवि की यह कल्पना सुंदर है।

इस ग्रंथ के प्रथम अधिकार के पुराण परम्परा के अनुसार मंगलाचरण के अनन्तर वक्ता और श्रोता के लक्षण दिये गये हैं।

द्वितीय अधिकार में भगवान महावीर के पूर्व भवों में से एक भव के पुरूरवा भील द्वारा मद्य-मांसादिक के परित्याग, फिर सौधर्म स्वर्ग में देव पद की प्राप्ति, तीसरे भव में चक्रवर्ती भरत के पुत्र रूप में मरीचि की उत्पत्ति और उसके द्वारा मिथ्यामत की प्रवृत्ति, फिर ब्रह्म स्वर्ग में देव पर्याय की प्राप्ति, वहाँ से चयकर जटिल तपस्वी का भव ततपश्चात् सौधर्म स्वर्ग की प्राप्ति, फिर अग्निसह नामक परिव्राजक का जन्म, वहाँ से चयकर तृतीय स्वर्ग में देवपद वहाँ से भारद्वाज ब्राह्मण, पाँच वें स्वर्ग में देव पर्याय, फिर असंख्य वर्षो तक निम्न योनियों में भ्रमण आदि का वर्णन किया है।

तृतीय अधिकार में स्थावर ब्राह्मण, माहेन्द्र स्वर्ग में देव, राजकुमार विश्वनंदी और उसके द्वारा निदान बन्ध दसवें स्वर्ग में देव, त्रिपुष्ठ नारायण, सातवे नरक में नारकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन भवों का वर्णन है।

चतुर्थ अधिकार में सिंह पर्याय और चारण मुनियों द्वारा संबोधन करने पर सम्यक्त्व की प्राप्ति, फिर सौधर्म स्वर्ग में देव पर्याय, राजकुमार कनकोज्वल, सातवें स्वर्ग में देव जन्म, राजकुमार हरिषेण, दसवें स्वर्ग में देव पर्याय का वर्णन मिलता है।

पाँचवें अधिकार में प्रियमित्र चक्रवर्ती के भव का तथा बारहवें स्वर्ग में देव पद की प्राप्ति का वर्णन है।

छठवें अधिकार में राजा नन्द के भव में तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध तथा सोलहवें स्वर्ग में अच्युतेन्द्र पद की प्राप्ति का वर्णन है।

सप्तम अधिकार में महाराजा सिद्धार्थ के महलों में कुबेर द्वारा तीर्थंकर जन्म से पूर्व रत्नों की वर्षा, माता द्वारा सोलह स्वप्नों का दर्शन, महावीर तीर्थंकर का गर्भावतरण महोत्सव का वर्णन है-

रत्नो की वर्षा :

देहसुपात्रहि उत्तम दान, रत्नवृष्टि सुर करहिं निदान।
तिनको देखि मध्य नर कोई, दान देने में तत्पर होई॥[1]

***

कीनो कुबेर पुरमें प्रकाश, उन रचे हेम उँचे अवास।
जिनराज धर्म आगमन जान, इन कियों महोत्सव सुक्खा खान॥[2]

***

स्वप्न दर्शन :

एक समय रानी जिनधाम, कोमल सेंज करे विश्राम।
निशा पाछिले पहर निदान, सोवे सुख जुत निंद प्रमान॥[3]

***

गर्भावतरण महोत्सव :

कबहूं बन क्रीडा को जाय, गावें मधुर वचन समुदाय।
कब हूँ नृत्य कर सुख पाय, वाद्य कथा बहु कहै बनाय॥

---

१. "वर्धमान पुराण" : कवि नवलशाह, सप्तम् अधिकार, श्लो. ९८, पृ.६९

२. वही, श्लो. १२८, पृ.७१

३. वही, श्लो. १३५, पृ.७२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्यादिक बहु करे उपाय, ऋद्धि विक्रिया के परभाय।
जिन माता को हर्ष बढाय, करैं रंग देवी मन लाय ॥[१]

***

आभूषण पहरै निज सबै, जोति दशौविश फैली तबै।
ध्वजा छत्र जुत सरस विमान, छाय रह्यौ नभ मण्डल जान ॥
जय जय शब्द करत मन लाय, आये कुण्डलपुर समुदाय।
देवी देव विमान अपार, दिश दशहू रूध्यौ पूर सार ॥[२]

***

आठवें और नौवे अधिकार में भगवान के जन्म कल्याणक और बाल्यावस्था का भावपूर्ण सरस वर्णन किया गया है -

सामानिक सब देव अनेक, षोडश स्वर्ग तनें करें टेक।
आये सकल महोत्सव काज, अपने अपने वाहन साज ॥
ज्योतिष व्यन्तर और फणिन्द्र, सब परिवार सहित आनन्द।
दुन्दुभि शब्द महा ध्वनि करै, सकल देव जै जै उच्चरै।[३]

***

जन्माभिषेक कियो गिरि शीस, सोसब वर्ण कहो सुर इश।
तब बहु हर्ष भयो नृप रानि, अति आनंद महोच्छव ठानि ॥[४]

***

अद्भुत लीला हरि बहु करी, देखैं नर नारी पुर जूरी।
स्वजन आदि सब पुरजन तहे, आये सुतहि महोच्छव लेह ॥[५]

बाल्यावस्था :

खेलै देवन सहित जिनेश, तहां रत्नमय धूलि विशेष।
सों निज सिर पर डारै केलि, धूल देय मिथ्यामत बेलि ॥[६]

***

---

१. "वर्धमान पुराण" : कवि नवलशाह, सप्तम् अधिकार, श्लो. १९१-१९२, पृ.७४
२. वही, श्लो. १७८-१७९, पृ.७४
३ वही, अष्टम् अधिकार, श्लो. १३-१४, पृ.७८
४. वही, श्लो. ९३, पृ.८३
५ वही, श्लो.९५, पृ.८३
६. वही, नवम् अधिकार, श्लो.९, पृ.८५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हष करे क्रीडा बहु सोय, बांधव सजन सुख अति होय।
इहि विधि बाल कुमार सुहात, माता आगे बच तुतलात ॥[१]

***

दसवें अधिकार में प्रभु के बाल्य, जीवन यौवन में आकर वैराग्य और दीक्षा, कुल राजा द्वारा भगवान का प्रथम आहार, चंदना के हाथों से आहार लेने पर चंदना का कष्ट दूर होना, घोर तप करते हुए विविध प्रकार के उपसर्गों को सहते हुए केवलज्ञान की प्राप्ति का वर्णन है -

माता विलाप :

पुत्र बिछोह ताप अधिकाय, तन मन बेलि गई मुरझाय।
रुद्रण करे बहु व्याकुल होय, दुख विलाप जुत विह्वल सोय ॥[२]

इन्द्र द्वारा शान्त्वना :

भो देवी उर धीरज आन, मेरे वचन सूनो निज कान।
तुम सुत तीन जगत भरतार, अद्भूत विक्रम को नहि पार ॥[३]

दीक्षा कल्याणक :

मारग शिर है उत्तम मास, कृष्णपक्ष दशमी तिथि जास।
हस्त उत्तरा अन्तर माहि, अपरा हिन वेला तहं आंहि ॥[४]

परिषह :

ऋतु ग्रीष्म भानु जे तेजा, गिरि तुंग शिला की सेजा।
सो सरवर रह न कीचा, प्रभु ध्यान सुपय तन सींचा ॥[५]

विभिन्न प्रकार के उपसर्गों को सहन करते हुए भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। ग्यारहवें अधिकार में देवों द्वारा भगवान का केवल ज्ञान कल्याणक महोत्सव मनाने और कुबेर द्वारा रचित समवशरण का वर्णन है।

बारहवें अधिकार में समवशरण में गौतम इन्द्रभूति का आना और सन्देह की निवृत्ति होने पर भक्ति विगलित हृदय से भगवान की स्तुति का वर्णन है।

---

१. "वर्धमान पुराण" : कवि नवलशाह, नवम् अधिकार, श्लो. ११, पृ.८७
२. वही, दशम् अधिकार, श्लो. ९४, पृ.११४
३. वही, श्लो.७०, पृ.११४
४. वही, श्लो. १३४, पृ.१२१
५. वही, श्लो. १८६, पृ.१२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेरहवें से पन्द्रहवें अधिकार तक गौतम गणधर द्वारा प्रश्न करने पर भगवान द्वारा उत्तर में तत्व निरूपण का दार्शनिक पक्ष प्रस्तुत हुआ है।

सोलहवें अधिकार में इन्द्र द्वारा प्रार्थना करने पर भगवान का विभिन्न देशों में विहार, गौतम गणधर द्वारा श्रेणिक के पूछने पर उनके तीन पूर्व भवों का वर्णन, अन्त में विहार करते हुए भगवान का पावा में निर्वाण, गौतम स्वामी को केवलज्ञान की प्राप्ति और उनका धर्म विहार, धर्म उपदेश आदि का वर्णन करने के बाद कवि ने अन्त में अपना विस्तृत परिचय दिया है।

इस प्रकार महावीर चरित्र का वर्णन कविने परंपरानुसार किया है। जिस प्रकार जैन पुराणकार चरित्र वर्णन के माध्यम से जैन धर्म के विभिन्न सिद्धांतो का प्रतिपादन करने के अवसरों का पुरा उपयोग करते रहे हैं, उसी प्रकार कविने प्रस्तुत ग्रंथ में उपयोग किया है।

कवि नवल शाह ने वर्ण्य विषय के अनुकूल विभिन्न छन्दों और अलंकारों का प्रयोग करके छन्द और अलंकारशास्त्रों पर अपने अधिकार और उनके प्रयोग की प्रतिभा का सफल प्रदर्शन किया है। दोहा, छप्पय, चौपाई, सवैया, अडिल्ल, गीतिका, सोरटा, करखा, पद्धरि, चाल, जोगीरासा, कवित्त, त्रिभंगी, चर्चरी छन्दो की कुल संख्या ३८०६ है। कविने कहीं भी अनावश्यक शब्दाडम्बर नहीं दिखाया, बल्कि उनकी कविता का प्रत्येक शब्द सार्थक उपयोगी और भावगर्भित है।

इस वर्धमान पुराण ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति में लगभग ३५० चित्र भी दिये गये हैं। ये सभी चित्र विषय के संबंधित हैं। इन चित्रों का महत्व इस दृष्टि से अधिक बढ गया है कि ये मौलिक रूप में दिये गये हैं। वास्तव में कवि नवल शाह ने इस वर्धमान पुराण ग्रंथ को लिखकर जैन और जैनेतर समाज को लाभान्वित किया है।

***

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय अध्याय

(१) भगवान महावीर का जीवन परिचय

(२) प्रमुख चरित्रों का चरित्र चित्रण

(अ) पुरूष पात्र

* *पिता सिद्धार्थ*
* *भाई नन्दीवर्धन*

(ब) नारी पात्र

* *माता त्रिशला*
* *पत्नी यशोदा*
* *शची (इन्द्राणी)*
* *सती चंदनबाला*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) भगवान महावीर का जीवन :

जैन मान्यतानुसार वर्तमान अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थंकरो की जिस परंपरा का आरंभ आदिनाथ भगवान ऋषभदेव से हुआ था, उसके अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी हुए। पूर्व तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के पश्चात् ढाई शताब्दि के अन्तराल से भगवान महावीर का प्रादुर्भाव हुआ। वह समय ईसापूर्व छठी शताब्दी का था। अर्थात् आज से लगभग २६०० वर्ष पूर्व भगवानने दिग् भ्रान्त मानवों को कल्याण का मार्ग बताया। तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के पश्चात् धर्मानुशासन में जो विच्छृंखलता और शिथिलता आ गयी थी, भगवान महावीर ने उसको दूर किया और जैन धर्म को पुनः सशक्त रूप में स्थापित कर दिया। तथा तत्कालीन युग के अनुरूप बना दिया। भगवान की यह धर्म उन्नयन की सफल भूमिका इतनी महत्वपूर्ण थी कि भ्रमवश उन्हें जैन धर्म का संस्थापक ही कह दिया जाता है। भगवानने धर्म संघ की स्थापना कर तीर्थंकरत्व को प्राप्त किया ही, साथ ही वे लोकोपकारी, मार्गदर्शक भी थे। इस दृष्टि से उन्हें यथार्थ ही में लोकनायक कहा जा सकता है।

वीर जन्म के पूर्व की स्थिति :

भगवान पार्श्वनाथ के ढाई सौ वर्ष पश्चात् भगवान श्री महावीर [१] चौबीसवें तीर्थंकर के रूप में भारत-वसुधा पर उत्पन्न हुए। उस समय देश और समाज की दशा काफी विकृत हो चुकी थी। मानव दानव बन चुका था। धर्म, संस्कृति, सभ्यता एवं ज्ञान के नाम पर मूक पशुओं के प्राण बलिदान कर उनके जीवन से खिलवाड़ कर रहा था। पंथवाद एवं जातिवाद के नाम पर इतनी अराजकता फैल रही थी कि मानवता की आवाज सुनाई नहीं दे रही थी। स्त्री जाति का पतन मनुष्य के हाथों से पूर्ण रूप से हो रहा था। उनका सामाजिक स्थान नगण्य था। गृहलक्ष्मी अब गृहदासी ही बन गई थी। मनुष्य की राक्षसी प्रवृत्ति ने मानवीय आदर्शों का गला घोंट दिया था। शूद्रों की स्थिति पशुओं से भी गई गुजरी थी। वह नफरत की निगाह से देखा जाता था।

भगवान पार्श्वनाथ का शासन चल रहा था, पर उसमें भी वह शक्ति नहीं रही थी कि पाखण्ड की आंधियों को रोक सके। महामुनि केशीकुमार श्रमण का चिंतन चल

---

१. (क) पास जिणाओ य होइ वीर जिणो अड्ढाइज्जसएहिं गएहिं चरिमो समुप्पन्नो।- आवश्यक निर्युक्ति (मलय). पृ.२४१, गा.१७.

(ख) आवश्यक चूर्णि, गा. १७, पृ.२१७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहा था। चारों ओर अंधकार ही अंधकार है। बेचारी मूढ जनता अंधकार में भटक रही हैं, उन्हें कहीं पर प्रकाश नहीं मिल रहा है, ऐसे समय में भारत की पुण्य भूमि पर दिव्य लोकोत्तर महापुरुष का उदय हुआ, जिसका नाम श्रमण भगवान महावीर है।

भगवान महावीर एक प्रभावशाली पुरुष एवं अग्रगण्य श्रमण थे। पालि ग्रन्थों के अनुसार वे बुद्ध के समकालीन थे, पर दोनों की कभी भेंट नहीं हुई।[१] प्रारंभ के प्राकृत ग्रन्थों में बुद्ध का नामोल्लेख नहीं हुआ है। इससे मालूम होता है कि महावीर और उनके अनुयायियों ने बुद्ध के व्यक्तित्व को विशेष महत्व नहीं दिया। लेकिन पालित्रिपिटक में महावीर को बुद्धकालीन छः तीर्थंकरो में से एक माना गया है।

जन्म स्थान :

भगवान महावीर की जन्म स्थली के विषय में इतिहासज्ञ विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ विद्वान आगम साहित्य में उल्लखित "वेसालिय" शब्द को देखकर इन की जन्मस्थली वैशाली मानते है तो कुछ विद्वान "कुंडनपुर" तो क्षत्रियकुंड तो कोई मगध देश तो कोई इसे विदेह मानते है। किन्तु श्वेताम्बरी ग्रंथ सत्तरिसय द्वार में कुण्डपुर और आवश्यक ग्रंथ में कुण्डलपुर लिखा है। दिगम्बरी ग्रंथ हरिवंश पुराण और उत्तम पुराण में कुण्डपुर का नामोल्लेख है और तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में कुंडलपुर है।

उपर्युक्त प्रमाणों और ऐतिहासिक आधारों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान महावीर का जन्म वैशाली के कुंडपुर (क्षत्रियकुंड) सन्निवेश में हुआ। स्थानांग व समवायांग में भगवान महावीर के सम्बन्धित जो उल्लेख हैं वे बहुत ही महत्व के हैं। इसके बाद भगवती आराधना में तो भगवान महावीर सम्बन्धी बहुत अधिक और महत्व की सामग्री हैं। इसमें देवानंदा ब्राह्मणी का महत्वपूर्ण प्रसंग वर्णित हैं। जिसमें यह कहा गया है कि ब्राह्मणकुण्ड ग्राममें ऋषभदत्त ब्राह्मण और उसकी पत्नी देवानंदा श्रमणों के उपासक थे। एक बार भगवान् महावीर उस ग्राम में आये तो वे बहुत प्रसन्न होकर भगवान के दर्शन करने के लिए आये। ऋषभदत्त भगवान को विधि सहित प्रणाम करके खड़ा रहा, देवानंदा भी तीन बार वंदना करके हाथ जोड़कर अपने परिवार के साथ खड़ी रही। भगवान को देखते देखते देवानंदा के स्तन से दूध की धारा बह निकली। आनन्द से आँखे भींग गई। शरीर हर्ष से प्रफुल्लित होकर रोगटें खड़े हो गए और भगवान महावीर को

---

१. सन्दर्भ-जैन-धर्म-दर्शन : डॉ. मोहनलाल महेता, पृ.८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनिर्मिष दृष्टि से देखते हुए खड़ी रही। तब गौतमस्वामी ने भगवान से पूछा कि देवानंदा के स्तन में दूध की धारा कैसे फूटी ? इस के उत्तर में भगवान ने कहा कि गौतम यह देवानंदा मेरी सच्ची माता है और मैं इसका पुत्र हूँ।[१]

आचारांग सूत्र में भी भगवान महावीर की जीवनी संक्षेप में प्राप्त होती है जिसका कुछ विस्तार कल्पसूत्र में पाया जाता है। इस संक्षिप्त जीवनी से श्वेतांबर मान्यताओं की प्राचीनता और प्रामाणिकता सिद्ध होती है कि भगवान महावीर ब्राह्मणकुंड ग्राम के कोडाल गोत्रीय ऋषभदत्त की पुत्री जालंधर गोत्रीया देवानंदा ब्राह्मणी की कोख में आषाढ शुदी ६ को उत्पन्न हुए थे। फिर देवने ८२ दिन बीत जाने बाद ८३ वे दिन आश्विन शुक्ला त्रयोदशी को क्षत्राणी की कोख में रख दिया। अर्थात् गर्भ परिहरण की घटना प्राचीन प्रमाणों से पुष्ट है। नवमास और सात दिन की गर्भाविधि पूर्ण होने पर राजा सिद्धार्थ के वहाँ रानी त्रिशलादेवी की कुक्षिसे चैत्र शुक्ल त्रयोदशी (इ.स.पूर्व ५९९) के दिन उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में तेजवान पुत्र रत्न ने जन्म लिया। सिद्धार्थ को इक्ष्वावंशी और गौत्र से काश्यप कहा गया है। कल्पसूत्र और आचारांग में सिद्धार्थ के तीन नाम बताये गयें है- (१) सिद्धार्थ (२) श्रेयांस और (३) यशस्वी।[२] त्रिशला वासिष्ठ गोत्रीया थी, उनके भी तीन नाम उल्लिखित हैं - (१) त्रिशला, (२) विदेह दिन्ना और (३) प्रियकारिणी। वैशाली के राजा चेटक की बहिन होने से ही इसे विदेह दिन्ना कहा गया है।[३]

बाल्यकाल :

जब से उन्होनें त्रिशला के गर्भ में पदार्पण किया तब से राज्य के खजाने के सोना, चांदी, धन, धान्य आदि समस्त राजकीय साधनों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। फलतः उसका नाम वर्धमान रखा गया।[४] भद्रबाहु ने कल्पसूत्र में आपके तीन नाम बताये है- यथा माता-पिता के द्वारा "वर्धमान" सहज प्राप्त सदबुद्धि के कारण "समण" अथवा शारीरिक व बौद्धिक शक्ति से तप आदि की साधना में कठिन श्रम करने से "श्रमण" और परिषहों में निर्भय अचल रहने से देवों द्वारा महावीर नाम रखा गया।[५]

---

१. आचारांग सूत्र : श्रुतस्कंध-१, १५ वां भावना नामक अध्ययन

२. कल्पसूत्र, १०५/१०६ सूत्र। आचारांग भावनाध्ययन।

३. दिगम्बर मतानुसार त्रिशला चेटक की पुत्री थी।

४. कल्पसूत्र, सूत्र १०३

५. वही, १०४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शक्ति-परिचय :

एक बार कोई अभिमानी देव उनके साहस की परीक्षा के विचार से किशोररूप धारण कर उनके क्रीडावन में सम्मिलित हो गया। खेल में वर्धमान के साथ हार जाने पर नियमानुसार उसे वर्धमान को पीठ पर बैठाकर दोडना था। अतः किशोर रुपधारी देव दोडता हुआ आगे निकल गया और एकांत में उसने अपना विकराल रूप बनाकर वर्धमान को डराना चाहा। देखते ही देखते किशोर ने लम्बा ताड जैसा पिशाच रुप धारण कर लिया। किन्तु वर्धमान उसकी यह करतूत देखकर न धबराये और न विचलित हुए। दृढता के साथ उसकी पीठ पर एक ऐसा मुष्टि प्रहार किया कि देवता दर्द के मारे चीख उठा और गेंद की तरह फूला शरीर दब कर वामन हो गया।[१] उस देवका मिथ्याभिमान चूर-चूर हो गया। देवने बालक महावीर से क्षमा याचना करते हुए कहा "वर्धमान" ! इन्द्र ने जिस प्रकार आपके पराक्रम की प्रशंसा की वह अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई। वास्तव में आप वीर ही नहीं महावीर है। इस प्रकार महावीर की वीरता, धीरता और सहिष्णुता बचपन से ही अनुपम थी।

योवनावस्था :

बचपन यौवन की चौखट पर पहुंचता है। पर न उसमें मर्यादाहीन उन्माद है, न भोग लिप्सा है और न विह्वलता है। माता-पिता के आग्रह से शादी करनी पडती है, क्योंकि वे माता-पिता को दुःखित भी नहीं करना चाहते थे। उन्होंने गर्भा काल में ही माता के स्नेहाधिक्य को देखकर अभिग्रह कर लिया था कि जब तक माता-पिता जीवित रहेंगे, वे दीक्षा ग्रहण नहीं करेंगे। माता-पिता को प्रसन्न रखने के इस अभिग्रह के कारण ही महावीर को विवाह बंधन में बंधना पड़ा।[२] राजकुमारी यशोदा सर्व प्रकार से इस कुल और वरके योग्य थी। यशोदा ने एक पुत्री को भी जन्म दिया। जिसका नाम प्रियदर्शना रखा गया।

---

१. (क) स व्यरंसी द्रुर्न्धनान्न, यावन्तावन्महौजसा।
आहत्य मुष्टिना पृष्ठे, स्वामिना वामनीकृतः।- त्रि.पु.च.१ /२, श्लो.२१७
(ख) आवश्यक चूर्णि, १ भा. पृ.२४६

२. दिगम्बर मतानुसार भगवान अविवाहित थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विरक्ति :

यद्यपि बाह्य रुप से महावीर संसारी थे, पर उनका मन तो बचपन से ही विरक्त था। वे विषयसागर में कमलवत् निर्लिप्त भाव से विहार करते थे। उनका मन तो अनन्त सुख की खोज में था। जीवन के अट्ठाईस वर्ष माता-पिता की सेवा में बिताकर उन्होने जीवन के सबसे प्रथम और उत्कृष्ट कर्तव्य का पालन किया। उनके माता-पिता का स्वर्गवास हुआ। तब वे अट्ठाईस वर्ष के थे।[१]

माता-पिता के स्वर्गवासी हो जाने पर महावीर की गर्भाकालीन प्रतिज्ञा पूर्ण हो गई। वर्धमान ने अग्रज नन्दीवर्धन से विरक्त होने की अनुमति मांगी। माता-पिता के निधन से वे पहले ही बड़े दुःखित थे। अनुज का यह प्रस्ताव उन्हें ओर कष्ट देने लगा। अग्रजने वर्धमान से आग्रह किया कि वे अभी संयम ग्रहण नहीं करें। वर्धमान अपने अग्रज का पितातुल्य ही सम्मान करते थे। उनकी आज्ञा का अनादर वर्धमान न कर पाये और दीक्षा ग्रहण करने का विचार कुछ समय के लिए उन्हें पुनः स्थगित करना पडा। राज परिवार के सम्पन्न वातावरण में रहकर भी वर्धमान योगी-सा जीवन जीने लगे थे। भौतिक सुखों और विषयों के प्रति उनका मन विकर्षित रहता था। वे अद्भूत योगी थे। दो वर्ष से कुछ अधिक काल तक महावीर विरक्त व्रत पालन करते हुए घरमे रहे, वे भूमि-शयन करते एवं क्रोधादि से रहित हो एकत्वभाव में लीन रहते थे।[२]

दीक्षाग्रहण :

भगवान महावीर का च्यवन, गर्भापहरण, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान-दर्शन प्राप्ति ये पांच मांगलिक प्रसंग हस्तोत्तर नक्षत्र में हुए थे।[३] वर्धमानकुमार को प्रतीक्षा की यह दो वर्ष की अवधि अत्यंत दीर्घ लगी। अन्ततः लोकान्तिक देवों ने उनसे धर्म प्रवर्तन की प्रार्थना की तो वे वर्षीदान में प्रवृत्त हुए और इस के सम्पन्न होजाने पर उन्होंने महाभिनिष्क्रमण किया। वर्धमान गृहत्याग कर चन्द्रप्रभा शिविका में आरुढ हो ज्ञातखण्ड उद्यान में पधारे। वहां वस्त्रालंकारो का त्यागकर उन्होने पंचमुष्टि केश लुंचन किया और

१. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो पासवच्चिज्जा. समणोवासगा यावि होत्था। ...अच्चुए कप्पे देवत्ताए उववण्णा... महाविदेहवासे चरिमेणं।- आव. चू.१, भा.पृ.२४९

२. (क) आचा. प्र. टीका, पृ.२७५

(ख) बम्भयारी असंजमवाव/रहितो ठिओ, णय फासुगेण विण्हातो, हत्थापादसोयणं तु फासुगेण आयमणं च। णय बंधवेहि वि अतिणेहं कत्तव्वं। आव.चू.१, पृ.२४९

३. स्थानांग - पंचमस्थान, प्रथम उद्देश्य, पृ.४८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वयं ने संयम ग्रहण कर लिया।उस समय हेमन्त ऋतु का प्रथम मास,मगशर कृष्ण दशमी तिथि का समय, सुब्रत दिवस, विजय नामक मुहूर्त और चतुर्थ प्रहर में उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र था। ऐसे शुभ समय में निर्मल बेले की तपस्या से प्रभुने दीक्षा ग्रहण की।

भगवती सूत्र में आत्मकथा के रुप में भगवान महावीर ने कहा कि मैं ३० वर्ष गृहवास में रहा, माता-पिता के स्वर्गवास होने के बाद स्वर्णादिक का त्याग करके एकदेवदूष्य वस्त्र धारण किया और प्रवर्जित हो गया। [१]

जैन जगत के अन्तिम होनहार तीर्थंकर ने विराट् देवमानव समूह के बीच यह उद्घोष किया कि - "सव्व में अकरणि ज्जं पावकम्मं - आजसे सब पाप कर्म मेरे लिए अकृत्य हैं। लाखों देव और मानव निश्चल भाव से देख रहे थे कि वह वैभव और ऐश्वर्य में पला राजकुमार आजसे अकिंचन होकर, मात्र आत्म हिताय ही नहीं, बल्कि सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय अकेला शान्त और निस्पृह साधना के कंटकाकीर्ण मार्ग पर निकल पडा है।

स्थानांग सूत्र में यह भी लिखा है कि श्रमण भगवान महावीर बज्रऋषभनाराच संघयण समच तुष्क संस्थानवाले और सात हाथ ऊंचे शरीर वाले थे। भगवान महावीर ने दीक्षा ली केवलज्ञान, दर्शन और मोक्ष प्राप्त किया इन तीनों प्रसंग पर बिना जलके निर्जल दो उपवास की तपस्या की थी।

सबसे पहले अंग सूत्र आचारांग में भगवान महावीर के साधक जीवन-तप आदि का जो विवरण मिलता वह बहुत ही महत्वपूर्ण है। [२] वास्तविकता के बहुत निकट है। उसमें एक महत्वपूर्ण बात का निर्देश है कि १३ महीने तक भगवान ने देवदूष्य वस्त्र को अपने पास रखा, पश्चात् दूसरे वर्ष शिशिर ऋतु आधी बीत जाने पर उसको भी छोड़कर वे अचेलक अर्थात् दिगंबर अवस्था में रहे। कल्पसूत्र आदि ग्रन्थों मे उल्लेख है कि दीक्षा से दो वर्ष पहले भगवान के माता-पिता चल बसे थे। उन्होने बड़े भाई नन्दीवर्धन से दीक्षा की आज्ञा मांगी थी और उस की आज्ञा न मिलने पर दो वर्ष तक जल से साधुवृत्ति में भगवान महावीर रहे थे-इसका संकेत मिलता है। दीक्षा के समय भगवान महावीर ने देवदूष्य वस्त्र धारण किया था और १३ महिने बाद उसे गरीब ब्राह्मण को दे दिया था। इसका संकेत भी आचारागं के इसी प्राचीन विवरण से मिल जाता है।

---

१. समणे भगवं महावीरे वइरोसभणाराय संघयणे समचउरंस - संठाण - संठिते सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं हुत्था। स्थानांग- सप्तम स्थान, प्रथम उद्देश्य, पृ.५९९

२. आचारांग सूत्र : प्रथम श्रुतस्कंध, नवम् उपधान-नामक अध्ययन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधनापक्ष :

साधना से सिद्धि मिलती है। महावीर ने अब जीवन को ब्रह्मचर्य और तप की उग्र साधना में आरूढ कर लिया। सत्य के व्याख्याता बनने से पहले वे चिन्तक बने, गंभीर अन्वेषक बने। अपने ही अन्तर की गहराईयों में उतरकर सत्य का दर्शन किया। आत्म-साधना उपदेष्टा बनने से पहले वे स्वयं उत्कृष्ट आत्म-साधक बने।

साधना काल में वे शान्त एकान्त निर्जन स्थानों में जाकर ध्यान में अचल खड़े हो जाते, चिन्तन में गहरे उतर जाते। इनके इस कठोर और विस्मयकारी साधक रुप पर किसीने श्रद्धा के सुमन चढाए तो किसीने उन पर क्रूर प्रहार भी किये। अज्ञानियों ने उन्हें कष्ट दिये, संगम जैसे देवताओं ने भी छह-छह मास तक उनका पीछा किया। संगमदेव ने हर प्रकार की संभव असंभव यातनाए देकर, उस तपस्वी को साधना पथ से विचलित करने का प्रयत्न किया। किन्तु जब वह अपनी समस्त कुचेष्टाओं में असफल हो गया, तो एक दिन महावीर के समक्ष आकर खड़ा हुआ तब करुणावतार महावीर की आंखों में अनुकम्पा का अमृत झलक उठा-"संगम ! मेरे मनमें रह-रहकर एक ही वेदना की कसक उठ रही है कि तुम्हारे छह महिने तक लगातार कष्ट देने पर जहाँ मेरी साधना अग्नि परीक्षा में निखरकर तेजस्वी बनी है, वहाँ मेरे निमित्त से तुम्हारा अनिष्ट हुआ है, जीवन कलुषित हुआ है। बस यही एक विचार मेरे मन को द्रवित कर रहा है।"

बारह वर्ष और छः मास के इस साधना काल में महावीर ने अनेक दीर्घ तपस्या की। श्वेतांबरी ग्रंथ सत्तरीसय में भगवानने साडे बारह वर्ष और १५ दिन उग्र तपस्या की। आवश्यक निर्युक्ति के अनुसार साढे बारह वर्ष का और हरिवंश पुराण में बारह वर्ष के तपस्या काल का उल्लेख है। दिगम्बरी ग्रन्थानुसार तिलोयपण्णत्ति में और उत्तरपुराण में भगवान की १२ वर्ष की तपस्या का वर्णन है।[१] श्वेतांबर मतानुसार भगवान का प्रथम तप बेला से प्रारंभ हुआ। दिगम्बर मतानुसार तेला से प्रारंभ किया।[२] भगवान के प्रथम

---

१. सत्तरिसय-८४ द्वारा, गा. १७२ से १७४, आवश्यक निर्युक्ति में गा. २३८ से २४०, हरिवंश पुराण ३३७ से ३४० और तिलोयपण्णत्ति-गा.६७५-६७८.

२. सम. गा. २६., प्रव. सा. ४३ द्वार, आव. निर्युक्ति, सत्त. द्वार ६३ गा. १४९, हरि.पु.गा.२१६ से २२० में प्रथम तप बेलासे और तिलो. गा. ६४४ से ६६७ में और उत्तर पुराण में प्रथम तप तेला से प्रारंभ किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पारणा के दाता श्वेताम्बर मतानुसार बहुल और दिगम्बर अनुसार नकुल था।[१] किन्तु दिगम्बर ग्रन्थ उत्तर पुराण पर्व में प्रथम पारणा के दाता का नाम कूल दिया है।

सब साधना की प्रक्रियाओं के माध्यम से अन्तर शोध करते हुए एक दिन उस अनन्त सत्य को दर्शन कर लिए, उस महा प्रकाश को पा लिया। अल्पज्ञ से सर्वज्ञ बन गए थे। वह जंभिया ग्राम के कल-कल निनादकर बहती हुई ऋजुबालिका नदीका शान्त एवं पवित्र तट, सन्ध्या का समय और वैशाख शुक्ल दशमी का पावन दिन। भगवान का केवलज्ञान नक्षत्र श्वेतांबर मतानुसार उत्तरा फाल्गुनी और दिगम्बर मतानुसार मघानक्षत्र है।[२]

जनकल्याण एवं हितोपदेश

भगवान महावीर जंभिया ग्राम से मध्य पावापुरी में पधारे। समवशरण (धर्म सभा)की रचना हुई। विशाल मानव समुदाय एकत्र हुआ। सुर और असुर सभी उपदेश सुनने को उपस्थित हुए। भगवान महावीर की देशना ने सुप्त आत्माओं को जगाया। भटकते हुए पथिकों को मार्ग दिखाया और फलस्वरुप चतुर्विध संघ की स्थापना हुई। उस संघ की आधारभूमि कितनी स्पष्ट और कितनी सुदृढ़ थी, जो हजारों हज़ार वात्यचक्रों में से गुजरने के बाद आज भी अपना अस्तित्व सुरक्षित रखे हुए है। आत्म, विजय, व्रत, विनय, अहिंसा, मैत्री, शील और समभाव यही तो उनके सुदृढ़ स्तम्भ थे।

चतुर्विध संघ को प्रभु ने इन्हीं तत्वों पर आचरण करने का आदेश दिया था। भगवान महावीर के श्रमण संघ का आधार भौतिक नहीं आध्यात्मिक है। वह भय और प्रलोभन के बल पर नहीं, अपितु प्रेम करुणा और आत्म जागरण के बल पर आगे बढता है और विश्व को अखण्ड आत्म-बोध का सर्व मंगल संदेश देता है।

भगवान महावीर का जीवन सक्रिय था। वे महाकाल के प्रवाह में बहते हर क्षण को जीवन की अमूल्य थाती मानते थे। इसीलिए वे कहते रहे है-''समयं गोयम मा पमायए''-''समय मात्र भी प्रमाद मत करो।'' उन्होने जीवन के तीस वर्षो में जो किया, वह हजारों, लाखों वर्षो के इतिहास को बदलने में समर्थ हुआ।

---

१. श्वे.ग्र.आ.नि.गा.३२३-३२९, सत्त. द्वार. ७७ गा. १६३-१६५ और समवायांग गा. ७६-७७, दि. उत्त. पु. पर्व ४८ से ६९ और हरिवंश पुराण-७२४ गा.

२. सन्दर्भ : जैन धर्मका मौलिक इतिहास-हस्तीमलजी म.सा., पृ.५८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन के विचार पक्षसे भी अधिक महत्वपूर्ण है आचारपक्ष। आचार की पवित्रता और विशुद्धि के लिए प्रभुने अहिंसा और अपरिग्रह का संदेश दिया। क्रूरता और संग्रहवृत्ति सगी बहन है। जहाँ संग्रहवृत्ति है, वहाँ उनके अर्जन और रक्षण के लिए क्रूरता का जन्म होता है। और जीवन के समस्त दोषों एवं दुर्गुणों का आविर्भाव भी यहीं होता है। करुणावतार महावीर ने इन्हीं दोनों दोषों को जीवन की अशुद्धि का मूल मानकर दया और संतोष अथवा अहिंसा और अनेकान्त का संदेश दिया।

सामाजिक जीवन की उपेक्षित शक्ति नारी के नवजागरण का अभियान महावीर ने पुनः प्रारंभ किया। आर्या चंदना के नेतृत्व में उन्होनें नारी जाति में ज्ञान, शिक्षा, सद्भाव और तपस्या का बीजांकुर किया। वह केवल सामाजिक क्रान्ति ही नहीं, अपितु एक महान शाश्वतधर्म की जागृति भी थी।

सामाजिक जीवन में परस्पर सद्भाव और प्रेम का वातावरण बनाने के लिए ऐसे कुछ उदाहरण भगवान महावीरने प्रस्तुत किए हैं, जो बहुत ही प्रेरक एवं मार्गदर्शक हैं। राजाओं के विग्रह, समाज के कलह और मनमुटाव के प्रसंगो की जड़ को भी उन्होंने बड़ी सूक्ष्मता से पकड़ा। और उसके कुपरिणामों से मानव जाति को उबारा।

इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर का तीस वर्ष का तीर्थंकर जीवन बहुमुखी एवं बहुकृतित्व-संपन्न रहा है। एक महान धर्मशास्ता, सत्योपदेशक, करुणावतार और परम साधक का जीवन है वह। उनके जीवन में साधना का जो अखण्ड दीप जला वह आज भी प्रज्वलित है। भगवान ने अंधकार में भटकनेवालों को वह ज्ञान-ज्योति प्रदान की, जिसे पाकर हर आत्मा ज्योति-स्वरूप बन जाता है।

अन्तिम देशना व निर्वाण :

जीवन का बहत्तरवां वर्ष उनकी संसार यात्रा का अन्तिम वर्ष था। अन्तिम वर्षावास पावापुरी में हस्तिपालराजा की रज्जुकसभा में हुआ। कार्तिक अमावस्या से पूर्व ही उन्होने अपने सब कार्य संपन्न कर लिए थे। उस दिन वे बड़ी लम्बी देशना कर रहे थे। काशी और कौशलगणं राज्यों के नवमल्लि और नवलिष्छवि राजाओं ने प्रभुका अन्तिम उपदेश सुना। अन्य भी हजारों, श्रद्धालु हृदयों ने प्रवचनामृत का पानकर अपने को धन्य बनाया। अन्तिम उपदेश धारा में वैराग्य और कर्तव्य का जो विशिष्ट उपदेश भगवानने दिया, वह आगे चलकर उत्तराध्ययन सूत्र के रुप में संकलित किया गया। उत्तराध्ययन सूत्र उस महान साधक की सुदीर्घ साधना का नवनीत है जो अपनी साधक आत्माओं के विचार देह को परिपुष्ट कर रहे है। भगवान महावीर की यह अन्तिम वाणी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शिष्यों का सम्बल बनी, सहारा बनी, वे इस ज्योतिर्मय संदेश को पाकर धन्य धन्य हो गए।

भगवान महावीर के गर्भ से निर्वाण तक दिगम्बर व श्वेताम्बर परम्पराओं में जो मुख्य अन्तर या मतभेद है उसका तुलनात्मक दृष्टिकोण यहाँ ज्ञान हेतु प्रस्तुत कर रही हूँ।

महावीर की जीवनी सम्बन्धी ऐतिहासिक मान्यताओं में दिगम्बर और श्वेताम्बर संप्रदायों में जो मूलभूत भेद माने गये हैं वे इस प्रकार हैं -

श्वेताम्बर मान्यता	**दिगम्बर मान्यता**
जन्मभूमि	
सत्तरिसय द्वार में कुण्डपुर, आवश्यक ग्रन्थ में कुण्डलपुर	हरिवंशपुराण, उत्तर पुराण में कुण्डपुर और तिलोयपण्णति में कुण्डलपुर हैं।
च्यवनतिथि	
अषाढ शुक्ल ६ दी है।	वही
च्यवन नक्षत्र	
उत्तरा फाल्गुनी	उत्तराषाढा
च्यवन स्थल	
प्राणात स्वर्ग	पुष्पोत्तर विमान
दीक्षा नक्षत्र	
उत्तराफाल्गुनी	उत्तरा
दीक्षा साथी	
प्रवचनसार द्वार, सत्तरिसय, समवायांग समवाय आदि में भगवान के दीक्षा साथी एकाकी थे।	हरिवंश पुराण, तिलोयपण्णति में प्रभु एकाकी थे और उत्तरपुराण में प्रभु के दीक्षा साथी १००० थे स्वयं एकाकी नहीं थे ऐसा लिखा है।
प्रथम तप	
समवायांग, प्रवचनसार द्वार आवश्यक निर्युक्ति, सत्तरिसय द्वार में प्रथम तप बेला (दो उपवास)	हरिवंशपुराणं में प्रथम तप बेला से हुआ तथा उत्तर पुराण, तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में तीन उपवास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से हुआ।	या तेला से हुआ।
प्रथम पारणा दाता	
आव. नि., सत्त. द्वार और समवायांग में प्रथम पारणा दाता बहूल था।	उत्तरपुराण पर्व में कूल और हरिवंशपुराण में बकुल था।
प्रथम पारणा स्थल	
आव.नि., सत्त. द्वारा और सम. के अनुसार प्रथम पारणा स्थल कोल्लागग्राम है।	उत्तरपुराणपर्व में कूल ग्राम और हरिवंशपुराण में कुंड पर प्रथम पारणा का स्थल बताया है।
छद्मस्थकाल	
सत्त. द्वा. में साढे बारह वर्ष, हरि. में बारह वर्ष।	तिलो. ग्रंथ में बारह वर्ष और उत्त. में बारह वर्ष वर्णित हैं।
श्रावक संख्या	
प्रव.द्वा., आव.नि.सत्त. द्वार में १०००००	हरी., तिलो. उत्तरपुराणं आदिग्रन्थों में १४९००० हैं।
श्राविका संख्या	
प्रव. द्वा., सम., सत्त. द्वा. में ३१८००० हैं।	हरि. पु., तिलो., और उत्त. पु. आदि ग्रंथों में ३००००० हैं।
वैक्रियलब्धिधारी	
प्रव. द्वा., सत्त द्वार में वैक्रियलब्धिधारी ७०० थे।	हरि. पु.तिलो. उत्त.पु.ग्रन्थों में ९०० थे।
माता-पिताकी गति-	
माता- त्रिशला, देवानंदा। **त्रिशला-** चोथे माहेन्द्र देवलोकमें **देवानन्दा-** सिद्धगति को प्राप्त हुई। **पिता** -सिद्धार्थ और ऋषभदत्त सिद्धार्थ की गति आचारांग सूत्र में इन दोनों का बारहवें सर्ग में जाने का उल्लेख हैं।	स्त्री को मुक्ति नहीं मानते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषभदेव की गति-

सिद्ध

निर्वाण तिथि-

प्रव.द्वा., कार्तिककृष्ण चौदस की है। सत्त. द्वा. में कार्तिक कृष्ण तीसकी है।	हरि. पु.तिलो. ग्रन्थ में निर्वाण तिथि कार्तिककृष्ण चौदस की है .

निर्वाण साथी-

प्रव. द्वा., आव. नि.सत्त. द्वा. क्रमानुसार १, १ एकाकी	तिलो., ग्रंथ में भगवान अकेले रहे। हरि. पु. में निर्वाणसाथी २३ का वर्णन है तथा उत्त. पु. में प्रभु के १००० निर्वाणसाथी बताया है।

पूर्वभव का नाम-

समवायांग, सत्त. द्वा. में प्रभु का पूर्वभव का नाम नंदन दिया है।	हरि. पु.में नन्दन है किन्तु उत्त. पु. ग्रंथ में नन्द पूर्व भव का नाम है।

गर्भापहरण-

सम. सूत्र के ८३ वें समवाय में, स्थानांग सूत्र के पांचवें स्थान में भी भगवान महावीर के पंच कल्याणकों में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में गर्भ परिवर्तन का स्पष्ट उल्लेख है। स्थानांगसूत्र के दसवें स्थान में दश आश्चर्य गिनायें है। उनमें गर्भहरण का दूसरा स्थान है	दिगंबर परम्परा ने गर्भापहरण के प्रकरण को विवादास्पद समझकर मूल से ही छोड दिया है। वे गर्भापहरण को स्वीकारन नहीं करते। सीधे ही माता त्रिशला को गर्भ में मानते हैं।
भगवान की माता ने १४ स्वप्न देखें।	१६ स्वप्न

विवाहित

गोशालक भगवान महावीर का शिष्य। माता त्रिशला चेटक की बहिन थी। राजा सिद्धार्थ के दो पुत्र थे। नन्दीवर्धन और वर्धमान।	गोशालक का पार्श्वनाथ परंपरा के मुनि रुप में चित्रण किया है। राजा चेटक की पुत्री थी। राजा सिद्धार्थ के एक मात्र वर्धमान पुत्र था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्धमान की भाभी का नाम प्रजावती था। भगवान की २८ वर्ष की उम्र में ही माता-पिता का देहान्त हो गया। फिर उन्होने माता-पिता के देहान्त के पश्चात् दीक्षा ग्रहण की।	भगवान ने ३० वर्ष की अवस्था में ही दीक्षा ली जब कि उनके माता-पिता जीवित थे।
भगवान दीक्षा के समय सवस्त्रधारी थे और उनके कन्धे पर देव-दुष्य था।	भगवान दीक्षा के समय नग्न दिगम्बर हो गये थे।
भगवान का उपदेश केवलज्ञान प्राप्त होने से पहले भी हुआ किन्तु प्रथम समवशरण में देव ही उपस्थित थे, मनुष्य नहीं.।	उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त होने से पहले उपदेश नहीं दिया था और ६६ दिन बाद प्रथम समवशरण उस समय हुआ जब उन्हें इन्द्रभूति गौतम गणधर के रुप में प्राप्त हुआ।
भगवान का रात्रिगमन है।	रात्रिगमन नहीं है।

भगवान महावीर का अन्तराल काल श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्ना के अनुसार दो सो पचास वर्ष बाद महावीर सिद्ध हुए।

भगवान महावीर के जीवन सम्बन्धी समानताएँ दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायों में निम्नानुसार है।

दिगम्बर	**श्वेताम्बर**
पिता-सिद्धार्थ	सिद्धार्थ
माता-प्रियकारिणी, त्रिशला।	त्रिशला
च्यवन तिथि	
आषाढ शुक्ल ६	वही आषाढ शुक्ल ६
जन्मतिथि-	
हरि. पु., उत्त. पु. और तिलो.आदि ग्रंथो में चैत्र शुक्ल १३ की दी है।	सत्त. द्वा. आदिग्रंथो में चैत्र शुक्ल १३ की दी हैं।
जन्मनक्षत्र-	
उत्तराफाल्गुनी	उत्तराफाल्गुनी
शरीरमान	
हरि. पु.तिलो. और उत्त. पु. में ७ हाथका हैं।	आव.नि., सप्ततिशत, आदि में ७ हाथ का और समवायांग ग्रंथ में ७ हाथ (रत्नी)का है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरि. पु., तिलो., उत्त पु. भगवान की कोमार्यावस्था ३० वर्ष की थी।	आव. नि. सत्त. द्वार. आदि में वही है।
राज्यकाल	
हरि. पु., तिलो. उत्त.पु. आदि में राज्यकाल का अभाव बताया है।	आव.नि., सत्त. द्वा आदि में वही है।
दीक्षातिथि :	
हरि. पु., तिलो., उत्त. पु. आदि में मार्गशीर्ष कृष्ण १० की है।	सत्त. आदि ग्रन्थों में भी वही है।
तीर्थंकरों के चैत्य वृक्ष सभी ग्रंथों में भगवान का चैत्य वृक्ष साल था, उसकी उंचाई ३२ धनुष्य की है।	वही सालवृक्ष और उस धनुष्य की उंचाई।
सभी ग्रंथों में प्रथम शिष्य इन्द्रभूति था।	
गणधर समुदाय -	
सभी ग्रंथो में ग्यारह संख्या है।	ग्यारह
प्रथम शिष्या-	
चंदनबाला	वही
साधु संख्या-१४०००	वही
साध्वी संख्या-सभी में ३६०००	वही
केवलज्ञानी	
सभी ग्रंथों में केवलज्ञान की संख्या ७०० थी	वही
मनः पर्यवज्ञानी	
सभी में ५००	वही
अवधिज्ञानी-१३००	वही
पूर्वधारी-	
भगवान के ३०० पूर्वधारी थे।	वही
वादी-सभी में ४००	वही
साधक जीवन-७२ वर्ष	वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्वाणतप- भगवान का निर्वाण तप वही
सभी में दो उपवास लिखा है।
निर्वाण नक्षत्र- सभी में स्वाति वही
निर्वाण स्थली-सभी ग्रंथों में पावापुरी
दी है।

(२) प्रमुख चरित्रों का चरित्र चित्रण

पुरुष पात्र (अ) सिद्धार्थ :-

भगवान महावीर संबंधी प्रबंधो में यद्यपि मुख्य पुरुष पात्र के रुप में महावीर ही प्रमुख हैं। तथापि उनके पिता व भाई का कथानक में उल्लेख मिलता है, अतः उनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया है। महावीर का जीवन यथार्थ रुपसे कुछ विस्तार से प्रस्तुत किया है।

गुणज्ञ राजा :

विदेह देश के मध्य में कुण्डलपुर नाम का अत्यन्त रममीय नगर है। उस नगरी के राजा सिद्धार्थ थे जो साक्षात् सूर्य से प्रतापी थे। अपने राज्य को सर्वभाँति समृद्ध बनाने में वे दत्तचित्त और निपुण थे। उनके राज्य में प्रजा सुखी थी। वे नीतिवान, प्रजाप्रेमी, सरल स्वभावी आदि गुणों से युक्त थे। प्रबंधों में कवियों ने राजा सिद्धार्थ के गुणों का सुंदर चित्रण किया है-

महाराजा श्री सिद्धारथजी थे काश्यगोत्रनाथ वंशी,
अति नीतिवान व धर्म वान क्षत्रिय कुल के थे अवतंशी[१]

***

यही यशस्वी हरि-वंश व्योम के
दिनेस सिद्धार्थ प्रदीप्तमान थे,
प्रसिद्ध वे भूपति सार्वभोम थे,
सतोगुणी थे, जिन-धर्म दूत थे।[२]

***

---

१. "त्रिशलानन्दन महावीर" : कवि हजारीलाल, पृ.२९
२. "वर्धमान" : कवि अनूपशर्मा, प्रथम सर्ग, पद-२८, पृ.४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महा विवेकी, शुभ-लश्रणाश्रयी,
कला-गुणाधार, अपार विक्रमी
प्रसंक्त थे वे व्रत-शील-ध्यान में,
अजस्त्र ही सम्यक दृष्टि-युक्त थे।[१]

प्रजा वत्सलता :

राजा को प्रजा के प्रति अटूट प्रेम था। वे प्रजा के सुख में सुखी और प्रजा के दुःख में दुःखी रहते थे। दीन-दुःखीजनों के आश्रयदाता थे। प्यासे को पानी देना, भूखे को भोजन देना, उसी में ही उन्हें आनन्द मिलता था। इसी प्रकार प्रजावत्सलता का गुण उनमें कूट-कूट के भरा था -

गृह में भी करते गौ सेवा, द्विजगण को भोजन देते।
सब भृत्यों को खिला पिलाकर शुचि आहार स्वयं लेते॥[२]

***

तथैव सर्वज्ञ न भूमि-पाल थे,
न जानते थे इतना कदापि वे,
नकार होती किस भाँति की, अहो।
अनाथ को, आश्रित को, अभाग्य को -[३]

***

उसी सभा में अहमिंद्र - से लसे,
नरेन्द्र थे, देख जिन्हें तुरन्त ही
न स्त्रंश होते रिपु-शास्त्र ही वरन्
दुःखी नरों को दुःख-दैव्य भागते॥[४]

***

---

१. ''वर्धमान'' : कवि अनूपशर्मा, प्रथम सर्ग, पद-२९, पृ.४२
२. भगवान महावीर : कवि शर्माजी, ''जन्मधाम'', द्वितीय सर्ग, पृ.१७
३. वर्धमान : कवि अनूपशर्मा, प्रथम सर्ग, पद-३७, पृ.४४
४. वही, पद-३४, पृ.४३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रेमी पति :

राजा सिद्धार्थ और रानी त्रिशला के प्रेमालाप का अद्वितीय चित्रण कवियों ने काव्य के अन्तर्गत किया है। वे रानी की इच्छाओं को पूर्ण करते थे। राजा अत्यन्त स्नेह से महारानी के स्वप्न की बात सुनते थे। इन सबका प्रेमपूर्ण स्नेहमयी वातावरण का सुंदर चित्रण कवियों ने काव्य में अंकित किया है -

त्रिशला। तुम सोती रही, मैंने देखे रुप।
सब रातों का चांद था, तेरा रुप अनूप। [१]

***

नृप समझ गये रानी का मन, लेकर घूमे उपवन-वन में।
देखी निसर्ग की छटा मंजु, पुलकित थे अपने तन मन में॥
नवकूंज निकुंज आमिंद सुवीथि, सुबाग तड़ाग सुकानन में।
प्रेयसि की जैसी अभिलाषा. सब पूर्ण करी सुख पा मनमें॥ [२]

वास्तसल्यपूर्ण पिता :

कवि गुप्तजी, शर्माजी आदि कवियों ने महाकाव्य में वात्सल्यमयी पिता का उत्तम चित्रण प्रस्तुत किया है। जिस समय प्रिया ने प्रियतम से रात्रि में देखे हुए स्वप्न की बात सुनाई जिसे सुनकर राजा का मन पितृत्व से भर गया और उल्लसित होकर नाचने लगे-

त्रिशला ने प्रियसे कहे, सारे सोलह स्वप्न।
नाच उठे सिद्धार्थ सुन, कहा प्राप्त सब रत्न॥ [३]

कविने पुत्र जन्म के समय की राजा के वात्सल्यपूर्ण भावों का सजीव चित्रण काव्य में चित्रित किया है-

नृपवर अतुलित सिद्धार्थ प्रफुल्लित हो होकर।
दान दक्षिणा पुण्य कर्म में, जुटे हुये थे सुधि बुधि खोकर॥ [४]

***

---

१. "वीरायण" : कवि मित्र, "जन्मज्योति", सर्ग-४, पृ.९४
२. भगवान महावीर : कवि शर्माजी, "दिव्य शक्ति अवतरण", सर्ग-३, पृ.२९
३. वीरायण कवि मित्रजी, "जन्मज्योति", सर्ग-४, पृ.९४
४. "भगवान महावीर", कवि शर्माजी, सर्ग-४, पृ.३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोद में सुत को बिठा प्रवीण
नृपति सिंहासन पर थे आसीन
निकट बेठी माता त्रिशला
दीप ज्यों बाती संग जला-[१]

राजकुमार वर्धमान की शादी के पश्चात् राजा सिद्धार्थ गृहस्थ जीवन का कर्तव्य पालनपूर्ण करके आत्मसाधना में लग जाते है। कविने माता त्रिशला और राजा सिद्धार्थ के आत्मचिंतम का सुंदर चित्रण काव्य में प्रस्तुत किया है -

अब तो कर्म शक्ति ही विदा हुई कबसे,
हाथपाँव भी हिला नहीं अब सकते थे।
तब कैसे घाती कर्मो का क्षय होगा-
कर्म-चक्र से कैसे वह बच सकते थे।[२]

***

इन्हीं विचारों में डूबे राजा रानी,
पलंग छोड नीचे धरती पर बैठ गये।
नयनों से अविरल जल-धारा बहती थी,
ध्यान-मग्न हो, अलग-अलग थे बैठ गये ॥[३]

***

(ब) नन्दीवर्धन :

माता त्रिशला के ज्येष्ठ पुत्र का नाम नन्दीवर्धन था। माता पिता का स्वर्गवास हुआ तब वर्धमान अठ्ठाईस वर्ष पूर्ण कर चूके थे। अब घर में पिता के पश्चात् वही वरिष्ठ थे। अतः जब बड़े भाई नन्दीवर्धन के समक्ष महावीर ने अपनी भावना प्रगट की तो नन्दीवर्धन डबडबाई आँखों से उनको निहारने लगे। उसी की करूणापूर्ण स्थिति का सुंदर वर्णन कवियों ने काव्य में किया है -

---

१. तीर्थंकर महावीर : कवि गुप्तजी, प्रथम सर्ग, पृ. २६
२. श्रमण भगवान महावीर : कवि अभयकुमार योधेय, तृतीयसोपान, पृ.१०९
३. वही, पृ.११०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द न मुखसे फूट रहे थे, कष्ट भर गया,
वर्धमान को बाहों में भर कर ली सिसकी।
सारी काया काँप रही थी, जोर जोर से,
तोड़-फोड़ भीतर को, निकलती बरबस हिंचकी ॥ [१]

भाई नन्दीवर्धन दुःखी स्वर में अनुज वर्धमान से बोले "बन्धु ! स्वजन अपने स्वजन के घाव पर कभी नमक नहीं छिड़कता। किन्तु मरहम पट्टी कर घाव को भरने की चेष्टा करता है। तुम्हारे जैसा समर्थ विवेकी एवं करूणाशील अनुज अग्रज के घावों को और गहरा करे-क्या यह उपयक्त है ? उधर माता-पिता के वियोग का दुःख, राज्य का गुरूत्तर उत्तरदायित्व और इधर तुम मुझे एकाकी छोड़कर जाना चाहते हो ? क्या मेरी स्थिति विकट नहीं बन जायेगी ? व्यवस्था चक्र गड़बड़ा जायेगा और चिन्ता तथा परेशानियों के पहाड़ मुझ पर टूट पडेंगे। जब तुम अट्ठाईस वर्ष माता-पिता की सेवा के लिए रुके रहे तो मेरे लिए भी कुछ नहीं रूक सकते ?"

अग्रज के शब्दों में टीस थी, जो वर्धमान के हृदय को बींध गई। उनकी वाणी अवरूद्ध हो गई। इसी भावना का स्पष्टीकरण कवि ने काव्य-शैली में सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है -

वर्धमान बोले फिर अपना शीश झुकाकर
आज्ञा मिलने पर ही आगे कदम धरूँगा।
किन्तु हृदय में जैसे कोई कोंच रहा है-
बीत रहे पलको में कैसे पकड़ सकूँगा ॥ [२]

वर्धमान ने अग्रज के वचन का स्वीकार करते हुए अपनी मनोभावना स्पष्ट की, "मैं आपकी भावना का आदर कर दो वर्ष तक घर में और रहूँगा, किन्तु गृहसम्बन्धी प्रवृत्तियों से बिलकुल दूर। घर में मेरा होना, न होना एक जैसा रहेगा। मेरे निमित्त कुछ भी आरम्भ-समारंभ न हो, मैं एकान्त साधना में ही अपना समय व्यतीत करूँगा।"

नन्दीवर्धन ने दबे स्वर से वर्धमान की शर्त स्वीकार कर ली, यह सोचकर कि घर में अनुज की उपस्थिति मात्र मुझे अपना कार्य सम्भालने में बल देती रहेगी।

प्रत्येक क्षण अप्रमाद और त्याग में बिताने का आग्रह रखनेवाले वर्धमान दो

---

१. श्रमण भगवान महावीर : कवि अभयकुमार योधेय, तृतीयसोपान, पृ.११७

२. वही, पृ.११९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष तक और गृहस्थ जीवन में रहेने को तैयार हो गये। इसमें भी महावीर की चिन्तनधारा का एक निर्मल रूप उजागर होता है। तीव्र वैराग्य-वृत्ति और संसार के प्रति उदासीनता होते हुए भी उन में भातृप्रेम व उदात्त व्यवहार दृष्टि भी थी। वीतरागता के नाम पर बड़ो का अनादर व अवज्ञा करना उन्हें पसन्द नहीं था। साथ ही विचारों की दृढता के नाम पर वे हठवाद को उचिन नहीं समझते थे। समय व परिस्थिति पर उचित निर्णय और व्यावहारिक समझौता करना उनकी सहज, सरल, मधुर जीवन दृष्टि का एक अंग था, यह इस घटना से स्पष्ट होता है। बड़े भैया की आज्ञा को शिरोधार्यकर दो वर्ष पूर्ण होने पर स्वयं नन्दीवर्धन ने वर्धमान के दीक्षा महोत्सव की तैयारी की।

***

प्रबंधो में नारीपात्र

(अ) सती चन्दनबाला :

चंदनबाला महावीर के भिक्षुणी संघ में अग्रगण्य थी। पदसे वह प्रवर्तिनी कहलाती थी। वह राजकन्या थी। उसका समग्र जीवन आरोह-अवरोह से भरा हुआ था। दासी का जीवन भी उसे जीना पड़ा। लोह-श्रृंखलाओं में भी वह आबद्ध रही, पर उसके जीवन का अन्तिम अध्याय एक महान भिक्षुणी संघ की संचारिका के गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित हुई।

सती चंदनबाला चम्पा के राजा दधिवाहन व धारीणी की इकलौती कन्या थी। उसके दो नाम थे-चंदनबाला और वसुमती। लाड़-प्यार में ही उसका शैशव बीता। वह रुप सौंदर्य की साक्षात प्रतिमूर्ति थी। कविने काव्य के अन्तर्गत चंदना के अतीव रमणीय व मनोहारी रुप का संरचना का सुंदर चित्रांकन किया है-

ज्योति थी मुख की दिव्य ललाम
चन्द्र पर घिर आये घनश्याम
बहु मादक था उसका रूप
भौंह थी तिरछी भव्य अनूप-
नेत्र थे जैसे खिले कमल ॥ [१]

***

---

१. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, चतुर्थ सर्ग, पृ.१५७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चंदना वह चेटक राजा की बहन थी।[१] कौशाम्बी के राजा शतानीक ने एक बार जल मार्ग से सेना लेकर बिना सूचित किये एक ही रात में चम्पा को घेर लिया। पूर्व सज्जा के अभाव में दधिवाहन की हार हुई। शतानीक के सैनिकों ने निर्भय होकर दो प्रहर तक चम्पा के नागरिकों को यथेच्छ लूँटा। एक रथिक राजमहलों में पहुँचा। वह रानी धारिणी और राजकुमारी चन्दबाला को अपने रथ में बैठाकर भाग निकला।

शतानीक विजयी होकर कौशाम्बी लौट आया। रथिक धारिणी और चंदनबाला को लेकर निर्जन अरण्य में पहुँच गया। वहाँ उसने रानी के साथ बलात्कार का प्रयत्न किया रानी ने उसे बहुत समजाया, किन्तु उसकी सविकार मनोभावना का परिष्कार न हो सका। जब वह मर्यादा का अतिक्रमण कर रानी की ओर बढ आया तो उसने अपनी सतीत्व की रक्षा के निमित्त जीभ खींचकर प्राणों की आहुति दे दी और रथिक की दुचेष्टा को विफल कर दिया।

रथिक कौशाम्बी लौट आया चंदनबाला को उसने एक दासी की भाँती बाजार में बेच दिया। पहले उसे एक वेश्याने खरीदा और वेश्या से धनवाह सेठने। चंदनबाला सेठके घर एक दासी की भाँती रहने लगी। उसका व्यवहार सबके साथ चंदन की तरह अतिशय शीतल था; अतः तब से उसका चंदना नाम अति विख्यात हुआ।

चंदनबाला प्रत्येक कार्य को अपनी चातुरी से विशेष आकर्षण बना देती। वह अतिशय श्रमशीला थी, अतः सब को ही भा गई। उसकी लोकप्रियता पर दास-दासी भी मुग्ध थे। पर सेठानी मूला को उसके लावण्य से डाह होने लगी। वह चंदना के प्रत्येक कार्य को घूर घूर कर देखती रहती थी, चंदनबाला ने उस और कभी ध्यान नहीं दिया। वह सेठ-सेठानी को माता-पिता ही मानती और उनके साथ एक दासी की भाँती रहती। चंदना के व्यवहार से पत्नी मूला को सेठजी के अनिष्ट संबंध की आशंका हुई।

उस नारी का मन विकल हुआ
सौतिया-डाह जागी मनमें।
चंदनबाला का रूप देख
थी जलन, प्रबल जागी मन में॥[२]

***

---

१. दिगंबर मतानुसार वह चेटक राजा की लड़की थी।

२. ''श्रमण भगवान महावीर'' : कवि योधेयजी, सोपान-७, पृ.२६८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेठ एक दिन किसी गाँव से यात्रा कर लौटा। दोपहर का समय हो चूका था। पद-यात्रा के श्रम से व भूख प्यास से वह अत्यंत कलान्त हो गया था। घर पहुँचते ही वह पैर धोने के लिए बैठा। चंदनबाला पानी लेकर आई। सेठ पैर धोने लगा और वह धूलाने लगी। चंदनबाला के केश सहसा भूमि पर बिखर पड़े। कीचड़ में वे सन न जाये, इस उद्देश्य से सेठने उन्हें उठाया और उसकी पीठ पर रख दिया। झरोखे में बैठी मूला की वक्र दृष्टि उस समय चंदनबाला और सेठ पर पड़ी। उसे अपनी आशंका सत्य रूप दिखाई दी। उसके शरीर में आग सी लग गई। उस क्षण से ही उसने चंदनबाला के विरूद्ध षड़यंत्र की योजना आरम्भ कर दी-

छोड़ती थी उरगी फूफकार
चंदना पर था वज्र पहार
अरे क्यों में हूँ व्यर्थ हताश
करू एसा उपाय हो नाश [१]

***

एक दिन अनायास ही व्यवसाय के लिए सेठजी को बाहर जाना पड़ा। मौका देख मूलाने चंदनबाला को पकड़ा और सिर मुंडनकर, पैरों को बेडी से जकड़ कर उसे तलघर में डाल दिया। घर बन्द कर स्वयं पीहर चली गई। इसी दारूण्य स्थिति का कवि ने काव्यों में सुंदर ढंग से चित्रण किया है :

तदनन्तर अबला बाला के,
पहनाई कडियाँ हाथों में।
फिर क्रूर भाव से बाँध जकड़,
धर दिया सूप उन हाथों में॥ [२]

***

धूंधराले काले केशों को, सेठानी ने कटवा डाला,
पैरों में बेड़ी हाथों में हथकडियों का बंधन डाला,

***

---

१. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-४, पृ.१६३
२. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, सप्तम् सोपान, पृ.२६९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खाने को कोदों तक न दिया कर दिया बन्द तहखाने में,
दासी ने समझाया भारी पर आई नहीं समझाने में, -[१]

***

वह भूखी-प्यासी पीड़ा में,
थी रह रह तड़प रही पल-पल।
अधरों पर पपड़ी जमी हुई, ।
पर, पास न था थोड़ा भी जल ।।[२]

***

अनायास एक दिन तीर्थंकर महावीर अनेक वन, ग्राम और नगरों में विचरण करते हुए कौशाम्बी नगरी में पहूँचे और वहाँ से निकटवर्ती वन में ध्यान करने चले गये। ध्यान मुद्रा से जागृत होते ही आहार के लिए नगरी में प्रवेश किया। प्रभु ने एक अति विकट अभिग्रह धारण किया-

''द्रव्य से उड़द के बाकुले हो, सूप के कोनें मे,
हो क्षेत्र से दाता का एक पैर देहली के अन्दर वह एक बाहर हो
कालसे भिक्षाचारी की अतिक्रान्त वेला हो,
भाव से राजकन्या हो, दासत्व प्राप्त हो, श्रृंखला-बद्ध हो,
सिर से मुण्डित हो, रूदन करती हो, तीन दीन की उपवासी हो,
ऐसे संयोग मुझे मिलेंगे तभी भिक्षा ग्रहण करूँगा,
अन्यथा छः मास तक मुझे भिक्षा नहिं लेना हैं।।''[३]

***

सती चंदनबाला ने सुनाकि भगवान महावीर नगरी में पधारे हैं। उनके मनमें भावना हुई कि मैं आहारदान दूँ, किन्तु वह तलघर की जेल में पड़ी थी, बेडियाँ उसके पावों में थी। वह चिन्ता में पड़ गयी। परंतु उसके पुण्य का उदय आया और उसकी भावना फली भूती हुई।[४] ठीक भी है -''यादृशी भावना यस्य सिद्धि र्भवति तादृशी। संयोग से मुनिराज उधर ही आ गये। चंदना के बन्धन टूट गये और उसने शुद्धिपूर्वक

१. ''त्रिशलानंदन महावीर'', कवि हजारीलाल, पृ.६४
२. ''श्रमण भगवान महावीर'', कवि योधेयजी, सोपान-७, पृ.२६९
३. वही, पृ.२७२
४. आवश्यक चूर्णि, प्रथम भाग, पत्र ३१६-३१७, आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरिवृत्ति, पत्र सं.२९४-२९५, श्री कल्प सूत्रार्थ प्रबोधिनी पृ.१५४ दिगम्बर मतानुसार कौदे चावल (बासी चावल) प्रभु को आहार में दिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवधा भक्ति से प्रभु को आहार दिया। सती चंदना के सतीत्व में अन्ततः अपना प्रभाव दिखलाया। उसे तीर्थंकर महावीर भगवान को आहार देने का सुयोग मिला और उसके शील की प्रशंसा हुई। नभ से रत्न-वृष्टि हुई -

बज उठे वाद्य, तत्काल तभी, रत्नो की वर्षा हुई वहाँ।
उस सेठ धनावह के घर पर सोने की वर्षा हुई वहाँ॥ [१]

***

कई महिनों से शुद्ध आहार के लिए घूमते हुए आज चंदना के हाथों से आहार ग्रहण करने का सुयोग प्राप्त हुआ। सारा नगर सती चंदना की जय-जयकार से गूँज उठा। लोगों ने उसकी प्रशंसा की और उसे सम्मान दिया।

अभागिन चंदना आज धन्यवाद के पात्र बन गई। उसने तपस्वी महावीर को आहार दिया। उसकी दासता की बेडियाँ कट गई, उसका उद्धार हो गया। सेठानी चंदना सती के पैरों में गिरकर अपने दुर्भावों की क्षमायाचना करने लगी।

कवि ने इस वार्तालाप का नाटकीय चित्रण किया है -

चन्दा सती के सेठानी, पग छूकर बोली, क्षमा करो।
चंदना लिपट सेठानी से, बोली दीदी मत नयन भरो,
तुम बड़ी बहिन मैं छोटी हूँ, मुझको भी पीड़ा हरने दो,
मेरी पीड़ा हर ली प्रभुने, मुझको भी पीड़ा हरने दो॥ [२]

***

सती चंदना ने मूला सेठानी से मीठी मधुर वाणी में कहा, हे ! दीदी, जो कुछ मिला है तुम्हारे आशीर्वाद से। यह कृपा बेडियों की है कि प्रभुने मेरे घर आँगन में पधारकर आहार लेकर मुझे कृतार्थ किया-

जो कुछ भी मुझको मिला, सब आशीर्वाद तुम्हारा है।
यह कृपा बेडियों की ही है, जो प्रभुने मुझे दुलारा है।
तलघर से आत्म ज्ञान पाया, तलघर से सम्यक् भाव मिले।
जिनकी सुगंध जगमें फैली, बन्दीगृह में वे फूल खिले॥ [३]

***

१. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, सप्तम् सोपान, पृ.२७२
२. "वीरायण" : कवि रघुवीर शरण मित्र, सर्ग-१३, पृ.३१९
३. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सती चंदना मूला माँ को सच्चे ज्ञान का स्वरूप देकर समझाती है- हे माँ ! यह अद्भूत कृपा तुम्हारी है। जीव को सुख-दुःख देने वाला अन्य कोई नहीं है। जैसे इस जीवने पूर्व जन्म में कर्म किये है; वैसे ही फल इसे भोगने पडेंगे। अन्य तो निमित्त मात्र होते हैं। सती चंदना की उदारता एवं प्रभाव के सामने सेठानी द्रवित हो गयी। उसने बारंबार चंदना को सराहा।

वे स्त्रियाँ धन्य है, जिन्होने शील रूपी आभूषण की सुरक्षा की। वास्तव में स्त्री जाती में शील का होना परमावश्यक है। जैसे पुरुष ब्रह्मचर्य के प्रभाव से देवों द्वारा पूज्य हो सकता है, वैसे नारी शील के प्रभाव से त्रैलोक्य वन्द्य हो सकती है। समता मूर्ति चंदना के आदर्श शील ने उसे उँचा उठा दिया। वह देवों द्वारा भी पूज्य हुई और भगवान महावीर की प्रथम शिष्या बनने का सुयोग प्राप्त कर सकी।

(ब) माता त्रिशला :

रानी त्रिशला महाराजा चेटक की बहिन थी,[१] जो स्त्रियों की ६४ कलाओं में निपुण थी, जिसका सरस्वती के समान सौन्दर्य था। वह सर्वगुण संपन्न एवं रूप लावण्य से युक्त थी। नाम था उसका त्रिशला। चेटक राजा ने उसका विवाह कुण्डग्राम के महाराजा सिद्धार्थ के साथ कर दिया।

सिद्धार्थ का जीवन भी गुणों से समलंकृत था। वह भी जाति से क्षत्रिय था। केवल तलवार का धनी एवं पशुबल का पुजारी ही नहीं, बल्कि अहिंसा एवं सत्य का भी उपासक था। वे धर्म और कर्म दोनों कलाओं में पारंगत थे। वे भगवान पार्श्वनाथ के श्रावक (उपासक) थे। अहिंसा, सत्य आदि आत्म शक्तियों पर उनका अटल विश्वास था। राजकुमारी त्रिशला की शादी राजा सिद्धार्थ के साथ हुई। रानी त्रिशला ने कुण्डपुर गाँव में चरण रखते ही प्रकृति उनके अनुकूल ही बन गई, उसी का अद्वितीय चित्र कविने काव्य में खींचा है। जैसे-

त्रिशला आई वर्षा आई, प्यासी मिट्टी की बुझी प्यास।
खेतियाँ बहूँ के स्वागत में, गा गा कर करने लगी रास॥[२]
त्रिशला ने जब गऊ ग्रास दिये, गउओं के थन से चुआ दूध।
पीते पीते छक गये सभी, भारत में इतना हुआ दूध॥[३]

***

१. दिगम्बर के मतानुसार त्रिशला राजा चेटक की लड़की थी।
२-३. "वीरायण", कवि मित्रजी, "जन्मज्योति", सर्ग-४, पृ.८९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजा और रानी दोनों ही आनंद-उल्लास के साथ दाम्पत्य जीवन यापन कर रहे थे। एक दिन शयन कक्ष में दोनों जन सुख की शैया में सो रहे थे। रात दो पहर बीत चुकी थी। महारानी त्रिशला अर्धसुषुप्त अवस्था में सुंदर एवं सुहावने चौदह स्वप्न देखती है।[१] जो शुभ घड़ी के पूर्व सूचक हैं। श्री कल्पसुत्र में इन चौदह स्वप्नों का मनमोहक वर्णन पढकर अतिशय आनंद होता है। ये स्वप्न दिव्यात्मा के जन्म का पूर्व संकेत है। जिस प्रकार सुखद वर्षा के पूर्व शीतल पवन का झोंका आता है उसी प्रकार ये स्वप्न आनेवाले मंगल की सूचना देते हैं।

रानी त्रिशलाने राजा सिद्धार्थ से रात्रिमें देखे हुए शुभ स्वप्नों का वर्णन किया। उनको सुन कर राजा अत्यंत प्रसन्न हुए। स्वप्न पाठकों को बुलाया गया उनके मुँह से मंगलकारी फल सुनकर राजा-रानी एवं राजसभा हर्ष से खिल उठी जिस प्रकार कि रवि किरणों से पुष्प वाटिका खिल जाती है। समस्त राजकुल भावी मंगल की शुभ कल्पना से पुलकित हो गया। कवि ''मित्रजी'' ने काव्य के अन्तर्गत जन्म से पूर्व का आह्लादकारी रूप का अद्भूत चित्रण अंकित किया है।

वैशाली में दिवाली थी, लद गये वृक्ष फल फूलों से।
बालक भर भर कर लाते थे, मोती कूंडो के फूलों से॥
दृग गिरा हीन गूंगे मधुकर, रस लेते थे कहते कैसे।
जो वसुकुंड में सुख देखे, न अभी तक फिर वैसे॥[२]

***

अनायास ही दिव्य ज्योति का अवतरण होते ही सर्वत्र प्रकाश फैल गया। यह प्रकाश पशु-पक्षी, जलचर, नभचर, थलचर, नारकी, मानव एवं देव समस्त प्राणियों को छूकर उनमें आशा की ज्योति जगाने लगा। दिव्य सौरभ से पुलकित होकर वायु मन्द गति से बहने लगी। वृक्ष फलों से लदकर हर्ष प्रकट करने लगे। आकाश में मधुर वाजित्रों की रसीली झनकार गूँजने लगी। प्रकृति नृत्यांगना का रूप धरकर मानों झम झम नाच रही हो। ऐसा अनुपम प्रकाश, ऐसा मधुर संगीत, ऐसा असीम आनंद दिव्यात्मा को जन्म का संकेत था।

---

१. जैन परंपरा में माना गया है कि जब तीर्थंकर और चक्रवर्ती की महानआत्मा किसी भाग्यशालिनी माताके गर्भ में आती है तो माता चौदह महा शुभ स्वप्न देखती है। दिगंबर परंपरा में १६ स्वप्नों का वर्णन है।

२. ''वीरायण'' : कवि मित्रजी, ''जन्मज्योति'', चतुर्थ सर्ग, पृ.९६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि अपनी इच्छा को व्यक्त करते हुए लिखते है कि दिव्यात्मा के जन्मोत्सव का वर्णन करने के लिए मैं अल्पमति उस प्रकाश को ढूँढ रहा हूँ। अहा, वह अमर प्रकाश ! उस प्रकाश को नेत्रों में रमाकर, हृदय में बसाकर, रोम रोम में भरकर मैं कुछ लिख सकूँगा। हे वीणावादिनी ! हे माता सरस्वती ! तुझसे मैं वह प्रकाश माँग रहा हूँ तू ही मेरी अभिलाषा पूर्ण कर सकती है। मेरी लिखनी उस प्रकाश को पाकर जन्मोत्सव का मधुर नैवेद्य प्रभु चरणों में चढाना चाहते हैं।

मातृभक्ति :

त्रिशला की गर्भावस्था के लगभग साढे छः मास ही बीते होगें कि एक बड़ा ही विचित्र प्रसंग घटित हुआ। एक दिन अचानक गर्भस्था शिशुका हलन-चलन व स्पंदन बन्द हो गया। किन्तु माता के मन पर उसका प्रतिकुल प्रभाव पड़ा। उसे भयानक अपशुकन लगा और वह मौहाकुल हो विलाप करने लगी। माता का विलाप और शोक पुत्र से देखा नहीं गया। सोचा, कहीं लाभ के बदले हानि न हो जाय, प्रतिकुल स्थिति में अमृत भी जहर का काम कर जाता है। अतः पुनः हलनचलन प्रारंभ कर दिया।

माता के करुण विलाप से शिशु महावीर के मन पर यह प्रभाव हुआ। वे सोचने लगे -"मेरे कुछ क्षण के वियोग की आशंका से ही माँ का यह हृदय जब इस प्रकार तड़पने लगा और हाहाकार करने लगा है तो मैं जब बड़ा होकर प्रव्रजित होऊँगा तो माँ के मनकी क्या स्थिति होगी ? माता को कितनी असह्य पीड़ा और कितना दारूण संताप होगा ? माता के हृदय को यों तडपाना क्या उचित होगा।" मातृस्नेह से आहलादित महावीर नें संकल्प कर लिया-"जब तक माता पिता जीवित रहेंगे, मैं उनकी सेवा करूँगा, इनकी आँखो के सामने गृहत्याग कर श्रमण नहीं बनूँगा।"[१]

वात्सल्य :

कवियोने वात्सल्य मनोभावों काअद्भूत चित्रण काव्य में चित्रित किया है। उनके वात्सल्यमय चित्रण में ममतामयी माता के स्नेहपूर्ण हृदय की व्याकुलता और औत्सुक्य की व्यंजना सुंदर रूप में प्रस्तुत की है। माता त्रिशला पुत्र को पालने में झुलाती, दुलाराती और लोरियाँ सुनाती थी। बालक की शारीरिक चेष्टाओं को देखकर भीतर ही भीतर एक नया ही आनंद अनुभव करती थी। बालक वर्धमान जब नन्हें नन्हें पावों से डगमगाकर चलता तब सभी आनंद मग्न हो जाते। कविने उन की अंगोपांग की

१. (क) कल्पसूत्र-८७ (ख) त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र पर्व-१०, सर्ग-२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रीडाओं का काल्पनिक सजीव चित्रण किया है-

शिशु कभी गोद में हँसता था, गोदी से कभी निकलता था।
उपर को कभी उछलता था, शैया से कभी फिसलता था॥
जो आती यह शिशु को लेती, हर माता के सुख देता था।
वह सुधा सभी को देता था, वह भेंट प्रेम की लेता था॥ [१]

***

आते थे मुस्कान छोड़ते
घुटरुन चलकर पास,
माता त्रिशला का बढता था
देख-देख उल्लास। [२]

बालक के छोटे चरण, छोटे हाथ एवं सुंदर मुख ऐसे लगते थे मानो अरुण कुसुम खिले हों। और जब उन अंगो का प्रतिबिंब स्फटिक आंगन में पड़ता तब तो स्वच्छ सरोवर में खिले हुए लाल कमलों का दृश्य उपस्थित हो जाता। जब बालक अपनी परछाई को दर्पण या स्फटिक आंगनमें देखकर उसे पकड़ने की चेष्टा करता तो माता त्रिशला अपने लाल को हर्ष विभोर होकर गोद में ले लेती झूलेमें आँखें खोलकर जब वह देखता तो ऐसा लगता कि कोई दिव्य तारा आकाश से धरती पर उतर गया हो। कोई उसे प्यार से उछालते, कोई गोदमें लेते, कोई मेवा मिठाई खिलाते। बालक की सरलता सब को मोहित करती। उसकी सहज हँसी दुःख मुक्त कर देती। उसकी तोतली बोली बड़ी मीठी लगती। शिशु वर्धमान सबका स्नेह पात्र था। सब का नयन तारा था। वास्तव में कवि गण काव्य के अंतर्गत बालक की चेष्टाओं का एवं वात्सल्य का चित्रण करने में खरे उतरे हैं। [३]

---

१. "वीरायण" : कवि मित्र, "जन्मज्योति", सर्ग-४, पृ.१०५

२. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्त, सर्ग-१, पृ.२८.

३. सामान्य लोक-व्यवहारकी दृष्टि से गर्भस्थ शिशुका चिंतन और आचरण इतना विकसित हो पाना कठिन व असंगत लग सकता है, किन्तु हमें भूल नहीं जाना है कि महावीर एक लोकोत्तर पुरुष के रुप में अवतरित हुए। गर्भदशामां उन्हें तीन ज्ञान-मति ज्ञान, श्रुत एवं अवधिज्ञान प्राप्त थे। उनके जीवन की अगणित अलौकिक घटनाओं की कड़ीमें ही यह घटना जुड़ी हुई है। दिगंबर परंपरा इस घटना पर सर्वथा मौन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यौवन के द्वार पर पहुँचते वर्धमान महावीर गंभीर चिंतक साथ ही शान्ति समता एवं करूणा की सजीव मूर्ति के रूप में समाज में चमक उठे थे। माता-पिता ने महावीर के विवाह का विचार किया। वे चाहते थे कि वर्धमान की यह अति गंभीरता और अति शान्तप्रियता टूटनी चाहिए और इसका सहज मनोवैज्ञानिक उपाय है विवाह। यौवन का स्वतंत्र उपभोग। वे भूल गये थे, वर्धमान इसी जन्म में वीतराग तीर्थंकर बनने वाले हैं, उनकी वृत्ति में न मोह है न राग, न भोग की आकांक्षा और न किसी प्रकार का भौतिक आकर्षण। उनके अन्दर तो अनंत करूणा, निस्पृहता, वैराग्य, असीम समता का सागर लहरा रहा है।

त्रिशला ने जब महावीर की आध्यात्मिक जागृति का संवाद सुना तो उनका मातृत्व मचल उठा। ममता उतावली हो उठी और उसके मनःप्राण शून्य हो गये। वह सोचने लगी-राजसी वैभव में पला मेरा लाड़ला बीहड़ वन पर्वतों में किस प्रकार विचरण करेगा ? ग्रीष्म के कड़े संताप को कैसे सहन करेगा ? जिसने आजतक मखमल को छोडकर नंगी भूमि पर चरण भी नहीं रखा, वह कंटाकाकीर्ण भूमि में किस प्रकार गमन करेगा ? शीत ऋतुमें सरिता तटों पर कैसे विचरण करेगा ? जब मूसलधार वर्षा होगी तब किस प्रकार खुले आकाश में साधना कर सकेगा ? कवि माँ की अंतःकरण की वेदना को व्यक्त करते हुए काव्य में लिखते है कि-

जब घहरायेंगे नभ में
वर्षा के बादल
तम फैल रहा गहरा
भू पर काला काजल।[१]

***

तू सिसक उठेगा देख
हाय हो विकल मना
भू पर उतरेगी छाँह
व्यथा की पीर घना।[२]

***

---

१. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, तृतीयसर्ग, पृ.११४
२. वही, पृ.११४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहाँ तो मेरे पुत्र की सुकुमारता और कोमलता, और कहाँ कंकरीली कठोर धरती ? तप्त शिलाखण्डों पर बैठकर आत्म चिंतन करना, क्या सुकुमार महावीर से संभव होगा ? हाथियों की चिंघाड़, सिंहों की गर्जना, एवं सर्पो के उत्कट फूत्कारों को यह कैसे सहन कर सकेगा ? मेरा हृदय आशंका से दहल रहा है और मेरा रोम-रोम कांप रहा है।

माता त्रिशला की विचारधारा में मोह की तीव्रता बढ़ी। उसकी सोचने की तीव्रता ने उन्हें मूर्च्छित कर दिया। जब त्रिशला की मूर्च्छा टूटी। चेतना के लौटते ही पुत्र वात्सल्य उमड़ पड़ा। उन्हें सारा संसार रुक्ष, कर्कश और कठोर प्रतीत हुआ। सारा दृश्य मर्मस्पर्शी था। माता लड़खड़ाती हुई उठी और संतप्त हृदय से महावीर तो ढूँढने लगी। महावीर को दृढ संकल्प से वैराग्य के प्रति कटिबद्ध हो चूके थे। उनके अंतरंग में वीतरागता की उन्ताल तरंगे उठ रही थी और यह संसार उन्हें स्वार्थो का जलता हुआ पुञ्ज दिखाई पड़ रहा था।

इन्द्र को अवधिज्ञान से तीर्थंकर महावीर की विरक्ति का समाचार ज्ञात हुआ। वह उल्लसित होकर शीघ्र ही कुण्डग्राम आ पहुँचा और कई प्रकार से हर्षोत्सवों का आयोजन किया। देव विभिन्न प्रकार से उत्सवों का आयोजन करते हुए महावीर के वैराग्य की श्लाधा करने लगे। आगत देवों ने माता त्रिशला को विह्वल देखा तो वे मातृ हृदय की प्रशंसा करते हुए सांत्वना के स्वर में कहने लगे,

''जननी होकर भी जान न पाई तुम बोले
तुम धन्य कि सुत की ममता के बन्धन खोले ॥[१]

***

माँ करो मोह का त्याग धर्म का हो साधन
केवल विरक्त ही करते रहते आराधन ॥''[२]

***

''जगदम्बे ! तीर्थंकर की माता होकर आपने महान पुण्य अर्जित किया है। आपका पुत्र परम तेजस्वी और विश्व का कल्याणकारक है। आप इतना विलाप क्यों करती है ? चिन्ता छोड़िये। शीत, आतप और वर्षा का कष्ट सहन करने का उसमें अपूर्व सामर्थ्य है। वे धीरज के धनी हैं और समस्त उदात्त गुणों से सम्पन्न है। तुम्हारी कुक्षि धन्य

---

१. ''तीर्थंकर महावीर'' : कवि गुप्तजी, तृतीयसर्ग, पृ.११७

२. वही, पृ.११९

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

है। तुमने एक लोकोद्धारक विभूति को जन्म दिया है। संसार शताब्दियों तक तुम्हारी चरण वंदना करेगा। देवि ! तुम्हारे समान सौभाग्यशाली नारियाँ कितनी है ? अतएव वास्तविक परिस्थिति को ज्ञात कर शान्त हो जाइये।''

देवों की इस सांत्वनापद वाणी को सुनकर माता का मन कुछ शांत हुआ। फिर भी पुत्र-वियोग की कल्पना इन क्षणों में भी उन्हें विह्वल बनाती रही। उन्हें विश्वास नहीं होता था कि उसका लाड़ला महावीर वन की उन भयावनी स्थितियों का सामना कर सकेगा ? राजसी वातावरण में पालित-पोषित और सम्बर्धित महावीर तपश्चर्या में होनेवाले कष्टों को सहन कर सकेगा ? इधर त्रिशला का मातृत्व उसे विह्वल कर रहा था। आँखों में सावन-भादों के बादल घिरे हुए थे। मन ममता मे उबल रहा था और उधर महावीर की दीक्षा कल्याणककी तैयारी हो रही थी। देवों ने विलखते हुए मातृत्व को सांत्वना दी और महावीर की शक्तियों का परिज्ञान कराया।

श्वेतांबर मतानुसार लिखे गये काव्य के अन्तर्गत भगवान महावीर के माता-पिता का स्वर्गवास होने के दो वर्ष पश्चात् भगवान ने दीक्षा ग्रहण की। उनके माता-पिता ने अंतिम समय में चतुर्विध आहार का त्यागकर संल्लेखना ग्रहण की ऐसा उल्लेख है। [१]

(क) यशोदा :

भगवान महावीर का पाणिग्रहण महासामन्त समवीर की कन्या यशोदा के साथ हुआ। [२] उनका रूप अत्यंत सुंदर था, धर्म एवं राजनीति का उन्हें उचित ज्ञान था। वर्धमान कुमार के लिए सब प्रकार से राजकुमारी यशोदा योग्य थी। यद्यपि राजकुमार वर्धमान को शादी की इच्छा नहीं थी पर माता का बार बार आग्रह होने पर उनके कोमल हृदय को किसी प्रकार से ठेस न पहुँचे। अतः विवाह को तैयार हुए। उनके मनमें दीक्षा से अधिक माता-पिता की सेवा का महत्व था। उनको गर्भावस्थासे अवगत था कि माँ का मेरे प्रति अधिक स्नेह रहेगा। अतः उनके जीवित रहते में दीक्षा ग्रहण नहीं करूँगा, ऐसी प्रतिज्ञा माता के गर्भ में ही ले चुके थे। माता की ऐसी परिस्थिति को जानकर दीक्षा के आग्रह की डोर उन्होने ढीली छोड़ दी। वे मौन हो गये। इस मौन को स्वीकृति मानकर माता त्रिशला ने धूमधाम से राजकुमार वर्धमान का विवाह यशोदा से कर दिया।

१. दि. परंपरा के कुछ काव्य ग्रंथोमें वर्धमान की प्रव्रज्या के समय माता पिता के जीवित होने तथा त्रिशला के करूण विलाप का काव्यात्मक चित्रांकन किया गया है-कवि गुप्त, मित्र, और सकलकीर्तिके काव्यों में वर्णित है। श्वे. मतानुसार माता-पिताके स्वर्गवास के बाद महावीरने दीक्षाग्रहण की।

२. दि. परंपरा के आचार्यों ने महावीर के विवाह सम्बन्ध का निषेध करके उन्हें आ जन्म ब्रह्मचारी बताया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवाह के पश्चात् यशोदा ने स्वयं को महावीर के प्रति सर्वथा समर्पित ही नहीं कर दिया किन्तु उनकी धर्म साधना में सदा सर्वात्म भाव से सहयोग दिया और नारी पुरूष की धर्म-सहायिका होती है, इस तथ्य को प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिया। समय पर एक पुत्री का जन्म हुआ, जिसका नाम प्रियदर्शना रखा गया। शिक्षा-दिक्षा पूर्ण करने के पश्चात् प्रियदर्शना का विवाह उसी नगर के क्षत्रियकुमार जमालि के साथ कर दिया गया। सांसारिक प्रवृत्तियों से निवृत्त होकर पत्नी, बन्धु आदि परिवारजनों से आज्ञा लेकर महावीर ने गृहत्याग का निर्णय किया।

यशोदा का विरह :

पतिदेव का निर्णय सुनकर रानी यशोदा मूर्च्छित हो गयी। कवियों ने महाकाव्यों में यशोदा के विरह का चित्रण बड़े ही सजीव रूप से अंकित किया है। जिस समय यशोदा ने प्रियतम महावीर का प्रव्रज्या का प्रस्ताव सुना तो वह अपनी प्रिय पुत्री प्रियदर्शना के साथ आ पहुँची और विनत स्वर में बोली, ''आर्य, आप आज किसी गंभीर विचार में लीन हैं ? पर क्या अभी आपने प्रव्रज्या-ग्रहण के दीर्घ विचारों को छोड़ा नहीं है ? नाथ ! यह कैसे हो सकता है कि आप हमें छोड़कर चले जायें ? शशि के बिना निशा कैसे सुशोभित हो सकती ? आपका जानेका विचार ही हमें व्याकुल बनाये डालता है। राजकुमारी यशोदा दुःखी स्वर में अपने भावों को व्यक्त करती हुई कहती है-

नाथ आपकी मैं अर्द्धांगिन।
कैसे दूर करोगे स्वामी, अंग अंग में अंगिन ॥
मेरी साँस साँस में तुम हो, हर धडकन में बसे हुए।
तन की वीणा प्रणय नाद में, तार तार में कैसे हुए ॥ [१]

***

स्वामी, आप चले गये तो हमारी क्या दशा होगी ? जल के अभाव में होनेवाली वेदना का अनुभव मछली ही कर सकती है और इधर नन्ही सी प्रियदर्शना भी अपने पिता के उत्तरीय वस्त्र के पल्ले को पकड़कर सहज ही बाल भाषा में कहती है-''मैं कभी न जाने दूँगी, आपको। इधर राजकुमारी यशोदा पल पल में अनेक प्रश्नों को उभारती हुई मन ही मन में सोचती है-''

---

१. ''भगवान महावीर'' : कवि शर्माजी, ''यशोदाविरह'', सर्ग-१५, पृ.१६३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसे ही जाना था तजकर
तो क्यों मुझको ले लाए ?
तो क्या मेरे अन्तर्मन में
टीस जगाने को लाए ? [१]

***

मेरे लिए महल का जीवन,
शूल भरा है पीड़ा-स्थल।
बिन स्वामी के नरक तुल्य है,
नागों का है क्रीडा-स्थल ॥ [२]

***

भगवान महावीर मौन मुद्रा को भंग करते हुए शांत और गंभीर स्वर में बोले- "देवी ! तुम क्यों व्यर्थ ही चिन्ता करती हो ? तुम्हें संसार में किस वस्तु की कमी है ? मैं अपनी स्मृति के रूप में प्रियदर्शना को तुम्हें सौंप ही चला हूँ। मुझे अब अपना काम करने दो। मोह, माया और ममता के बन्धन मुझे अप्रिय लगते हैं, खलते हैं। मुझे इन्हें तोड़ना है और भला यह सब प्रव्रजित हुये बिना कैसे संभव हो सकता है ?"

दीक्षा ग्रहण के पश्चात् प्रभु को विहार के लिए उद्यत देख, प्रिय यशोदा और जनता के दिलों को उदासीनता ने घेर लिया। प्रभु के विरह का अनुभव कर यशोदा शोक-सिन्धु में डूबने-उतराने लगी। कवि गुप्तजी, योधेयजी तथा शर्माजी सभी कवियों ने यशोदा की विरह वेदना का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है-

पल पल काट रही हूँ जैसे जल बिन मीन तडपती है।
चकवी जैसे रात-रात भर प्रिय से बिछुड़ कलपती है ॥
कौन समझता, किसका दुःख है, जिस पर बीती वही जानता।
औरों का उपहास सरल है, स्वयं भोगता, तभी मानता ॥ [३]

***

---

१. "श्रमण भगवान महावीर", कवि योधेयजी, विदा की वेला, सोपान-३, पृ.१२५
२. वही, पृ.१२६
३. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "यशोदा विरह", सर्ग-१५, पृ.१६४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यशोदा की आँखों से आँसूओं की वेगवती धारा प्रवाहित हो रही थी। सर्वत्र जनता में निराशा छा गयी थी। उधर विस्तृत राज-पाट सब को ठुकराकर स्व-पर कल्याण के लिए संयम तथा तपस्या के महा पथ पर दृढता के साथ महावीर ने अपने कदम आगे बढाये।

इधर विरहिणी यशोदा प्रिय के विरह में छटपटा रही है, हे नाथ ! मैं जिधर देखती हूँ उधर आपका रूप कण कण में दिखाई देता है। हर पदार्थ में आपकी यश की सुवास निहित है-

जिधर देखती, रूप आपका, कण कण में ही वास है।
फूल-फूल में नाथ, आप के यश की परम सुवास है ॥
अनिल उर्मि स्पर्श आपका, निर्झर कल-कल वाणी।
हर विकास में स्मित प्रभु की, जग सुखकर कल्याणी ॥[१]

***

एकान्त में वह निर्जन प्रकृति के शान्त रूप को निहारती है। उन्हें झील में प्रियतम की परछाई एवं नभशशि-तारा सभी में प्रियतम का प्रतिबिंब दिखाई देता है। उनके नाम मात्र के उच्चारण से दुष्कर से दुष्कर कष्ट भी समाप्त हो जाता हैं। कभी अपनी प्रियदर्शना को संबोधित करती हुई अतीत की स्मृति में खो जाती है, और कहती है, ''हे बेटी ! प्रभु के गुण गाले। तेरे पिता जग के हित सूर्य बने हैं। उसी उपलक्ष में प्रभु के मंगल पर्व हम सब मिलकर मनालें।'' कभी सखी को कहती है, '' हे सखि ! मेरे सुखद स्वप्न प्रिय के साथ चले गये, गुड्डी मैंन नभ में तनी थी, वह शिथिल हाथ रूपी डोर से कट गयी, और देख, वह चन्द्र के साथ भी कला लगी है। मैं ऐसी हत भागिनी हूँ कि मुझे नाथ छोडकर चले गये। '' कवि शर्माजी ने यशोदा विलाप का दृश्य बड़े ही करूण रूप से व्यक्त किया है-

हाय सखी ! कैसे कहूँ ? सुखद स्वप्न प्रिय साथ।
गुड़ी तनी नभ में कटी, शिथिल डोर है हाथ ॥
देखों री चन्द्र है, कला लगी है साथ।
मैं एसी हत भागिनी, त्याग गये हैं नाथ ॥[२]

***

---

१. ''भगवान महावीर'' : कवि शर्माजी, ''यशोदा विरह'', सर्ग-१५, पृ.१६३
२. वही, पृ.१६३ से १६४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे स्वामी ! मुझे दर्शन कब देओगे ? मैं विरह के अगाध समुद्र में डुबी हुई हूँ। आप कब तक आकर पार उतारोगे ? जल बिन मछली का तडपना, चक्रवा के बिना चक्रवी का रातभर वियोग में क्रंदन करना एक स्वयं की अनुभूति है। स्वयं का दुःख स्वयं वैसे ही जान सकता है जैसे व्यक्ति पैर की बिबाई फटने पर ही पीड़ा का अनुभव किया जा सकता है।

हे सखि ! मैं तेरे पैर पड़ती हूँ बिना पिता की गोद पुत्री को उज़ड़ी उज़ड़ी दिखाई देती है। बिना वृक्ष की बेल की तरह मुझ अभागिन की स्थिति ऐसी है, जैसे पिंजड़े में पड़ी हुई पक्षिणी। अपनी व्यथा कहना असंभव है-

औरों का उपहास सरल है, स्वयं भोगता तभी मानता।
फटी नहीं हो पैर बिबाई, नहीं जानता पीर पराई ॥ [१]
पिंजड़े में हो बंध पक्षिणी, व्यथा नहीं कह पाती।
चुप चुप रोती है उर में ही, बिना तेल के ज्यों बाती। [२]

***

कभी अनिल से प्रिय का संदेश लाने को कहती है तो कभी नभ की परि से। है चंद्रमा ! यहाँ क्यों चमकता है। जहाँ मेरे देव है वहाँ जाकर प्रकाश कर। अपनी व्यथा को सभी को अलग-अलग कहती हुई अपने प्रियतम का संदेश पूछती है। हे प्रभु ! मैं नारी आपको भूल नहीं सकती। मैं आपके लिए प्रतिदिन यही मंगल कामना करती हूँ कि आपका तप सफल हो और सबका कल्याण हो। आप तपस्या की अग्नि में तपकर सबकी जलन दूर करेंगे।

कविने यशोदा की विहर वेदना का वर्णन किया है वह लौकिक न होकर अलौकिक प्रेम है, क्योंकि महावीर साधारण पुरूष नहीं थे और उनके साथ सम्बन्ध नारी सामान्य नहीं थी। यशोदा को महापुण्योदय से भगवान की प्रिया बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। यशोदा के भगवान के प्रति अनुनय विनय में उनके अन्तर की निश्चल और अलौकिक भावना प्रकट होती है। वह अपने प्रियतम को किसी न किसी प्रकार प्राप्त करना चाहती है। प्रकृति के प्रत्येक कण-कण में उसे खोजने का प्रयास करती है,-

---

१. ''भगवान महावीर'' : कवि शर्माजी, ''यशोदा विरह'', सर्ग-१५ पृ.१६४
२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अरि अनिल परदेश से आई है गतिमान।
कह प्रिय का संदेश कुछ, कुशल क्षेम भगवान।[१]

***

जारी नभ की परी प्रिय से कह संदेश।
गौरी अब काली पड़ी, बसे कौन से देश॥[२]

***

किन्तु प्रिय के न मिलने पर आशा नहीं टूटती है। वह सोचती है अनायस ही कभी फूल खिल उठेंगे। कविका कहना है कि वेदना की अविरल ज्वलन शीतलता सत्य का अनावरण करती है। आँसू की वेदना कल्याणी शीतल ज्वाला बन जाती है वेदना ही निराशा में आशा की किरण चमकती है जिसे महाकवि भी आबद्ध नहीं रखते। अपनी निराशा में से विश्व-कल्याण की वृष्टि करता है। इसीलिए आँसू की निराशा जीवन में प्रगति का संकेत करती हैं।

कवियों ने प्रकृति के माध्यम से यशोदा के विरह वर्णन में भावों की अभिव्यक्ति सुंदर ढंग से की है। चांदनी, उषा, संध्या, वेदना, उल्लास, आदि को प्रतीक बनाकर अनुपम चित्रण किए हैं-

देख अरी कुछ सूरजसा है, करता आता शुभ्र प्रकाश।
लगता है मेरे स्वामी ही, पहुँच रहे हैं नभ के पास॥[३]

***

देख अनाधिन सी कलिका मुरझाईसी बिना खिली सी।
शैशव में भी नहीं किलकती, गुमसुम सी है होठ-सिली सी॥[४]

***

यशोदा का व्यक्तित्व ससीम से असीम की ओर, व्यष्टि से समष्टि की ओर विकसित होता है। यहाँ प्रेम पुष्ट, प्रांजिल एवं गंभीर होकर कवि की अंतर साधना के रूप में प्रस्तुत हुआ है। जिस के माध्यम से कवि निजी जीवन के अनेक मानवीय गुणों का विकास करता है।

---

१. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "यशोदा विरह", सर्ग-१५, पृ.१६५
२. वही, पृ.१६५
३. वही, पृ.१६५
४. वही, पृ.१६४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्याणी यशोदा :

वियोगिनी यशोदा की भावभूमि उर्ध्वगति प्राप्त करती है। अपनी भावाभिव्यक्ति करती हुई कहती है कि जीवन में त्याग ही सबसे बड़ा धन है। उसके बिना किसने फल पाया ? बिना तपे उर्वरता कैसे आ सकती है ? जिस प्रकार धरती के तपने से ही बीज उत्पन्न होता है, सूरज के तपने से ही मेघ उत्पन्न होता है उसी प्रकार मेरे स्वामी के तप तपने से ही जगत सुखी हो सकेगा। वे भावुकता मे यही सोचती है कहीं मैं बदली बनी जाती तो सारी धूप निज उर में झेलती और शीतल बन प्रभु पर तन जाती। प्रियतम की सहयोगी बनकर साथ चलने की आकांक्षा करती है, जिससे पतिदेव को कष्ट न पहुँचे-

तुम तप करने को जाते हो, मैं बदली बनकर साथ चली।
तुम को न धूप लगने पाये, इसलिए धूप में स्वयं बनी॥
प्रभु तुम जिस पथ से जाओगे, मेरी काया छाया होगी।
मेरे प्रभु बाल-ब्रह्मचारी, पूजा मेरी माया होगी॥ [१]

***

पति की शुभेच्छा (जनकल्याण की भावना) :

यशोदा के हृदय के अंतःस्थल को छूकर बाहर निकलती हुई ध्वनि मानो कहती है कि-हे ज्ञानेश्वर ! आप जगत का भला करो, जीव मात्र की बला हरकर सबको सुखी करो। मैं जगत के हित के लिए दुःख सहन कर लूँगी किन्तु मेरी चिन्ता मत करना मैं आपके बिना किसी भी प्रकार से रह लूँगी। आपका मार्ग मंगलमय हो। हे प्रभु ! मैं यही चाहती हूँ कि आपके गुण गाकर पुण्य को बढाऊँ। सदैव आपकी पूजा करती रहूँ। मेरा शुभ दिन, शुभ घड़ी कब आये, कि मैं आपके दर्शनकर धन्य हो जाऊँ और आपके चरणों में न्योंछावर होकर आपमें ही खोजाऊँ।

भगवान तुम्हारे गुण गा गा, कुछ अपने पुण्य बढाऊँगी।
भगवान तुम्हारे चरणों में पूजा के पुष्प चढाऊँगी॥
मेरे स्वामी दर्शन देगें, मैं धन्य हो जाऊँगी।
चरणों में न्योंछावर होकर, उनके पथ में खो जाऊँगी॥ [२]

***

---

१. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "वनपथ", सर्ग-१०, पृ.२५५

२. वही, पृ.२५६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि इस प्रसंग द्वारा यह संदेश प्रस्तुत करता है कि जो पत्नी पति को उचित मार्ग पर जाने में रोकती है वह सच्ची अर्द्धांगिनी नहीं होती। सच्ची पत्नी वही है जो मंगलमय कार्य में साथ दे। यशोदा धन्य हुई कि उसे प्रभु के चरणों में दासी बनने का सोभाग्य प्राप्त हुआ।

पतिदर्शन से पूर्व के भाव :

हे सखि ! आज मैंने सुबह में एक स्वप्न देखा, उषाकाल का रमणीय प्रहर था। सुंदर शिखर देखा, उसके पास में शाल वृक्ष की शीतल छाया थी और पृष्ट भूमि पर समुद्र लहरा रहा था। नीरज दल के सिंहासन पर प्रभुको तपस्या की अग्नि में तपते हुए देखा। इन्द्र और अगनित सुरवर बिराजित थे। मुखमण्डलपर तेजस्विता दिखाई दे रही थी। सुर, मुनि और नर जनों को जाप करते हुए देखा। मैंने प्रभु के चरणों में शीश झुकाया था। प्रभु की दृष्टि कृपा से भरी हुई थी। उन्होंने मेरे सिर पर हाथ फेरा। अनायास ही नींद खुल गयी। सवेरा हो गया। हाय सखी ! मैं क्यों जग गई ? क्यों रात बीत गई ? मैं यही चाहती हूँ कि स्वप्न में भी प्रतिदिन प्रभु के दर्शन मिलते रहें। स्वामी की जय हो, धर्म की व विश्वशान्ति की जय हो, युद्ध मिट जाय, दुर्गुण नष्ट हो जाय और जगत में मानवता की सदा विजय हो। मैं प्रसन्न हूँ मेरे, पति ने विश्व के जीव के लिए गृहस्थ जीवन के सुख त्याग दिए।

यशोदा एकांत में बैठी हुई है। मंद मंद सुरभित शीतल हवा चल रही है। मन में उत्साह है, हर्ष है और आशा है कि प्रिय जरूर पधारेंगे। उसे आत्मानुभूति होती है कि प्रभु तप में सफल हुए हैं। उन्होंने समाधि से नयन खोल दिये हैं। उनकी अमृतवाणी की वर्षा में विश्व के मानव पहली बार भींग रहे हो, ऐसा आत्मभाव और विश्वास मुझे प्रतीत होता है। हे सखि ! आज मेरा वाम अंग फडक रहा है। शुभ शुकन से हृदय में आशा का संचार हो रहा है। सखि ! आरती, सजा, दीप जला, और मंगल घटमें दूब, पवित्र पुष्प, दही, रोली और पट्ट पर अक्षत, ताम्बूल, नैवेद्य, पुंगफल, धूपदान आदि सजाये। आज मेरे भाग्य जगे हैं और वैशाली की रज भी कृत्य कृत्य हो गई है। तभी अनायास ही जय हो, जय हो की ध्वनि सुनाई देने लगी। भगवान महावीर पधारे हैं। सत्य धर्म की विजय हो।

आज यशोदा भगवान महावीर को पाकर धन्य धन्य हो गई। वैशाली नगरी भी धन्य हो गई कि वहाँ आज तीर्थंकर भगवान के पवित्र चरण पड़े। दीर्घावधि से बाट देखती देखती आज यशोदा का स्वप्न साकार हुआ। प्रभु के पदार्पण से वैशाली के कण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कण में अमृत की वर्षा हुई। शुष्क पृथ्वी पर हरियाली छा गयी आज वैशाली की नगरी बाह्य उपकरणों से ही नहीं पर सत्य, अहिंसा के गुणों से भी सुशोभित हो रही है।

(ड) शची (इन्द्राणी) :

जैन मान्यता के अनुसार तीर्थंकर के गर्भ में आने के समय से ही इन्द्राणी सेवामें लग जाती है। जन्म के बाद तो इन्द्राणी सर्वाधिक प्रसन्न होती है। गर्भगृह से बालक को अभिषेक के लिए लाती है।

तीर्थंकर का जन्म संपूर्ण प्राणी जगत के लिए मंगलमय होता है, इसलिए उनके जन्म-प्रसंग पर मनुष्य ही नहीं, स्वर्ग के देव-देवियाँ, इन्द्र एवं इन्द्राणी तक खुशी मनाते हैं। वीर भगवंत के जन्म से अगणित यातनाओं में सतत दुःखी नारकी जीवों को भी उस क्षण चैन की साँस मिलती है। समस्त कुण्डग्राम में आनंद भेरी बजने लगती है। यहाँ कविने श्रमण भगवान महावीर काव्य में भगवान के जन्म के समय शची के हृदय में हुआ भावोल्लास का सुंदर चित्रण किया है-

लिए उर में अद्भूत उल्लास
शची भी आई विभु के पास।
अर्चना करते शत शत बार -
टेकती धरती पर थी माथ। [१]

***

इन्द्राणी मन ही मन अपने आप को धन्य समझती है कि मुझे तीर्थंकर और तीर्थंकर की माता की सेवा-पूजा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। स्वर्ग की इन्द्राणी, अन्य देवियाँ आकर भावपूर्वक वंदना करती है। श्रद्धा से भगवान के चरणो में पुष्प, नैवैद्य चढाती है। कविने काव्य में अनुमोदनीय चित्रण अंकित किया है-

आई इन्द्राणी अन्य देवियाँ आई
कर रही वंदना हिलमिल करे सुखदाई।
सुरराज इन्द्रनत विनत शरण में जाकर
की विनत वन्दना श्रद्धाफूल चढाकर - [२]

***

---

१. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, प्रथम सोपान, पृ.६८.
२. "तीर्थंकर महावीर": कवि गुप्तजी, सर्ग-५, पृ.१९८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकर का जन्म हुआ ऐसा अवधिज्ञान से ज्ञात होते ही सौधर्म का इन्द्रासन स्वयं प्रकम्पित हो उठा। वह तत्काल इन्द्राणी तथा देवगण आदि परिवार को साथ लेकर नृत्यगान करता हुआ कुण्डलपुर आया। उसने राजभवन में अपूर्व मंगल उत्सव का आयोजन किया। कुण्डग्राम का कण-कण देवोत्सवों से निनादित और अनुगुंजित हो उठा। इन्द्र-इन्द्राणी, माता त्रिशला भी करबद्ध होकर भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे :-

फिर पंचरत्न का चूर्ण सुमंगल ले कर
साथिया बनाया इन्द्राणी ने भूपर
योकर विधिवत अहन्त वीर का पूजन
करते इन्द्राणी और इन्द्र स्तुति वंदन। [१]

***

करबद्ध खड़े नतशीश ध्यान में लीना
वन्दन स्वर फूटे और बज उठी वीणा
सुरपति की भक्ति अगाध वीर के आगे
ध्यानावस्थित थे किन्तु एक क्षण जागे [२]

***

इन्द्राणी स्तुति करने के पश्चात् बालक के अलौकिक शारीरिक सौन्दर्य को देखकर मन ही मन अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव करती है। उसके हृदय में बालक के प्रति वात्सल्य उमड़ पड़ता है। उसीका चमत्कारपूर्ण वर्णन कविने कुशलता से किया है-

आ इन्द्राणी इन्द्र ने, लिया गोद में लाल।
रत्नों की वर्षा हुई, भरे सभी के थाल॥
आये योगी सन्त जन, आये सिद्ध महान।
गोदी के भगवान में मुनियों का ध्यान॥ [३]

वीर प्रभु की लीला अपरंपार है। जिसे कोई जान नहीं सकता। कवि अपनी लेखनी द्वारा वर्णन करने में भी असमर्थ है। स्वर्ग के इन्द्र भी उसी लीला का वर्णन करने में भी असमर्थ है। इन्द्राणी का जीवन धन्य है कि जिसे भगवान की सेवा सुश्रुसा करने का

---

१. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-५, पृ.१९९
२. वही
३. "वीरायण", कवि मित्रजी, "जन्मज्योति", सर्ग-४, पृ.९८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ है। महान पुण्योदय से इन्द्राणी पद प्राप्त होता है। इन्द्र-इन्द्राणी और अन्य देव-देवियाँ भक्तिपूर्वक बार-बार भगवान की स्तुति करते हैं। तदन्तर इन्द्राणी वीर बालक के शरीर पर तेल का मर्दन करती है जिसका चित्रण कविने काव्य में सुंदर ढंग से किया है-

पुन स्तुति करते जोड़े हाथ
इन्द्र ने पूर्ण विनय के साथ।
शची ने लिया सुगन्धित तेल-
हाथ से चुपड़े शिशु के गात ॥ [१]

***

इन्द्र-इन्द्राणीने राजा सिद्धार्थ का सन्मान किया। श्वेताम्बर मतानुसार इन्द्राणीने माता त्रिशला को प्रमुग्ध कर शीघ्र सुला दिया। नव जात शिशु को प्रसुति गृह से बाहर ले आई। दिगम्बर मतानुसार इन्द्राणीने माता त्रिशला के मायावी शीशु बनाकर रखा। वहाँ से सभीने सुमेरुं पर्वत पर अभिषेक के लिए प्रस्थान किया :

अति प्रमुग्ध हो गई शची अरू,
जननी को द्रुत सुला दिया
लेकर शिशु को गोद स्वर्ण गिरी,
पर सबने प्रस्थान किया ॥ [२]

***

लेती थी शिशु का प्यार, भरा मुख चुम्बन
शिशु के प्रकाश से आहलादित थे तन-मन
नभ-पथ से होकर चल लिए जब बालक
ज्यों दिव्य ज्योति हो नीलाम्बर मे लक-दक [३]

***

---

१. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, "जन्म कल्याणक", सोपान-१, पृ.७०
२. भगवान महावीर, कवि शर्मा, "दिव्य शक्ति अवतरण", सर्ग-३, पृ.३३
३. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-१, पृ.१४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्र उस बाल तीर्थंकर को गोद में लेकर ऐरावत हाथी पर आरूढ हो सुमेरू पर्वत पर गये और शिशु का अभिषेक किया। अभिषेक के पश्चात् जब इन्द्राणी तीर्थंकर कुमार का शरीर पोंछ रही थी तब तीर्थंकर के कपाल-जल बिन्दुओं को सुखाने में असमर्थ हो रही थी। ज्यों ज्यों पोंछती थी, कपोल-जल बिन्दु त्यों त्यों अधिक चमकने लगते थे। यह प्रक्रिया होते इन्द्राणी को पर्याप्त आश्चर्य हुआ। इस प्रकार भ्रमित इन्द्राणी का कविने सुंदर शब्द चित्र प्रस्तुत किया है -

बार बार पोंछती शची, लाल के गाल।
पगली ! यह पानी नहीं, यह गहनों की जाल ॥ [१]

***

बालों पर बिजली नहीं हो मत ज्ञानी अचेत।
कुंडल तेरे कान के चमक रहे है श्वेत ॥ [२]

इन्द्राणी की भ्रान्ति दूर होने में विलम्ब नहीं हुआ, भ्रांति का स्वयमेव निवारण हो गया। क्योंकि वास्तव में वे जल की बूँदे नहीं थी अपितु इन्द्राणी के आभूषणों की प्रतिबिम्ब ही झलक रहा था जो तीर्थंकर के स्वच्छ बदन पर चमककर जल बिन्दुओं की भ्रांति उत्पन्न कर रहा था। इन्द्राणी ने अभिषेक के अनन्तर बालक को जननी त्रिशला की गोद में दिया और इन्द्रने स्तुतिपूर्वक ताण्डव नृत्य किया। नगर में अत्यंत विशेष उत्सव हुआ। इन्द्र-इन्द्राणी आदि अपने-अपने स्थान को चले गये।

***

---

१. ''वीरायण'', ''कवि मित्रजी'', सर्ग-४, पृ.९८

२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय अध्याय

प्रबंधो का भावपक्ष

(अ) वैदिक और श्रमण परम्परा

(ब) प्रबंधो में जैनदर्शन

(क) प्रबंधो में राष्ट्रीय भावना

(ड) महावीरकालीन युगीन परिस्थितियाँ

(इ) प्रबंधो में नारी भावना

(ई) प्रबंधो में प्रकृति-चित्रण

(उ) प्रबंधो में रस-दर्शन

(ऊ) अतिशय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैदिक और श्रमण परम्परा

वैदिक धर्मानुयायी संप्रदाय का विरोधी श्रमण संप्रदाय माना गया है। सम्भवतः वैदिक संप्रदाय से पूर्व किसी न किसी रूप में उसका अस्तित्व मौजूद था। श्रमण संप्रदाय की शाखाएँ प्रशाखाएँ अनेक थी, जिनसे सांख्य, बौद्ध, जैन, आजीवक आदि के नाम सुविदिति हैं। कालान्तर में जो वैदिक संप्रदाय की विरोधी भी वे एक दूसरे कारणों से धीरे धीरे वैदिक संप्रदाय धुलमिल गयीं। उदाहरण के तौर पर हम वैष्णव और शैव संप्रदाय को ले सकते हैं। पुराने वैष्णव और शैव ग्रंथ केवल वैदिक संप्रदाय से भिन्न ही न थे, अपितु उसका विरोध भी करते थे। और इस कारण के वैदिक संप्रदाय के समर्थक आचार्य भी पुराने वैष्णव और शैव ग्रंथों को वेद विरोधी मानकर उन्हें वेदबाह्य मानते थे। पर आज हम देख सकते हैं कि उन्हीं वैष्णव और शैव-संप्रदाय की शाखा-प्रशाखा बिलकुल वैदिक संप्रदाय में सम्मिलित हो गई हैं। यही स्थिति सांख्य संप्रदाय की है, जो पहले अवैदिक माना जाता था, पर आज वैदिक माना जाता है। ऐसा होते हुए भी कुछ श्रमण संप्रदाय ऐसे है जो खुद अपने को अवैदिक मानते-मनवाते है और वैदिक विद्वान भी उन संप्रदायों को अवैदिक ही मानते आए हैं।

भारतीय संस्कृति अनेक प्रकार के विचारों का विकास है। इस संस्कृति में न जाने कितनी धाराएँ प्रवाहित हो रही है। अनेकता में एकता और एकता में अनेकता यही हमारी संस्कृति की प्राचीन परंपरा है। यहाँ पर अनेक प्रकार की विचार धाराएँ बही। प्राचीनता और नवीनता का संघर्ष बराबर होता रहा। इस संघर्ष में नवीनता और प्राचीनता दोनों का ही यथोचित सम्मान होता रहा। किसी समय प्राचीनता को विशेष सम्मान मिला तो कभी नवीनता का विशेष आदर हुआ। दोनों एक दूसरे से प्रभावित भी होते रहे, और वह प्रभाव काफी स्थायी भी होता रहा। विविधताओं के वैसे तो अनेकरूप रहे हैं, किन्तु ये सारी विविधताएँ दो रूपों में बाँटी जा सकती है-एक वैदिक परंपरा और दूसरा अवैदिक परंपरा। श्रमण वेद का प्रमाण स्वीकार नहीं करते थे। उसके क्रियाकलापों को महत्व नहीं देते थे। इनकी दृष्टि में या तो इनके क्षुद्र फल हैं या ये निरर्थक और निष्प्रयोजनीय है। श्रमण आस्तिक तथा नास्तिक दोनों प्रकार के थे। कई संप्रदाय तपस्या को विशेष महत्व देते थे। जो आस्तिक थे, ये भी जगत का कोई स्रष्टा, या कर्ता नहीं मानते थे। पालिनिकाय में जिन श्रमणों का उल्लेख है वे प्रायः नास्तिक ही हैं।

इसी प्रकार भारत में मुख्य रूपसे श्रमण और वैदिक ये दोनों परंपरा प्रागैतिहासिक काल से विकसित होती चली आ रही हैं। श्रमण संस्कृति में समाजोद्धारक श्रमण ऋषभदेव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैदिक काल मैं ही हुए। उसी संस्कृति में इसी मत को जैन नामाभिधान प्रदान करनेवाले महावीर हुए। एवं महान श्रमण गौतमबुद्ध बौद्ध संस्कृति के प्रवर्तक हुए। जिन्होने श्रम, संयम और त्याग इन तीन प्रमुख विशेषताओं से इस संस्कृति को लोकप्रिय बनाया।

डॉ. राधा कुमुद मुखर्जीने श्रमण धर्म को वैदिक चिन्तनधारा का ही अंग माना है। तप के द्वारा ऋषि सत्य का साक्षात् अनुभव करने की क्षमता रखता है। तप से ही विश्व की रचना व उत्पत्ति बतलाई गई है। मेगस्थनीज ने अपनी भारत यात्रा के समय दो प्रकार के दार्शनिकों-ब्राह्मण और श्रमण का उंल्लेख किया है। उस युग में श्रमणों का बहुत आदर किया जाता था।[1] मेगस्थनीज ने श्रमणों के वर्णन में कहा है कि वे वन में रहते थे, सभी प्रकार के व्यसनों से अलग थे। राजा लोग उसको बहुत सन्मान देते थे और वे देवताओं की भाँति उनकी स्तुति एवं पूजा करते थे। गोविन्द[2], राजीय रामायण भूषण में श्रमणों को दिगम्बर कहा है। ब्राह्मण ग्रंथों में श्रमण का उल्लेख है।[3] इस प्रकार इस श्रमण संस्कृति को ही जैन धर्म का पूर्व रुप कहा जा सकता है तथा भगवान ऋषभदेव का इस श्रमण (जैन)विचारधारा के प्रवर्त्तक के रुप में श्रीमद् भागवत में उल्लेख हैं।[4] ये भी मरुदेवी तथा नाभिराजा के पुत्र भगवान ऋषभदेव ही थे।

वैदिक परम्परा :

वैदिक और श्रमण परम्पराओं में उतना ही अन्तर है जितना भोग और त्याग, हिंसा और अहिंसा, शोषण और पोषण, अन्धकार और प्रकाश में अन्तर है। एक धारा मानव जीवन के बाह्य स्वार्थ का पोषण करती है तो दूसरी धारा मनुष्य के आत्मिक विकास को बल प्रदान करती है। एक का आधार वैषम्य है तो दूसरी का आधार साम्य है। अतः वैदिक और श्रमण परंपरा का वैषम्य एवं साम्यमूलक इतना अधिक विरोध है कि महाभाष्यकार पतंजलिने अहिनकुल एवं गौ-व्याघ्र जैसै शाश्वत विरोधवाले उदाहरणों में वैदिक श्रमण को स्थान दिया। जिस प्रकार अहि और नकुल, गौ और व्याध्र में जन्मजात विरोध है।[5] आचार्य हेमचन्द्र भी अपने ग्रंथ में बातका समर्थन करते है।[6] इन

---

१. ट्रांसलेसन आफ दि फ्रेगमेन्ट्स आफ दि इण्डिया आफ मेगेस्थनीज-१८४६ पृ.१०५

२. श्रमणाः दिगम्बराः श्रमणा (वातरसनाः)

३. शतपथ १४-७-१-२२ तैतिरीया आ. २-७-१

४. श्रीमद् भागवत् ५-३-२०

५. महाभाष्यकार-२-४-९

६. सिद्धहेम -३-१-१४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदाहरणों की उपस्थिति करने का अर्थ यह नहीं की वैदिक और श्रमण समाज एक साथ नहीं रह सकते। इसका अभिप्राय केवल इतना ही है कि जीवन की ये दो वृत्तियाँ विरोधी आचार और विचार को प्रकट करती हैं। ये दोनों धाराएँ मानव-जीवन के भीतर रही हुई दो भिन्न स्वभाववाली वृत्तियों की प्रतीक मात्र हैं।

वैदिक परम्परा का उपलब्ध मान्य साहित्य वेद हैं। वेद से हमारा अभिप्राय उस भाग से है जिसमें मंत्रप्रधान संहिता है। यही परम्परा मूल में वैदिक मान्यताओं के आसपास शुरू और विकसित हुई है। वैदिक मंत्रो और सुक्तों की सहायता से नाना प्रकार की प्रार्थनाएँ एवं स्तुतियाँ की जाती है। तथा वैदिक मंत्रो द्वारा होनेवाले यज्ञ आदि कर्म भी वैदिक क्रिया हैं कहलाता है।

श्रमण परम्परा :

यह धारा मानव के उन गुणों का प्रतिनिधित्व करती है जो उसके वैयक्तिक स्वार्थ से भिन्न है। दूसरे शब्दों में श्रमण परम्परा साम्य पर प्रतिष्ठित है। यह साम्य मुख्य रुप से तीन बातों में देखा जा सकता है -

(१) समाज विषयक (२) साध्य विषयक (३) प्राणी जगत के प्रति दृष्टि विषयक। [१] समाज विषयक सामान्य का अर्थ है - समाज में किसी एक वर्ण का जन्मसिद्ध श्रेष्ठत्व या कनिष्ठत्व मानना। श्रमण संस्कृति समाज-रचना एवं धर्म विषयक अधिकार की दृष्टि से जन्मसिद्ध वर्ण और लिंगभेद को महत्व न देकर व्यक्ति द्वारा समाचरित कर्म और गुण के आधार पर ही समाज-रचा करती है। उसकी दृष्टि में जन्म का उतना महत्व नहीं है जितना कि पुरूषार्थ और गुण का। मानव-समाज का सही आधार व्यक्ति का प्रयत्न एवं कर्म है, न कि जन्मसिद्ध तथा कठिन श्रेष्ठत्व। केवल जन्म से कोई श्रेष्ठ या हीन नहीं होता। हीनता और श्रेष्ठता का वास्तविक आधार स्वकृत कर्म है। साध्य-विषयक साम्य का अर्थ है- अभ्युदय का एक समान रुप। श्रमण संस्कृति का साध्य विषयक आदर्श वह अवस्था है जहाँ किसी प्रकार का भेद नहीं रहता। वह एक ऐसा आदर्श है जहाँ ऐतिहासिक पारलौकिक सभी स्वार्थो का अंत हो जाता है। वहाँ न इस लो़क के स्वार्थ सताते हैं, न पर लोक का प्रलोभन व्याकुलता उत्पन्न करता है। वह ऐसी साम्यावस्था है जहाँ योग्यता और अयोग्यता, अधिकता तथा न्यूनता, हीनता और श्रेष्ठता-सभी से परे हैं। प्राणी जगत के प्रति दृष्टि-विषयक साम्य का अर्थ है- जीव जगत

१. जैन धर्मका प्राण, पृ.१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के प्रति साम्य। ऐसी समता कि जिसमें न केवल मानव-समाज या पशु-पक्षी समाज ही समाविष्य हो, अपितु वनस्पति, जैसे अत्यंत सूक्ष्म समूह का भी समावेश हो। यह दृष्टि विश्वप्रेम की अद्भुत दृष्टि है। विश्वका प्रत्येक प्राणी, चाहे वह मानव हो, पशु-पक्षी हो, कीट, वनस्पति हो या अन्य क्षुद्र जीव हो सभी आत्मवत् समान है। किसी भी प्राणी का वध करना अथवा उसे कष्ट पहुँचाना आत्मपीड़ा के समान है। ''आत्मवत् सर्व भूतेषु'' की भूमिका पर प्रतिष्ठित यह साम्यदृष्टि श्रमण परम्परा का प्राण है। सामान्य जीवन को ही अपना चरम लक्ष्य माननेवाला साधारण व्यक्ति इस भूमिका पर नहीं पहुँच सकता। यह भूमिका स्व और पर के अभेद की पृष्ठभूमि है। यही पृष्ठ भूमि श्रमण-संस्कृति का सर्वस्व है।[१]

श्रमण के लिए प्राकृत साहित्य में ''समण'' शब्द का प्रयोग हुआ है। जैन सूत्रों में जगह-जगह 'समण' शब्द आता है। जिसका अर्थ होता है साधु। उक्त समण शब्द के तीन रुप हो सकते हैं-श्रमण, समान और शमन। श्रमण शब्द श्रम धातु से बनता है। श्रम का अर्थ होता है परिश्रम करना।

तपस्या का दूसरा नाम परिश्रम भी है।[२] जो व्यक्ति अपने ही श्रम से उत्कर्ष की प्राप्ति करते हैं वे श्रमण कहलाते हैं। 'समण' का अर्थ होता है समानता। जो व्यक्ति प्राणीमात्र के प्रति समभाव रखता है, विषमता से हंमेशा दूर रहता है जिसका जीवन विश्वप्रेम और विश्व बंधुत्व का प्रतीक होता है, जिसके लिए स्व-पर का भेदभाव नहीं होता, जो प्रत्येक प्राणी से उस भाँती प्रेम करता है जिस प्रकार खुद से प्रेम करता है, उसे किसी के प्रति द्वेष नहीं होता और न किसी के प्रति राग ही होता है। वह राग-द्वेष की तुच्छ भावना से उपर उठकर सब को एक दृष्टि से देखता है। उसका विश्वप्रेम धृणा और आशक्ति की छाया से सर्वथा अछूता रहता है। वह सबसे प्रेम करता है। किन्तु उसका प्रेम राग की कोटि में नहीं आता। वह प्रेम एक विलक्षण प्रकार का प्रेम होता है, जो राग-द्वेष दोनों की सीमा से परे होता है। राग और द्वेष साथ-साथ चलते हैं, किन्तु प्रेम अकेला ही चलता है।

''शमन'' का अर्थ है- शांत करना। जो व्यक्ति अपनी वृत्तियों को शान्त करने का प्रयत्न करता है, अपनी वासनाओं का दमन करने की कोशिश करता है और अपने

---

१. भगवती सूत्र,१, ६, ३८३

२. श्राम्यन्ती श्रमणा : तपस्यन्तीत्यर्थ : दशवैकालिक वृत्ति-१-३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रयत्न में बहुत कुछ सफल होता है वह श्रमण संस्कृति का सच्चा अनुयायी है। हमारी ऐसी वृत्तियों जो उत्थान के स्थान पर पतन करती है, शान्ति के बजाय अशान्ति उत्पन्न करती है, उत्कर्ष कही जगह अपकर्ष लाती है, वे जीवन को कभी सफल नहीं होने देती। ऐसी अकुशल वृत्तियों को शान्त करने से ही सच्चे लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है। इस प्रकार की कुवृत्तियों को शान्त करने से ही आध्यात्मिक विकास हो सकता है। श्रमण संस्कृति के मूल में शम और सम से ये तीनों ही तत्व विद्यमान हैं। श्रमण परम्परा के सूचक शब्द वैदिक साहित्य में वातरशना, मुनि, व्रात्यं, यति एवं ब्रह्मचारी आदि नामो मिलता है। यद्यपि दोनों परंपरा के मुनियों की चर्याओं में बहुत ही अन्तर रहा हैं।

वैदिक, जैन एवं बौद्ध तीनों धाराओं में सन्यासी के आचार-व्यवहार के सम्बन्ध में परस्पर अनेक बातों में समानता रही है तो अनेक बातों में विभिन्नता भी है। वैदिक और श्रमण परम्परा के ग्रन्थों के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि सन्यासी को व्रतों के अन्तर्गत सत्य का पालन करना, संयम तथा ब्रह्मचर्य का पालन करने के साथ तप, स्वाध्याय एवं ध्यानादिका अभ्यास मुख्य तत्व है। भिक्षाचार्य के द्वारा जीवन निर्वाह करना और प्राणायाम का अभ्यास दोनों धर्मो में मान्य हैं। दोनों धर्मो में संन्यास का अर्थ ऐषणाओं से विरक्त रहकर निस्पृह भाव से रहना माना गया है।

दोनों परम्पराओं में पुरूषों के सदृश स्त्रियों को भी संन्यास ग्रहण करने का अधिकार था। जैसे जैन राजीमती एवं बौद्ध भिक्षुणी धम्मदिन्ना दोनों अपने पति की प्रव्रज्या ग्रहण करते देखकर स्वयं भी प्रवज्या धारण की। इसी प्रकार बृहदारण्यकोपनिषद में मैत्रेयी अपने पति को प्रव्रजित होते देखकर स्वयं भी संन्यासिनी हो गयी। वैदिक और श्रमण परम्पराओं में संन्यासी के लक्षण के अन्तर्गत उसे निष्कलंक, मोह, राग एवं द्वेष के प्रति अनासक्त एवं भिक्षावृत्ति का पालन करनेवाला बताया गया है।

इस प्रकार वैदिक परम्परा के समान श्रमण परम्परा में भी सत्य, अचौर्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, तप, ध्यान, स्वाध्याय, संयम, अनशन एवं प्राणायाम आदि व्रतों का वर्णन मिलता है। इन व्रतों का संन्यासी जीवन में अत्याधिक महत्व है, क्योंकि इनसे ही संन्यासी इन्द्रियों एवं मन को वश में करके काम, क्रोध, भय, मद, लोभ आदि दुष्प्रवृत्तियों को दूर करके परिशुद्ध होता है और परमात्म स्वरुप की प्राप्ति करने में समर्थ होता है।

भारतीय संस्कृति विश्व की महान संस्कृति है। यह संस्कृति सरिता की सरस धारा की तरह सदा जनजीवन में प्रवाहित होती रही है। इस संस्कृति का चिंतन जैन, बौद्ध और वैदिक इन तीन धाराओं से प्रभाविक रहा है। यहाँ भी संस्कृति और सभ्यता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का रमणीय कल्पवृक्ष इन तीनों परंपराओं के आधार पर ही सदा फलता फूलता रहा है। इन तीनों परम्पराओं ने अत्याधिक सन्निकटता न भी रही हो। तथापि अत्यंत दूर भी नहीं थी। तीनों ही परंपराओं के साधकों ने साधना कर जो गहन अनुभूतियाँ प्राप्त की, उनमें अनेक अनुभूतियाँ समान थी तो कई अनुभूतियाँ असमान भी थी। इन दोनों संस्कृतियों को भेद पुष्ट करने के लिए हम अवैदिकों को पाते हैं। इनमें कतिपय वैदिक संस्कृति से प्रभावित है, अन्य अवैदिक श्रमणों के विषय में श्वेताम्बर मतानुयायी ग्रंथ सुयागद तथा बौद्ध ग्रंथ दीर्घनिकाय में श्रमण फलसुत्त में वर्णन किया गया है।

महावीर-प्रबंधो में जैन दर्शन

भारतीय दर्शन के वैदिक व श्रमण दर्शन में कुछ मौलिक भिन्न दृष्टिकोण रहे हैं। भगवान महावीर सम्बन्धी हिन्दी के उपलब्ध प्रबंधो में इस दर्शन वैशिष्ट को कवियों ने सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है। यहाँ संक्षेप में मैं उस वैचारिक भिन्नता व साम्य को प्रस्तुत कर रही हूँ -

ईश्वर :

वैदिक दर्शन की मान्यता है कि ब्रह्मा संसार का सृष्टा है। और काला सारा संसार प्रलय की गोद में समा जाता है। भगवान अवतार लेता है। वह लीलायें करता है और पश्चात् अपने नियत धाम में चला जाता है। जैनदर्शन सर्व प्रथम तो सृष्टि का कर्ता किसी व्यक्ति विशेष को नहीं मानता साथ ही अवतार का स्वीकार नहीं करता। जैन धर्म में प्राणीमात्र समान है। संसार का प्रत्येक प्राणी साधना के द्वारा दुष्ट कर्मो का क्षय कर के मुक्त आत्मा बन सकता है। मुक्तात्माका विवेचन करते हुए भगवान महावीर ने आचारंग सूत्र में कहा है-मुक्तात्मा जन्म-मरण के मार्ग को सर्वथा पार कर जाता है। मुक्ति में रमण करता है। उसका स्वरुप प्रतिपादन करने में समस्त शब्द हार मान जाते हैं। वहाँ तर्क का प्रवेश नहीं होता, बुद्धि अवगाहन नहीं करती। वह मुक्तात्मा प्रकाशमान है। वह न स्त्री रुप है, न पुरुषरुप है, न अन्यथा रुप है। वह समस्त पदार्थो का सामान्य और विशेष रुप से ज्ञाता है। उसकी कोई उपमा नहीं है। वह अरुपी सत्ता है। उस अनिर्वचीय को किसी वचन के द्वारा नहीं कहा जा सकता। वह न शब्द है, न रुप है, न रस है, न गंध है और न स्पर्श है।

हिन्दी-प्रबंधकार कवियों ने ईश्वर संबंधी कल्पना को काव्यों में संक्षेप में प्रस्तुत किया है -

''सफल बनाये सुखी क्यों नहीं, क्यों कुछ दुःखी बनाये उसने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विविध विषमतायें क्यों जगमें पैदा की है पूर्ण पुरुषने।
रागद्वेष से यहि वह इश्वर दुःखी किसी को सुखी किसी को।
स्वेच्छा से निर्मित करता यदि अमुख किसी को मुखी किसी को।"

***

तब रागी को इश्वर कहना, उचित नहीं होता प्रतित है।
द्वेषी को भी इश्वर कहना ज्ञान अंधता की अनीति है॥
कर्म फलों से ही यदि इश्वर दुःखसुख को निश्चित करता है।
तब इसमें भी कर्म बड़प्पन सर्वशक्तिमत्ता हरता है॥[१]

***

जगत :

संसार की रचना के विषय में जैन धर्म संपूर्ण स्पष्ट है। विश्व में जों कुछ भी परिवर्तन दिखाई दे रहा है; वह परिवर्तन जीव और पुद्गल के संयोग से होता है। वह परिवर्तन दो प्रकार का है-स्वाभाविक और प्रायोगिक।

स्वाभाविक परिवर्तन सूक्ष्म होने से चर्म चक्षुओं से दिखाई नहीं देता, किन्तु प्रायोगिक परिवर्तन स्थूल होने से दिखाई देता है। जीव अनादिकाल से पुद्गल का संपर्क प्राप्त करता है और इस संसार का चक्र निरंतर चलता रहता है।

जैन दर्शन की दृष्टि से उत्पाद व्यय और घ्रोव्य की त्रिगुणात्मक संरचना संसार की उत्पत्ति निरंतर क्षय एवं नव सृजन में महत्वपूर्ण अंश है। एक स्वभाव रुप उत्पाद् घ्रोव्युक्त गुण पर्यायवान सत् द्रव्य कहलाता है। अर्थात् जो मौलिक पदार्थ अपने पर्यायों को क्रमशः प्राप्त हो वह द्रव्य है। द्रव्य उत्पाद व्यय और ध्रौव्य से युक्त है। यह भी कहा जा सकता है कि गुणों के समुह को द्रव्य कहते हैं। गुण के दो भेद होते हैं। जो सब द्रव्यों में व्याप्त है वह सामान्य गुण है और जो सब द्रव्यों में व्यप्त न हो वह विशेष है।

सभी पदार्थ अपने गुण और पर्याय रुप से उत्पाद-व्यय करते रहते हैं। चेतन हो या अचेतन सभी उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य के आधिन है। कहने का तात्पर्य य है कि वस्तु का मूल रुप कभी नष्ट नहीं होता है अर्थात द्रव्यत्व का सर्वदा अस्तित्व है। और विशेष बात यह है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में गुणोत्पाद नहीं कर सकता है। इस प्रकार सभी द्रव्य अपने स्वभाव से उत्पन्न होते हैं।

---

१. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "तीर्थंकर चिंतन", सर्ग-२१, पृ.२२१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवियों ने काव्य में सृष्टि की रचना के विषय को तर्क सहित समझाते हुए स्पष्ट लिखा है-

दृश्य और अदृश्य जगत यह स्वयंमेव निर्मित आधार।
नहीं विधाता इसका इश्वर परिवर्तित यह बारम्बार॥
मूल भूत घट द्रव्य स्वयंपर निखिल सृष्टि के उपादान।
इन के स्वयं रची यह संसृति जड़-चेतन के भिन्न विधान॥ [१]

***

हे भव्यो ! जीव-अजीवों का,
समुदाय जगत कहलाता है।
औ पुग्दल धर्म अधर्म काल,
आकाश अजीव कहाता है। [२]

***

वैदिक ऋषि विश्व के संबंध में संदिग्ध रहे हैं। उनका अभिमत है कि प्रलय दशा में असत् भी नहीं था सत् भी नहीं था, पृथ्वी भी नहीं थी, आकाश भी नहीं था। आकाश में विद्यमान सातों भुवन भी नहीं थे। जैन दर्शन विश्व के संबंध में किंचित् मात्र भी संदिग्ध नहीं हैं। उसका स्पष्ट अभिमत है कि चेतन से अचेतन उत्पन्न नहीं होता और अचेतन से चेतन की सृष्टि नहीं होती । किन्तु चेतन और अचेतन ये दोनों अनादि हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि यह लोक अति व्यापक है, विस्तृत है। मनुष्य मर्यादित क्षमतावश इस विशाल विश्व को एक सीमित अंश के साथ ही परिचय स्थापित कर पाता है। भगवतीसूत्र में विश्व की स्थिति के विषय में भी विवेचन मिलता है। इस लोग की सीमा के चारों और असीम लोकाकाश है। यह जगत रचना इतनी विशाल है कि आधुनिक विज्ञान इसके लघुतम अंश को भी नहीं जान सका।

कर्मवाद :

कर्म सिद्धांत या कर्मवाद जैन दर्शन का प्राण सिद्धांत है। स्याद्वाद की नींव पर ही इस की इमारत अवस्थित है। कर्म का यह सिद्धांत जैन दर्शन की वैज्ञानिकता पर प्रकाश डालता है। प्रत्येक जीव की स्वतंत्र सत्ता एवं कर्मठता इसी से सिद्ध हो सकती है । कविने काव्य में कर्म सिद्धांत को दृष्टांत सहित सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है-

१. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "तीर्थंकर चिंतन", सर्ग-२१, पृ.२२०
२. "परमज्योतिमहावीर", कवि सुधेशजी, सर्ग-२०, पृ.५२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसे पावक में तपने से अलग-अलग सोना प्रस्तर है।
उसी पृथक् पृथक् हो सकते जीव जुड़े पुद्गल स्तर है।
कर्म साथ जो बद्ध जीव, मन वचन काय स्पंदन होता।
नये नये कर्मों का आश्रव उससे करता जैसे ॥ [१]

***

कर्म के आठ भेद हैं-ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय। जैसे बादल से आच्छादित सूर्य की पवित्र तेज प्रभा ढकजाती है उसी प्रकार ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय कर्म के उदय से जीव का ज्ञान और दर्शनगुण ढक जाता है। कविने मोहनीय आदि कर्म की व्याख्या करते हुए जन-जगत को यही उद्बोधन दिया है कि -

वेदनीय सुखदुःख का अनुभव, इन्द्रियगण को ही होता है।
जैसे गुड़ से लिप्त अस्त्र हो, मिष्ट और कटु हँस रोता है।

***

मोहनीय मोहित करता है, जैसे मद हो मद्यपान का।
क्रोध दोष होते उत्पादित, कर विनाश ये मोक्ष ज्ञान का ॥ [२]

***

आयु कर्म श्रृंखलावतरुप, रोके रखता आत्म तत्व शुचि ॥
नाम कर्म ज्यों चित्रकार रुप, योनि योनि में नामांकित रुप ॥
गोत्र कर्म ज्यों कुम्भकार रुप, उच्च निम्न कुल रहे ढालता।
अन्तराय फिर भंडारी रुप, दान आदि में विघ्न डालता ॥ [३]

***

जैन धर्म और अन्य धर्म विशेषकर वैदिक दर्शन में कर्म, कार्यकलापों एवं तत्जन्य परिणामों को लेकर मूलभूत अंतर है। वैदिक दर्शन में ईश्वर को जगत का कर्ता व नियन्ता माना गया है। वहाँ जीव यद्यपि कर्म करने में स्वतंत्र है पर, परिणाम या दाता या फलभोक्त वह स्वयं नहीं। कर्म का फल इश्वर देता है। कृत कर्मों के अनुसार अच्छा

---

१. "भगवान महावीर": कवि शर्माजी, "तीर्थंकर चिंतन", सर्ग-२१, पृ.२२२
२-३. वही पृ.२२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

या बुरा फल ईश्वर ही प्रदान करता है। जैन दर्शन ऐसा नहीं मानता। वह कर्ता की स्वतंत्रता एवं स्वयं भोक्ता की सत्ता का स्वीकार करता है, अर्थात् जो कर्म करता है वही स्वयं उसके परिणाम को भोगता है। ''जैसा बोएगे वैसा काटोंगे'' का सिद्धांत स्वयं स्पष्ट होता है।

स्याद्वाद :

भारतीय दर्शनो में जैन दर्शन की विशिष्टता है, उसका मौलिक प्रदान अनेकान्त दर्शन। इस दर्शन को प्रस्तुत करने की शैली का नाम ही स्याद्वाद है।

जैन वाङ्मय में इस स्यात का अर्थ ''कथंचित्'' अर्थात् अपेक्षा माना है और ''वाद्'' कथ्य का द्योतक है। इस तरह यों कहा जा सकता है कि एक निश्चित अपेक्षासे किया गया कथन ही स्याद्वाद है। थोडा सा और गहरे उतरेंतो निश्चित अपेक्षा में एक निश्चित दृष्टिकोण या निश्चित विचारों का बोध निहित है। सरल शब्दों में कहें तो यह कहा जा सकता है कि वस्तु के जिस गुण की चर्चा प्रमुख रुप से हम कर रहे हैं उसमें अन्य गुण या स्वभाव भी विद्यमान हैं ही। इससे यह प्रतिफलित या सिद्ध होता है कि वस्तु में अनेक अर्थात् गुण विद्यमान हैं, एक अंश में सभी धर्म या स्वभाव पूर्ण हैं यह कथन असंभव है और ऐसा कथन अपूर्ण होगा। वस्तु एक ही निश्चित गुण धर्म स्वभावी है यह कथन ही एकांत दृष्टियुक्त है जो अन्य गुणों की उपस्थिति का अस्वीकार या तिरस्कार करता है। जो संघर्षो का जनक है। इसी वैचारिक या मानसिक संघर्ष को टालने के लिए वस्तु के अनेक स्वरूपी रुप को स्वीकार करते हुए उसे वाणी की शुद्धता भी जैनदर्शनों में प्रदान की।

भगवान महावीर के अनेकान्तवाद सिद्धान्त का विश्लेषण करते हुए कवि ने काव्य में समझाया है कि एक ही वस्तु को अनेक गुणधर्मो में देखना अनेकान्तवाद है। एक ही दृष्टि से देखकर उसे पूर्ण मानना या समग्र मानना केवल भ्रम है। वस्तु का पूर्णरुप है उसी का ज्ञान करना आवश्यक है -

एक दृष्टि नहीं पूर्ण हो सकी, उसे समग्र मानना भ्रम है।
वस्तु का जो पूर्ण रुप है उसका परिज्ञान अतिकम है।
है धर्मान्त अन्त वस्तु सब, व्यापक दृष्टि अपेक्षित होती।
एक बारमें एक रुप की सीमित दृष्टि सापेक्षित होती। [१]

***

१. ''भगवान महावीर'' : कवि शर्माजी, ''तीर्थंकर चिंतन'', सर्ग-२१, पृ.२२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि ने अंधो का दृष्टान्त देकर जन मानस को अनेकान्तवाद का स्पष्टीकरण करते हुए उद्बोधन दिया है कि कुछ अन्धों ने जब हाथी को जानना चाहा कि यह किस प्रकार प्राणी है, तो वे उसे हाथ से स्पर्श कर अनुभव करने लगे, सभी ने अपनी अपनी बुद्धि से विचारा। एकने उसके कान को स्पर्श किया और कहा हाथी सूप के समान है। दूसरे ने उसके पैर पर अच्छी तरह हाथ फिराकर कहा हाथी स्तंभ के समान है। जिस व्यक्ति ने धड़ को देखा तो समझा कि हाथी दिवार के समान है, सूंड को पकडा तो अजगर के समान तथा किसीने पूँछ को हाथ लगाया तो हाथी रस्सी समान लगा है।

कवि का कथन है कि हाथी ये ही है, परन्तु उसके भिन्न अवयव हैं, उससे तुम सब अनजान हो। एक ही अंश पर आग्रह करके रहने पर कभी पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती है। केवल हाथी के एक अंग को देखकर कहने से सबका एक मत कैसे मिल सकता है ? अपनी अपनी बात को खींचने में ही लड़ाई है। सीमित दृष्टि में ही तनाव है, व्यापक दृष्टि में नहीं। एक ही व्यक्ति किसी का पुत्र, भाई, भतीजा और पिता हो सकता है। अपने अपने स्थान पर सभी सही हैं। विरोध में ही झगड़ा है, समन्वय में शान्ति। जैसे कवि ग्वालिन का दृष्टान्त देते हुए बताते हैं कि-

दृष्टिकोण हो ग्वालिन जैसा, दधिको जैसे मथती है।
कर्षित रज्जु वाम कर से तो, दायेकी आगे बढती है॥
दोनों हाथ रज्जु को खींचे तो कैसे दधि मंथन होगा।
बिना समन्वय बात बिगडती तर्कोका ही ग्रन्थन होगा॥ [१]

***

प्रायः अनेकान्तवाद और स्याद्वाद् को परस्पर पर्यायवाची मान लिया जाता है, किन्तु ऐसा मानना समीचीन नहीं है। अनेकान्त एक विचार पद्धति है, एक दृष्टिकोण या मनोवृत्ति जब कि इस मनोवृत्ति की निर्दोष अभिव्यक्ति स्याद्वाद् हैं । अनेकान्त सिद्धांत पक्ष है और स्याद्वाद् उसका व्यवहार पक्ष है। स्याद्वाद् को सप्तभंगी से जाना जाता है अर्थात् स्याद्वाद् के सात प्रकार हैं। कविने काव्यों में उसका पृथ्थकरण प्रस्तुत करते हुए वर्णन किया हैं-

कदाचित् है, कदाचित नहीं दोनों होते साथ।
अकथनीय है पुनः कदाचित् अकथ्य पर है वह स्यात्।

---

१. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "तीर्थंकर चिंतन", सर्ग-२१. पृ.२२६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है अकथ्य पर नहीं कदाचित्, है वे नहीं भी उसका रुप।
सप्तभंगीयुत स्याद्वाद का होता यह सैद्धांतिक रुप ॥[१]

***

अनेकान्त हित स्याद्वाद की भाषा का होता व्यवहार।
सप्तभंगी नय कहलाता, वह, होते उसमें सात प्रकार ॥
स्यादास्ति स्यान्नास्ति और स्यादास्ति नास्ति स्यादवक्तव्य।
स्यादस्ति अवक्तव्य तथा स्यान्नास्तिका भी अवक्तव्य ॥[२]

***

यही सप्तभंगी न्याय व्यक्ति को संघर्षों से मुक्ति दिलाने का काम करता है। इससे किसी का अनादर भी नहीं होता है। अतः सृष्टि में सभी सुख का अनुभव प्राप्त करते हैं। इस प्रकार समस्त विश्व के लोग उलझनों से दूर हटकर समन्वय का भाव उत्पन्न करेंगे।

सप्ततत्व :

तत्वों की मीमांसा करने से पूर्व तत्व शब्द को समझना चाहिए। सर्वार्थ सिद्धि में वस्तु के निज स्वरुप को ही तत्व कहा गया है। जिस वस्तु का जो स्वभाव है वही तत्व है। पंचाध्यायी पूर्वार्ध में इसी भाव को स्पष्ट करते हुए कहा है-तत्व का लक्षण सत है। अथवा सत ही तत्व है। वह स्वभाव से ही सिद्ध है, इसलिए वह अनादि निधन है, वह स्वसहाय है और निर्विकल्प है। तत्वार्थ के सन्दर्भ में यह स्पष्ट कहा गया है कि अर्थ माने जो जाना जाये। तत्वार्थ अर्थात् जो पदार्थ जिस रुप से स्थित है उसका उसी रुप में ग्रहण करना। तत्वार्थ सूत्र में उमास्वातिजी ने तत्वों पर श्रद्धा करने वाले को सम्यग्दृष्टि कहा है।[३] प्राणी इन तत्वों को भली प्रकार से समझने और आचरण में लाने पर ही जन्म-मरण से छुटकारा पा सकता है। अंत में चारित्र रुप धारण करके ही मोक्ष पद को प्राप्त कर सकता है।

दिगम्बर मतानुसार सात और श्वेतांबर अनुसार नव तत्व हैं। पुण्य और पाप को आश्रव के अन्तर्गत लिया है। पुण्य और पाप का आना ही आस्रव है। कवियों ने जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष तत्व का वर्णन इस प्रकार प्रस्तुत किया है -

१. "चरम तीर्थंकर महावीर" : श्रीमद् विजय विद्याचन्द्रसूरि, पृ.५८
२. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "तीर्थंकर चिंतन", सर्ग-२१, पृ.२२६
३. तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्- प्रथमोऽध्याय सूत्र-२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जल में नौका तैर रही, जब छिद्र हो गया हो अति भारी।
पानी भरने लगे नाव में तो आश्रव अतिशय भयकारी ॥
एकत्रित फिर जलका होना, बंध जीव वैसे ही होता।
जब बढता है नाव कांपती, बचने का क्या उपक्रम होता ॥
छिद्र बनकर रोका जलको, यह संवर की क्रिया कहाती।
एकत्रित जल को निर्गतकर, यही निर्जरा की गति आती ॥[१]

***

संवर से होगा नहीं नये-
कर्मो का मुझ से योग पुनः।
पूर्वाजित कर्मो के क्षयका,
करना होगा उद्योग पुनः ॥[२]

***

अति घोर तपस्या करने से,
हो जायेगा यह कार्य सरल।
अविपाक निर्जरा होने से
भागेंगे सारे कर्म निकल ॥[३]

***

मोक्षतत्व :

अष्टकर्मों से निर्लेप होकर सिद्ध अवस्थाको प्राप्त करना ही मोक्ष है। आत्माकी निर्विकार अवस्था होती है, वही निर्वाण है, वही सिद्धि, वही परमपद, वही चरम सीमा का आत्मविकास है और वही मोक्ष तत्व है।

बारह व्रत :

जैन धर्म में श्रावकों के लिए बारह और साधु के लिए पांच महाव्रत होना अत्यावश्यक माना हैं। बारह व्रतधारी मनुष्य ही जैन कहलाने का अधिकारी बनता है। उसका जीवन अन्तर और बाह्य एकसा सरल-तरल होता है। मनुष्य को, मनुष्यत्व के

---

१. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, तीर्थंकर चिंतन, सर्ग-२१, पृ.२२२
२. "परमज्योतिमहावीर" : कवि सुधेयजी, सर्ग-१२, पृ.३२६
३. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बोधक ये सिद्धान्त व्यक्ति, समाज सभी को सम्पन्न बनाते हैं। जैन धर्म में श्रावक और मुनि दोनों व्रत पालन करते हैं। यद्यपि गृहस्थ श्रावक और गृहत्यागी मुनि के लिए उसके पालन का परिमाण अलग अलग है। तथापि पांच पांच जैसे अनिष्टों से बचने की आवश्यकता दोनों के लिए अनिवार्य है। यों कहना अधिक सरल होगा कि जीवन में से बुराईयों को दूर करना और नई बुराईयों को न आने देने का प्रयास ही व्रत है। व्रत अर्थात् उन नियमों का स्वीकार करना, जिससे अन्य प्राणियों के प्रति क्रूर व्यवहार न हो।

कवि ने काव्य के अन्तर्गत महावीर की वाणी का स्पष्टीकरण करते हुए महाव्रत और अणुव्रत का विश्लेषण किया है -

ग्रहस्थ को अणुव्रत का पालन, सादु महाव्रत का निर्वाह।
कोई जाति और कुल कोई, पालन की यदि उर में चाह॥
सुसंस्कृत समाज हेतु की, अणुव्रत का उत्तम आधार।
स्वशासित जीवन हो जाता, बन जाते हैं उच्च विचार॥ [१]

***

अपरिग्रही बचता पापों से, पुण्यों का करता संचय।
इस प्रकार व्यक्तिगत जीवन, बनता शुद्ध बुद्ध सविनय॥
व्यक्ति के उज्जवल बननेसे, बनता है उज्ज्वल समाज।
देश सुधरता, विश्व सुधरता, विस्तृत होता धर्मराज॥ [२]

***

इस प्रकार अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह, परिमाण ये पांच अणुव्रत और दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थ दण्डव्रत ये तीन गुणव्रत सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण, अतिथि संविभाग ये चार शिक्षाव्रत हैं। इन समस्त बारह व्रतों का पालन गृहस्थ को करना चाहिए।

षट्द्रव्य :

जैन दर्शन में जीवादि छ तत्व अर्थात् षट् द्रव्य माने गये हैं। इन्हीं छः तत्वों से निर्मित जगत की रचना के बारे में स्पष्ट लिखा है कि-

धर्मा धर्म अजीव जीव आकाश काल है मूल द्रव्य।
एक सचेतन जीव शेष तब चेतन हीन अजीव सेव्य॥

---

१. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, तीर्थंकर चिंतन, सर्ग-२१, पृ.२२७

२. वही, पृ.२२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जगती सब निर्मित इनसे ही और नहीं कुछ भी उपलब्ध।
जो कुछ दृश्य अदृश्य अवस्थित भिन्न समन्वय से है लव्य ॥ [१]

***

अतएव उक्त इन छह द्रव्यों-
ते भिन्न वस्तु है लोक नहीं।
इनमें से पुग्दल सिवा किसी-
को भी सकते अवलोक नहीं ॥ [२]

जीवद्रव्य :

संसार या मोक्ष दोनों में जीव प्रधान तत्व हैं। यद्यपि ज्ञान दर्शन स्वभावी होने के कारण वह आत्मा ही है फिर भी संसारी दशा में प्राण धारण करने से जीव कहलाता है। वह अनन्तगुणों का स्वामी एक प्रकाशात्मक अमूर्तिक सत्ताधारी पदार्थ है।

अजीव द्रव्य :

जीव से नितान्त विरोधी चैतन्यरहित जड़ पदार्थो को अजीव द्रव्य कहा गया है। जैन दर्शन में इसके पांच प्रकार हैं। (१) धर्म (२) अधर्म (३) आकाश (४) पुद्गल (५) काल। यहाँ धर्म और अधर्म का प्रयोग पुण्य पाप के सन्दर्भ में नहीं है। ये दो स्वतंत्र पदार्थ सम्पूर्ण लोक में आकाश की भाँति व्यापक एवं अरुपी हैं।

धर्म द्रव्य :

जो जीव और पुद्गल को गति प्रदान करने में सहायभूत बनता है वह पदार्थ धर्म कहलाता है। जैसे मछली को पानी में चलने में पानी सहायक है उसी प्रकार धर्म की गति प्रदायी पदार्थ हैं।

अधर्म द्रव्य :

धर्म से विपरीत जो जीव और पुद्गल को स्थिर होने में सहायक होता है वह अधर्म द्रव्य कहलाता है। जैसे श्रमित पथिक को वृक्ष की छाया विश्राम का निमित्त भूत बनाती है वैसे ही अधर्म ठहरने में सहायक बनता है।

---

१. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, तीर्थंकर चिंतन, सर्ग-११, पृ.२२०
२. "परमज्योति महावीर" : कवि सुधेयजी, सर्ग-२०, पृ.५२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आकाश द्रव्य :

आकाश पदार्थ सर्वज्ञात है। समस्त दिशाओं का भी इसी में समावेश होता है। आकाश द्रव्य सभी द्रव्यों को स्थान देता हैं। यह अमूर्तिक एवं सर्वव्यापी है। जैनाचार्यों में इस आकाश को (१) लोकाकाश (२) अलोकाकाश ऐसे दो विभागों में विभाजित किया है। लोक सम्बन्धी आकाश-लोकाकाश और अलोकसंबंधी आकाश-अलोकाकाश कहा है।

पुद्गल द्रव्य :

जैन दर्शन में स्थूल महास्थूल समस्त रुपी पदार्थों को पुद्गल की संज्ञा दी गई है। यो कहा जा सकता है कि हम जो देखत हैं, खाते हैं, आदि सभी पदार्थ, पुद्गल है। शास्त्रकारों ने पुद्गल को रुप, रस, गंध और स्पर्शवाला कहा है।

काल :

वस्तु के परिवर्तन में सहायक द्रव्य कहलाता है। परिवर्तन वस्तु का लक्षण है। परन्तु बाह्य निमित्त के बिना संभव नहीं काल द्रव्य की सहायता के बिना संसार का परिवर्तन संभव नहीं होता। वस्तु का रुप बदलना, नये का पुराना होना, युवा का वृद्ध होना, वर्तमानकाल का भूतकाल में परिवर्तन होना सभी परिवर्तन इस कालद्रव्य के कारण हैं।

इस प्रकार कवियों ने महावीर प्रबन्धों में जैन दर्शन सम्बन्धी तात्विक विश्लेषण करके हमें भगवान महावीर के पथानुगामी बनने का उद्बोधन दिया हैं।

***

प्रंबंधो में राष्ट्रीयभावना :

राष्ट्रशब्द की व्याख्या :

अनेक ग्रन्थों में भाषा, भूमि, जनसमुदाय आदि विभिन्न अर्थो में राष्ट्र शब्द का प्रयोग किया गया है।

भारतीय और पाश्चात्य मान्यता के आधार पर राष्ट्र शब्द का अर्थ किसी भौगोलिक इकाई पर बसा हुआ समुदाय जिसकी अपनी सभ्यता तथा संस्कृति हो, अपनी भाषा, धर्म और परम्परा हो तथा जिसकी अपनी राजनीतिक एकता और कानून हों-वही राष्ट्र है। इन सबके मूल में एकत्व और अखण्डता की साधना का संकेत हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राष्ट्र शब्द के अर्थ के विषय में 'उपाध्याय अमरमुनिजी' ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है-"भारत जमीन को नहीं कहते हैं। जमीन तो एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक है। राष्ट्र का वास्तविक अर्थ उस भूमि पर रहनेवाली प्रजा से है। अतएव यदि प्रजा बलवान है, तो राष्ट्र भी बनवान बनेगा और यदि प्रजा स्वयं दुर्बल है और अपनी रोटी के लिए दूसरों का मुंह ताकती है, तो उसका राष्ट्र भी कभी ऊँचा नहीं उठ सकता।"[१]

भारतीय दृष्टिकोण:

अथर्ववेद के "पृथ्वीसूक्त" के अनेक सूत्र राष्ट्रीयता के परिचायक हैं। धरती को जन्मदायिनी एवं कल्याणी माँ के रुप में मानकर उसकी प्रशंसा की गई हैं। इसमें देश के भौगोलिक सौन्दर्य के साथ पशु-पक्षी एवं विविध धर्म एवं भाषा के लोगों की शुभ कामना की गई हैं। आर्य लोग-वैविध्य को एक ही स्त्रोतस्विनी की विभिन्न जलधारायें मानकर एकताकी पवित्र गंगा में विलीन होने की मंगल कामना करते थे। उनकी भावनाओं का मूल लोक-कल्याण और सर्वोदय-भावना से अनुप्राणित था। अथर्ववेद में - "अभिवर्धताम पयसामि राष्ट्रेण वर्धताम "।[२] अर्थात् मनुष्य दुग्धाधि पदार्थो से बढे, राज्य से बढे कहकर व्यक्ति और राज्य की समृद्धि की कामना की हैं।

राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय-चेतना एक व्यापक शब्द है, एक महान भावना है। चिंतकों ने प्रायः राष्ट्रीय चेतना का लगाव उस राष्ट्रमें निवास करनेवाले व्यक्ति व व्यक्ति समुदायों के दिलों में अपनी मातृभूमि के प्रति अगाध भक्ति भावना है -

युद्ध बंध हो, पुजे अहिंसा, विश्वशांति के दीप जलें।
धरती पर हो स्वर्ग, सकल जन, महावीर के मार्ग चले॥[३]
मैं ज्ञान चाहता हूँ, उत्थान चाहता हूँ।
माँ देश का तुम्हारा, सम्मान चाहता हूँ॥[४]
"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी॥"

---

१. "जीवन दर्शन" : "उपाध्याय अमरमुनि", पृ.२१५
२. "अथर्ववेद", : ६/७८/२१
३. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, पृ.३
४. "वीरायण", कवि मित्रजी, संताप सर्ग, पृ.-२११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढकर है। इसी भावना की अभिव्यक्ति हमें जिमेरिन के चिंतन में मिलती है, जिसके लिए उसने कहा है-"राष्ट्रीयता सामूहिक भावना का एक रुप है, जिसका अपने निश्चित देश से गहरा परिचय होता हैं तथा अनोखी प्रतिष्ठा होती है।"[१]

भारत में राष्ट्रीयता के रुप में संयुक्त कुटुम्ब की भावना महती रुप से विद्यामान है ऋग्वेद में ऐसी भावनाओं के दर्शन किए जा सकते हैं -

"सगच्छध्वं संवदध्वं संवो मानंसि जानताम्।
देवा भाग यथा पूर्वे सन्जानाना उपासते ॥ "[२]

***

भावार्थ है कि हम सब की गति एक ही प्रकार ही है। हम एक साथ चलें। हम एक प्रकार की वाणी बोलें। हम सब के मन में एक से भाव प्रकट हों। जैसे देवता पहले से करते आए हैं उसी प्रकार समान भाव करें।

भारतीय सिद्धान्त के अनुसार धर्म और संस्कृति हमारी राष्ट्रीयता के प्राणाधार रहे। वाल्मीकि, भवभूति, कालिदास आदि के साहित्य में राष्ट्रीयता का ऐसा ही रुप अंकित हुआ है।

भारत की एकसूत्रता के विषय में 'संस्कृति के चार अध्याय' में दिनकरजी ने भारत की प्राचीन राष्ट्रीयता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है - "उत्तर को आर्यो का देश और दक्षिण को द्रविडों का देश समझने का भाव यहाँ कभी नहीं पनपा। क्योंकि आर्य और द्रविड नाम से दो जातियो का विभेद यहाँ हुआ ही नहीं था। समुद्र से उत्तर और हिमालय से दक्षिणवाला विभाग यहाँ हंमेशा से एक देश माना जाता रहा है।"[३]

उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि वेदों, पुराणों और शास्त्रों में राष्ट्रीयता का जो स्वरुप उपलब्ध है उसमें भारत की अखण्ड भौगोलिक एकता, धार्मिक एकसूत्रता और सांस्कृतिक गरिमा के दर्शन होते हैं। जन्मभूमि को स्वर्ग से भी महान् मानने के साथ-साथ अन्य देशों के प्रति जो सद्भावना और अनाक्रमता की भावनायें अंकित है।

---

१. "जीवन दर्शन" : "उपाध्याय अरमरमुनि", सन्दर्भ में-पृ.२०४
२. "ऋग्वेद", १०/१९१/२
३. "संस्कृति के चार अध्याय" : रामधारी सिंह "दिनकर", पृ.६७-६८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वे अन्तर्राष्ट्रीयता की पोषक हैं। यही कारण के विशाल देश में धर्म, भाषा, रहन-सहन, आस्थायें अलग-अलग होते हुए भी सांस्कृतिक, सामाजिक, एकता में पूरा देश भावात्मक रुप से एक है। भिन्नत्व में अभिन्नता इस की विशेषता है।

पाश्चात्य द्रष्टिकोण :

पश्चिमी विद्वानोने राष्ट्रीय भावनाओं का सम्बन्ध मनोविज्ञान से स्थापित किया है। जे. हॉलेन्ड रोज ने राष्ट्रीयता का अन्तः चेतना से सम्बन्ध स्थापित करते हुए राष्ट्रीयता को अनुभूति का विषय माना है।[१] इस व्याख्या द्वारा इस भावना को महत्व दिया गया है कि व्यक्ति जब यह भावना अपने अन्तर में स्थापित कर लेता है कि यह मेरा देश है तब वह उसके रक्षण एवं उन्नति के लिए सदैव अग्रसर रहता है। जिस राष्ट्र में यह भावना जितनी बलवती होगी, वह राष्ट्र उतना ही बलवान होगा।

गिल क्राइस्ट, गेटेल, जैसे विद्वानों में भी मनोवैज्ञानिक तथ्य को स्वीकार करते हुए भाषा, धर्म, ऐतिहासिक परम्पराओं एवं साहचर्य की भावनाओं को राष्ट्रीयता के सन्दर्भ में स्वीकार किया है।

पश्चिमी द्रष्टिकोण से विचार करने पर राष्ट्रीयता के पोषक तत्वों में अखंड देश, समान भाषा आदि तत्वों का महत्व ही स्वीकृत दिखाई देता हैं। पश्चिमी व्याख्याओं में मानसिक भावनाओं के ऐक्य पर विशेष बल दिया गया है।

राजनीतिक एकता-

अन्य तत्वों में कहीं कुछ मतभेद हो सकता है पर राजनीतिक एकता में कोई मतभेद नहीं हो सकता। यही सबसे बडा एकता का पोषकतत्व हैं। राजनीतिक एकता राष्ट्रीयता का सर्वाधिक सशक्त पहलू हैं। कोई भी व्यक्ति पराजित बनकर नहीं रहना चाहता। देश को स्वतंत्र बनाने की आकांक्षा देशवासियों में और विशेषकर वीरों को प्रेरणा प्रदान करती है। प्राचीन भारत में बहुत से छोटे-बड़े राज्य विद्यमान थे. पर साथ ही यह बात भी सत्य है कि बहुत प्राचीन समय से इस देश में यह विचार विद्यमान था, कि यह विशाल देश एक चक्रवर्ती साम्राज्य का उपयुक्त क्षेत्र है, और इसमें एक ही राजनीतिक शक्ति का शासन होना चाहिए। आचार्य चाणक्य ने कितने सुन्दर रुप में यह प्रतिपादित किया था, कि हिमालय से समुद्र-पर्यन्त जो हजार योजन विस्तृर्ण प्रदेश है, उस चक्रवर्ती

---

१. Nationality History : Holland; p.147

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शासन का क्षेत्र स्थापित करना है, प्राचीनकाल में राजसूय आदि यज्ञों द्वारा ऐसे अखंड देश का राज्य प्राप्त कर चक्रवर्ती सार्वभौम व सम्राट पद को प्राप्त करने में समर्थ हुए थे। प्राचीन समय में भारत चाहे सदा एक शासन में न रहा हो, पर इस देशमें यह अनुभूति प्रबल रुप से विद्यमान थी, कि यह एक देश है, और इसमें जो धार्मिक साहित्यिक व सांस्कृतिक एकता है, उसे राजनीतिक क्षेत्र में भी अभिव्यक्त होना चाहिए। यही कारण है कि विविध राज्यों और राजवंशों की सत्ता के होते हुए भी इस देश के इतिहास को एक साथ प्रतिपादित किया जा सकता है।

प्राचीन भारत का इतिहास लिखते हुए जहाँ हम उसके धर्म, सभ्यता, संस्कृति, साहित्य, और सामाजिक संगठन के विकास का वृतान्त लिखते हैं, जो सारे भारत में समान रुप से विकसिक हुए, वहाँ साथ ही हम उस प्रयत्न का भी प्रदर्शन करते हैं, जो इस देश में राजनीतिक एकता की स्थापना के लिए निरन्तर जारी रहा। यही कारण है कि हम इसका इतिहास एक साथ लिखने में समर्थ होते हैं।

देश दर्शन : (प्राकृतिक सौन्दर्य)

हिन्दी साहित्य के सभी कवियों ने काव्यों के अन्तर्गत देशके सौंदर्य का सुन्दर चित्रण किया है। डॉ. छेलबिहारी गुप्त कृत 'तीर्थंकर महावीर' महाकाव्य में देश का प्राकृतिक सौन्दर्य का सजीव चित्रण प्रस्तुत है -

शीस पर नगराज हेम किरीट
चरण धोती सिन्धु जल की छींट
गोदमें गंगा-यमुना अभिराम
ब्रह्मपुत्रा नर्मदा छवि धाम। [१]

***

प्राकृतिक दृष्टि से भारत की सीमायें अत्यन्त सुन्दर हैं। इसके उत्तरमें हिमालय की ऊँची और दुर्गम पर्वत श्रृंखलायें हैं। पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम में यह महासमुद्र द्वारा घिरा हुआ है। इसके उत्तर-पश्चिमी और उत्तर पूर्वी कोनों पर समुद्र नहीं है, पर उनकी सीमा निर्धारित करने के लिए हिमालय की पश्चिमी और पूर्वी पर्वत श्रृंखलायें दक्षिण की ओर मुड़ गई हैं, और समुद्र तट तक चली गई हैं। हिमालय की पश्चिमी पर्वतमाला दक्षिण पश्चिमी की ओर मुड़कर सफेद कोह, सुलेभान और किरथर की पहाडियों के रुप

---

१. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-१, पृ.७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में अरब सागर तक चली गई हैं, और भारत को सिन्धु घाटी को अफघानिस्तान व बलोचिस्तान से पृथक करती हैं। उत्तर पश्मिच की ओर भारत की असली वैज्ञानिक सीमा हिन्दू कुश पर्वत है, जो हिमालय की पर्वत श्रृंखला का ही एक अंग है। हिन्दुकुश पर्वत के दोनों ओर का प्रदेश जो अब अफघानिस्तान के अन्तर्गत है, प्राचीनकाल में वह भारत का ही अंग था। उत्तर-पूर्व में हिमालय की एक श्रृंखला दक्षिण की ओर झुकती है, और लुशेई, नागा व पतकोई पहाडियों के रुप में बंगाल की खाड़ी तक चली जाती है।

प्रकृति ने भारत को एक विशाल दुर्ग के समान बनाया है जो पर्वत-श्रृंखलाओं और समुद्र से घिरा हुआ है, जैसी सुंदर और स्वाभाविक सीमा भारत की है, वैसी विश्व में शायद ही किसी अन्य देश की हो।

जैन मान्यता भी ऐसी ही एकता को प्रस्तुत करती है कि भारत जम्बुद्वीप के दक्षिणी भागमें स्थित है। इस के उत्तर में हिमवान पर्वत है और मध्य में विजयाद्ध पर्वत। पश्चिम में हिमवान से निकली हुई सिन्धु नदी बहती है और पूर्व में गंगा नदी, जिससे उत्तर भारत के तीन विभाग हो जाते हैं, दक्षिण भारत के भी पूर्व, मध्य और पश्चिम दिशाओं में तीन विभाग हैं। ये ही भारत के छ खंड हैं, जिन्हें विजय करते कोई सम्राट चक्रवर्ती की उपाधि प्राप्त करता था।

अतीत भारत का चित्रण :

भारत की वर्तमान परिस्थियों एवं समस्याओं पर जब हम विचार करते हैं, तो अतीत और भविष्य के चित्र बरबस मेरी कल्पना की आँखो के समक्ष उभर कर आ जाते हैं। इन चित्रों को वर्तमान के साथ सम्बद्ध किये बिना वर्तमान-दर्शन नितान्त अधूरा रहेगा, भूत और भावी के फ्रेम में मढ़कर ही वर्तमान के चित्रकों सम्पूर्ण देखा जा सकता है। कविने काव्य में अतीत का चित्रण खींचते हुए लिखा है -

उन बलिदानों की पूजा हैं, जिनसे यह भारत देश टिका
उन वीरों को शत शत प्रणाम आँसु पर जिनका शीश बिका।[१]

***

प्राचीन भारत के अध्ययन से वह गरिमा मंडित स्वर्णिम चित्र हमारे समक्ष उपस्थित हो जाता है। जिनकी स्वर्ण रेखाएँ पुराणों और स्मृतियों के पटल पर अंकित हैं। रामायण और महाभारत की तूलिका से संजोई हुई हैं। जैन आगमों और अन्य साहित्य

---

१ "वीरायण", कवि मित्रजी, सर्ग-१, "पुष्प प्रदीप" पृ.२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में छविमान हैं। बौद्ध त्रिपिटकों में भी उसकी स्वर्ण आभा सर्वत्र बिखरी हुई हैं। भारत के अतीत का वह गौरव सिर्फ भारत के लिए ही नहीं, किन्तु समग्र विश्व के लिए एक जीवन आदर्श था। कवि 'रघुवीर शरण मित्र' ने "वीरायण" काव्य में अपने भावों को उद्बोधन करते हुए लिखा है -

जो त्यागी है, वह योद्धा है, जो क्षमाशील है वह वीर व्रती।
जो सहनशील वह धरा गगन, युग-युग का सूरज धीरज व्रती ॥[१]

***

भगवान महावीर का यह वचन कि देवता भी भारत जैसे आर्य देश में जन्म लेने के लिए तरसते हैं। इतिहास के उन पन्नों को उलटते ही एक विराट् जीवन दर्शन हमारे सामने उपस्थित होता है। त्याग, स्नेह और सद्भाव की वह सुन्दर तस्वीर खिंच जाती है, जिसके प्रत्येक रंगमें एक आदर्श, प्रेरणा और विराट् की मोहक छटा भरी हुई है। त्याग और सेवा की अखण्ड ज्योति जलती हुई प्रतीत होती है। कवि ने महावीर काव्य में अपने उद्गारों को व्यक्त करते हुए लिखा है।

समभाव भवो जन-जन में, जन-मन को शुद्ध बनाओ।
तप और त्याग के जाकर घर-घर में दीप जलाओं ॥[२]

***

इस उज्ज्वल अतीत को देखते है तो मन श्रद्धा से भर आता है। भारत के उन आदर्श पुरूषों के प्रति कृतज्ञता से मस्तक झुक जाता है, जिन्होने स्वयं अमृत प्राप्त किया और जो भी मिला उसे अमृत बाँटते चले गए। अतीत के इस स्वर्णिम चित्र के समक्ष जब हम वर्तमान भारतीय जीवन का चित्र देखते हैं तो मन सहसा विश्वास नहीं कर पाता कि क्या यह उसी भारत का चित्र है ? कवि रामकृष्ण शर्माजी भगवान महावीर काव्य में अपने हृदय के भावों को व्यक्त करते हुए लिखते हैं।

शश्य श्यामला पूर्ण धरा हो, हर उपवन में फूल खिलें।
भेद भावको भूल सदाजन, प्रेम भावसे गले मिलें ॥[३]

***

---

१. "वीरायण", कवि मित्रजी, सर्ग-१५ "युगान्तर", पृ.३४९
२. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-८, पृ.३४७
३. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, पृ.२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जागरण गीत :

इस काल के कवियों ने जागरण गीत लिख कर देश के युवक-वर्ग को चेतना प्रदान की। गांधीवाद से प्रभावित अहिंसा और अन्य का जयघोष करने वाले जागरण-गीत हिन्दी कवियों के काव्यों में मिलते हैं -

युद्ध बंद-हो, पुजे अहिंसा, विश्वशान्ति के दीप जलें।
धरती पर हो स्वर्ग सकल जन महावीर के मार्ग चलें। [१]

***

शान्ति अहिंसा, अमृत सबके हृदय भरो।
युद्ध न हो इश भू-पर शस्त्र संहार हटे ॥ [२]

प्रायः प्रत्येक कविने देश के नौजवानों मे स्वदेशाभिमान जागरण किया और मुक्ति का संदेश प्रेषिक किया। इन के गीतों में आक्रोश और करूणा के स्वर मिश्रित है। सुभद्राकुमारी चौहान ने ''वीरों का कैसा हो वसंत'' और ''झाँसी की रानी'' जैसे गीत लिखकर प्रेरणा की चिनगारी फूंक दी।

अभियान गीत :

जागरण गीतों की तरह अभियान गीत इस युग में राष्ट्रीय चेतना को उत्तेजित करने हेतु लिखे गए। इन गीतों में राष्ट्र का दर्प और ओज ही प्रतिध्वनित हुआ। इनमें सेवा, त्याग और कर्मयोग की भावनाएँ सर्वोपरि थीं, जिन में स्वराज्य का जन्मसिद्ध भाव मुखरित हो रहा था। प्रायः प्रत्येक कवि ''बढ़े चलो'' की प्रेरणा देकर कठिनाईयों, दुर्गमताओं को पार करने का मंत्र प्रदान कर रहा था।

वर्तमान भारत का चित्रण :

कवि अपने युग का यथार्थ चित्र अंकित करता है। वह अपने दायित्व का निर्वाह उस चितेरे की भाँति करता है जो अपने चित्र द्वारा युगको महान दृष्टि प्रदान करता है। कवि अपने काव्य-सृजन द्वारा युग में व्याप्त असत् तत्वों का यर्थार्थ अंकन कर उसे दूर करने के लिए जन-मानस तैयार करता है। उसकी पद्धति क्रांति की भी हो सकती है और शांति की भी।

---

१. ''भगवान महावीर'' : कवि शर्माजी, पृ.३

२. वही, ''आरती'' पृ.८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिन्दी-कवियों ने अपनी काव्य-रचनाओं में युग का जो यथार्थ अंकन किया है वह चिरस्मरणीय है। कविने क्रान्ति के स्वर में जयघोष कर देश को नई दिशा दी, और साहित्य को नया रुप।

आज का मनुष्य दिशा-हीन सा उड़ता जा रहा है। जिसे रूकने की फुर्सत नहीं हैं, और सामने कोई मंजिल नहीं हैं। अपने क्षुद्र, स्वार्थ, दैहिक भोग और हीन मनोग्रंथियों से वह इस प्रकार ग्रस्त हो गया है कि उसकी विराट्ता उसके अतीत, आदर्श, उसकी अखण्ड राष्ट्रीय भावना सब कुछ लुप्त हो गई हैं। जो व्यक्ति सत्य, संयम, करूणा और समता को हृदयमें धारण करता है। वही व्यक्ति विश्व-विजय की उन्नत्त सीढी पर चढ सकता है। किन्तु जो क्रोधानिग्न में दिन रात जलता रहता है वह मानव अखण्ड राष्ट्रीय एकता की भावना को जागृत नहीं कर सकता। परन्तु जीवन में सब कुछ खो देता है। कवि ने काव्य में उस क्रोधान्ध व्यक्ति की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है -

ऐसे ही पल में तो मानव
निज बुद्धित्व को खो देता।
आवेश भरा कुछ भी करता,
सबकुछ एक बारे में खो देता॥ [१]

***

भारतीय चिन्तन ने मनुष्य के जिस विराट् रुप की परिकल्पना की थी वह आज कहाँ ? हजारों हजार चरण मिलकर जिस अखण्ड मानवता का निर्माण करते थे, जिस अखण्ड राष्ट्रीय चेतना का विकास होता था, आज उसके दर्शन कहाँ हो रहे हैं ? आज की संकीर्ण मनोवृत्तियाँ देखकर मन कुलबुला उठता है कि क्या वास्तव में ही मानव इतना क्षुद्र और इतना दीन-हीन होता जा रहा है कि अपने क्षुद्र स्वार्थो और अपने कर्तव्यों के आगे पूर्ण विराम लगाकर बैठ गया है। स्वयं का ही नहीं, पड़ोशी के प्रति भी कुछ कर्तव्य है, कुछ हित है। समाज, देश और राष्ट्र के लिए भी कोई कर्तव्य होता है, इसके लिए भी सोचिए। भारत का दर्शन नेति नेति कहता आया है, इसका अर्थ है कि जितना आप सोचते हैं ओर जितना आप करतें हैं उतना ही सब कुछ नहीं हैं, उससे आगे भी अनन्त सत्य है, कर्तव्य के अनन्त क्षेत्र पड़े हैं। मगर आज हम यह संदेश भूलते जा रहे हैं और हर चिन्तन कर्तव्य के आगे इति इति लगाते जा रहे हैं यह क्षुद्रता यह बौनापन

---

१. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, चतुर्थ सोपान, "क्रोध", पृ.१५०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आज राष्ट्र के लिए सबसे बड़ा संकट हैं। राष्ट्रीय चेतना को जागृत करना हो तो मानव के गुण ही मानव को उन्नत्त-श्रेष्ठ बना सकता है, वही मानव एक दिन देव स्वरुप धारण कर लेता है। ''जय महावीर'' काव्य में इसी भाव को प्रगट करते हुए लिखते हैं -

गुण ही मानव को मानव से
उन्नत्त श्रेष्ठ बनाते हैं।
अपनेपन को विकसित करके
मनुज देव बन जाते हैं। [१]

राष्ट्रीय-स्वाभिमान की कमी :

आज मनुष्य में राष्ट्रीय स्वाभिमान की कमी हो रही है। राष्ट्रीय चेतना लुप्त हो रही है। अपने छोटे-से घोंसले के बाहर देखने की व्यापक दृष्टि समाप्त हो रही हैं। जब तक राष्ट्रीय स्वाभिमान जागृत नहीं होता, तब तक कुछ भी सुधार नहीं होगा। घरमें दुकान में या दफ्तर में कहीं भी आप बैठें, मगर राष्ट्रीय स्वाभिमान के साथे बैठें। अपने हर कार्य को अपने क्षुद्र हित की दृष्टि से नहीं, राष्ट्र के गौरव की दृष्टि से देखने का प्रयत्न कीजिए। आपके अन्दर और पडोशी के अन्दर जब तक एक ही प्रकार की राष्ट्रीय चेतना जागृत होगी तब एक समान अनुभूति होगी और आप के भीतर राष्ट्रीय स्वाभिमान जाग उठेगा -

व्यक्ति प्रमुख इकाई होती, राज समाज व्यक्ति से बनता।
व्यक्ति की निर्मलता से ही, सर्व शुद्धता सानक तनता॥
केवल व्यक्ति बने विकसित तो, सर्व समाज भी विकसित होता।
राष्ट्र बनेगा पूर्ण शुद्ध फिर, सारा जगत उल्लसित होगा॥ [२]

***

कवि ''विद्याचंद्रसूरि'' ने महावीर काव्य में भगवान की अमृतमय वाणी का उपदेश देते हैं कि जिसके जीवन में सत्य, अहिंसा और अनेकान्त रोम-रोम में व्याप्त हैं वही व्यक्ति कल्याण की मंजिल को प्राप्त कर सकता हैं, वही व्यक्ति राष्ट्रीय एकता का अनुभव कर सकता है -

---

१. ''जय महावीर'' : कवि माणकचन्दजी, पंचम सर्ग, पृ.५०

२. ''भगवान महावीर'' : कवि शर्माजी, ''तीर्थंकर चिंतन'', सर्ग-२१, पृ.२२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन् १९४७ में जब हम आजाद हुए थे, उन दिनों में हमारे अन्दर राष्ट्रीयभाव गूँज रहा था जो हम सब को परस्पर जोडे हुए था। तब न रिश्वत की शिकायत थी, न भ्रष्टाचार की, किन्तु धीरे-धीरे वातावरण बदल गया। कुछ लोग शासक बन गए, कुछ अधिकारी और जब उन्होने देखा कि कुछ अपने रिश्तेदार हैं, जान-पहचानवाले हैं, उनका भी कुछ काम बनना चाहिए तो भ्रष्टाचार फैलने लगा।

हमारे अन्दर का राष्ट्रीय दृष्टिकोण लुप्त होता गया। समस्या को हम राष्ट्रीय दृष्टि के स्थान पर वैयक्ति के दृष्टि से देखने लगे। कवि ने काव्य के द्वारा हृदय के उद्गारों को अभिव्यक्त किया है -

उपदेश यहीं था प्रभु का
मानव मानव ही भाई।
मानव के बीच घृणा की
क्यों व्यर्थ खोदते खाई ॥[२]

***

आज पैसा तो कमाते हैं, पर यह समझने लगे कि सार्वजनिक कार्यों में खर्च करना तो सरकार का काम है। पैसा उनके पास इकट्ठा होता जाता है और वे जनता के घृणापात्र बन जाते हैं। वर्ग विद्वेष, प्रान्तीय विग्रह इन्हीं घृणाओं के परिणाम हैं। इसका इलाज यही है कि हमारे भीतर राष्ट्रीय भावना जगे। हम अपने व्यक्तित्व को हीन नहीं समझे और अपने व्यक्तित्व को समान ही प्रत्येक व्यक्तित्व का आदर करें।

मैं सोचती हूँ कि गांधीजी की रामराज्य की कल्पना को चरितार्थ करने के लिए सबसे पहले हमें राष्ट्रीय मूल्यांकन की पद्धति को बदलना होगा। दृष्टिकोण में परिवर्तित करना होगा। अपने व्यक्ति का विकास धन या सत्ता से नहीं, किन्तु अपने आत्मबल से करना होगा। इसी आधार पर समूचे राष्ट्र का मूल्यांकन आंकना होगा। राष्ट्रीय जीवन में संयम और चारित्र की प्रधानता स्थापित करनी होगी। तपोनिष्ठ बनना होगा। तप का

---

१. "चरम तीर्थंकर महावीर" : कवि विद्याचन्द्रसूरि, पद-२५५, पृ.६७

२. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-८, पृ.३४५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ सिर्फ सहन करना ही नहीं, किन्तु सहिष्णुता, उदारता और श्रम निष्ठा को महत्व देना है। सत्य की राह पर चलना होगा। अंत में सत्य की विजय होती है। कवि अभयजीने सत्य का विश्लेषण करते हुए काव्य के एक पद में लिखा है -

सत्य मनुज की कडी है,
इस पर वही खरा उतरे।
जिसका हृदय खरा सोना हो,
तपकर वही खरा उतरे ॥ [१]

***

प्रत्येक व्यक्ति में राष्ट्रीय चेतना जगेगी, राष्ट्रीय गौरव की अनुभूति होगी और राष्ट्र उनके गौरवशाली व्यक्तित्व से उनके चरित्र और आत्मबल से समृद्ध होगा तो फिर रामराज्य की कल्पना परियों की देश की कहानी नहीं, किन्तु इसी धरती का जीता जागता चित्र होगा, ऐसा मेरा दृढ विश्वास है।

*****

महावीरकालीन युगीन परिस्थितियाँ

राजनीतिक परिस्थितियाँ :

राजनीतिक दृष्टि से भी, महाभारत-युद्ध के उपरान्त भारतीय राजनीति छिन्न-भिन्न हो गई थी। राष्ट्रीय एकता का अभाव हो चुका था। उस समय एक नहीं, अनेक राजा थे और सभी अपने-अपने राज्य में पूर्ण स्वाधीन थे। फिर भी इतना अवश्य या कि जनता अपने नागरिक अधिकारों के संरक्षण में पूर्णतया जागरूक थी। राजा के अन्यायी या अत्याचारी होने पर उसे पदच्युत भी किया जाता था। शक्तिशाली राजा दूसरे निर्बल राज्य पर आक्रमण कर लूट-खसोट मचाता था। काशी कौशल, वैशाली, कपिलवस्तु आदि अनेक राज्यों में गणतन्त्रीय प्रणाली थी। अंग मगध, वत्स, सिंधु-सौवीर, अवंती आदि देशों में जहाँ राजतन्त्र था। कविने काव्य में तत्कालीन राजनीतिक स्थिति को उभारा है -

प्रजातन्त्र में राजतन्त्र था, राजतन्त्र में क्रीडा।
राजाओं की मनमानी थी, नाच रही थी व्रीड़ा ॥

---

१. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, "सत्य" चतुर्थसोपान, पृ.१३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमः देश के नये प्रहरियों ! नमः पुरानी छाया ।
नाच रही है नचा रही है, अधिकारों की माया ॥ [१]

***

राजतन्त्र में सामान्य जन धार्मिक रुढियों व सामाजिक दासता से पीड़ित था । छोटी-छोटी बातों को लेकर गणराज्यों में भी युद्ध ठन जाते थे । राजाओं की तरह धनिक व्यापारीवर्ग भी पशुओं की भाँति मनुष्यों को गुलाम बनाता था । दास-दासियों का लम्बा-चौड़ा परिवार उनकी सेवा में स्वयं को समर्पित किये खड़ा रहता था । इस प्रकार राजनैतिक दृष्टि से भी यह समय उथल पुथल था । उस में स्थिरता व एकरुपता नहीं थी । कई स्थानों पर प्रजातन्त्र गणराज्य थे, जिनमें नियमित रुप से प्रतिनिधियों का चुनाव होता था । जो प्रतिनिधि राज्य-मण्डल या सांथागार के सदस्य होते, वे जनता के व्यापक हितों का भी ध्यान रखते थे ।

तत्कालीन गणराज्यों में लिच्छवी गणराज्य सबसे प्रबल था । इसकी राजधानी वैशाली थी । महाराजा चेटक इस गणराज्य के प्रधान थे । महावीर स्वामी की माता त्रिशला इन्हीं महाराजा चेटक की बहिन थी । काशी और कौशल के प्रदेश भी इसी गणराज्य में शामिल इनकी व्यवस्थापिका-सभा । "वज्जियन राजसंघ" कहलाती थी ।

लिच्छवी गणराज्य के अतिरिक्त शाक्य गणराज्य का भी विशेष महत्व था । इसकी राजधानी "कपिलवस्तु" थी । इसके प्रधान महाराजा शुद्धोदन थे, जो गौतम बुद्ध के पिता थे । इन गणराज्यों के अलावा मल्लगण राज्य, जिस की राजधानी कुशीनारा और पावा थी, कोल्य, गणराज्य, आम्लकष्या, बुलिगण, पिप्पलिवन के मोरीयगण आदि कई छोटे छोटे गणराज्य भी थे । इन गणराज्यों के अतिरिक्त मगध, उत्तरी कौशल, वत्स, अवन्ति, कलिंग, अंग, बंग आदि कतिपय स्वतंत्र राज्य भी थे । इन गणराज्यों में परस्पर मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे । देशकी शासन व्यवस्था एक ओर गणराज्यों की लोकतन्त्रात्मक पद्धति पर आधरित थी और दूसरी ओर राजतन्त्र व्यवस्था स्वतंत्र रुपसे विकसित हो रही थी । गणतन्त्रों में पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष एवं दलबंदी विद्यमान थी । राज्यों में परस्पर स्पर्धा बनी रहती थी ।

राजनीति के क्षेत्र में भी भगवान महावीर की उपलब्धि किसी प्रकार कम नहीं कहीं जा सकती । जिस संक्रांति काल में उनका जन्म हुआ था, वह राजनीति का भी

---

१. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "पुष्प प्रदीप", सर्ग-१, पृ.२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वथा ह्रासकाल था। भारत ने प्रजातंत्र का नवीन प्रयोग कर जो कीर्ति प्राप्त की थी, उस प्रजातंत्र का मात्र ढांचा ही शेष रह गया था। प्रजातंत्र में भी अधिनायकवाद का उभरता प्रचंड काला नाग जनता का रक्तपान करने लगा था। प्रजातंत्र की जन्मभूमि वैशाली में जननायक जन से हटकर केवल नायक के आसन पर आशीन हो चुके थे। और तो क्या, राजा और राजा से उपर महाराजा का उच्च आसन भी रिक्त नहीं था, तत्कालीन, प्रजातन्त्रों में। इतिहास महाराजा चेटक को हमारे सामने सर्वाधिकार प्राप्त महाराजा के रुप में ही उपस्थित करता है। स्वयं भगवान महावीर का जन्म ज्ञातृ गणतंत्र के वैभवशाली एक सभ्रांत राजकुल में हुआ था। प्रजातन्त्र की अनेक आलोकतंत्रीय खामियों ने, नित्य के होनेवाले उत्पीड़नों ने ही भगवान को तथाकथित प्रजातंत्री जननायकों तथा एक तंत्री निरंकुश राजाओं के विरुद्ध बोलने को विवश कर दिया था। यहाँ तक कि उन्होने अपने भिक्षुओं को राजकीय अन्न तक भी ग्रहण करने का निषेध कर दिया था।

उन्होने केवल आनेवाले कठिन भविष्य की ओर तत्कालीन जननायकों का ध्यान ही आकृष्ट नहीं कराया, उन्हें सही रुप में जनप्रतिनिधि के योग्य कर्तब्य-पालन की चेतावनी भी दी। महावीर ने कहा था - कोई कैसा ही महान क्यों न हो, महाआरंभ और महापरिग्रह नरक के द्वार है।[१] समग्र भाव से प्रजा के प्रति अनुकम्पाशील होना ही राजा का सही अर्थ में राजत्व है। यदि और कुछ उच्चतर पावन कर्म नहीं कर सकते हो तो कम से कम साधारण आर्य कर्म तो करो। राजनीति के क्षेत्र यह कितना महान उद्बोधन था! कौन कह सकता है कि वैशाली जनतंत्र का विघटन भगवान महावीर के उक्त साम्य धर्म को यथारुप में ग्रहण न करने कारण ही नहीं हुआ? यदि वैशाली के जननायक अपने को साम्यभूमि पर उतार पाते, बिखरे जनगण को समधर्मा रुप में अपनाने का साहस अपनाते तो वैशाली का जनमानस कभी विघटित नहीं होता। मगध की राजशक्ति वैशाली को चिरकाल में भी ध्वस्त नहीं कर पाती।

सामाजिक परिस्थितियाँ :

वर्धमान महावीर क्रान्तिकारी व्यक्तित्व को लेकर प्रगट हुए। उनमें स्वस्थ समाज के निर्माण और आदर्श व्यक्तित्व के निर्माण की तड़प थी। यद्यपि स्वयं उनके लिए समस्त ऐश्चर्य उपलब्ध थे, तथापि उनका मन उनमें नहीं लगा। वे जिस बिंदु पर व्यक्ति और समाज को ले जाना चाहते थे उसके अनुकूल परिस्थितियाँ उस समय न

१. कल्पसूत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थी। धार्मिक जड़ता और अन्ध श्रद्धा ने सबको पुरूषार्थ रहित बना दिया था, आर्थिक विषमता अपने पूरे उभार पर थी। जाति भेद और सामाजिक वैषम्य समाज में आसूर बन चूके थे। गतानुगतिकता का छोर पकड़ कर ही सभी चले जा रहे थे। इस विषम और चेतना रहित परिवेश में महावीर का दायित्व महान् था राजघराने में जन्म लेकर भी उन्होंने अपने दायित्य को समझा। दूसरों के प्रति सहानुभूति के भाव उनमें जगे और एक क्रांतिदर्शी व्यक्तित्व के रुप में वे सामने आये, जिसने सबको जागृत कर दिया, अपने-अपने कर्तव्यों का भान करा दिया और व्यक्ति तथा समाज को भूल भूलैया से बाहर निकाल कर सही दिशा-निर्देश ही नहीं किया वरन् उनका मार्ग भी प्रशस्त कर दिया।

वास्तव में सामाजिक क्षेत्र में भगवान महावीर की देन को सर्वथा क्रान्तिकारी देन कहा जायेगा। समत्व की चर्चा मनुष्य समाज में प्रथम बार उनके द्वारा पुनर्जीवित हुई, व्यवहार में समता का जीवन मनुष्यों को प्रथम बार उनके द्वारा प्राप्त हुआ। शुद्र और नारी समाज के लिए उन्होने उत्थान का मार्ग प्रशस्त कर दिया। चिरपतितों और उपेक्षितों के जीवन में प्रथम बार जागृति आई। युगान्तर स्पष्ट दर्शित होने लगा। शूद्रों की छाया से अपवित्र होने की आशंका पवित्र विप्रों के लिए नहीं रह गई।[१] नारी को केवल भोग्य या दासी बनाकर नारकीय जीवन बिताने की आज्ञा देनेवालों को अपनी क्रूरता का पश्चाताप् होने लगा। भगवान महावीर के जन्म से पूर्व का इतिहास आज अलभ्य नहीं रह गया है। हम उसके पुरातन पृष्टों में समाज का जो हृदयद्रावक रुप पाते हैं, उसके स्मरण मात्र से रोमांच हो आता है। बाजार में खुले आम मातृ-जाति का क्रय-विक्रय होता था, उन्हें पशुओं की तरह खरीदने के लिए सडकों पर बोलियाँ लगाई जाती थी।[२] इतना ही क्यों, यदि उन दास-दासियों की मृत्यु स्वामी की प्रताडनाओं से हो जाती थी, तो उसकी सुनवाई के लिए कहीं स्थान नहीं था। कैसी विडम्बना थी कि उन दासों के हाथों भिक्षा ग्रहण करने में भिक्षुक भी अपना अपमान मानते थे। भगवान महावीर ने प्रथम बार इस जघन्य वृत्ति के लिए समाज को चेतावनी दी। सृजनात्मक विप्लवी घोषणा की। इतिहास के पृष्ठों में चंदनबाला की कष्ट कथा तत्कालिन मनुष्य समाज की दानवी-प्रवृत्ति एवं सामाजिक विकृति दोनों को ही उजागर करनेवाली कथा है।

महावीर की क्रान्तिधर्मिता का पहला आयाम है सामाजिक क्षेत्र। तत्कालीन

---

१. उत्तराध्ययन सूत्र, १२ वाँ अध्ययन

२. महावीर चरियं गुणचन्द्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाज स्पष्ट रुप से दो वर्गों में विभक्त था। कुलीन तथा निम्न वर्ग। जिन्हें हम शोषक एवं शोषित वर्ग के रुप में समझ सकते हैं। अत्याचार तथा शोषण की आड़ में तथाकथित उच्च वर्ग ने सारे अधिकारों का केन्द्रीकरण करके शोषिक वर्ग को घुट-घुट कर जीवन यापन करने को मजबूर किया। कवि ने तत्कालीन काव्य में अमीर-गरीब वर्ग का चित्रण प्रस्तुत किया है-

ये धन कुबेर नित बना
भव्य प्रादास सदन
सुख की अभिलाषा और
अधिक जागृत पल क्षण
वह भी मानव-गृह हीन
कि निःसंबल निर्बल
रे दीन हीन जो सदा
भोगता दुःख केवल[१]

तत्कालीन समाज में चारों ओर जातिवाद का बोलबाला था। जाँति-पाँति की संकीर्ण सीमाएं, वर्ण-भेद की अमानवीय विषमताएँ ऊँच-नीच की दानवी भावनाएँ, छूआ-छूत की मनमानी कल्पनाएँ मानव समाज के नस नस में गहरी पैठ गई थी। सामाजिक मर्यादायें टूटने लगीं। रूढियों और अन्ध विश्वासों के निर्वाह हेतु होनेवाले व्यय ने उनकी स्थिति और भी दयनीय बना दी। दहेज का दूषण समाज को कलंकिता बना रहा था। समाज में व्यभिचार पनप रहा था आर्थिक वैषम्य के कारण समाज में द्वेष और संघर्ष बढ रहे थे। धर्म-नेता पुरोहितों के हाथ में समाज की सारी शक्ति केन्द्रित थी। समाज के सूत्रधार और भाग्यविधाता होने के नाते उन्होने मन चाही करने में कोई कमी न उठा रखी थी। उनकी यह सार्वभौम शक्ति न योग्यता पर निर्भर थी, न सेवा पर और न सदाचार और सत्कर्म की उच्च मर्यादाओं पर। वह थी एक मात्र बपौती पर आधारित। इन शक्ति का प्रयोग पुरोहित वर्ग ने इतनी उच्छृंखलता के साथ किया कि जिससे दूसरे मुक्त सांस भी न ले सकें। वहाँ ब्राह्मण के यहाँ जन्म ले लेने मात्र से पवित्रता एवं उच्चता का मानपत्र मिल जाता था; फिर चाहे वह कितना ही पथ-भ्रष्ट क्यों न हो। शास्त्रों के पठन पाठन का एक मात्र अधिकार ब्राह्मण-वर्ग को ही था और शुद्र, वह चाहे

१. "तीर्थंकर महावीर", कवि गुप्तजी, सर्ग-२, पृ.६४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कितना ही सच्चरित्र योग्य एवं प्रभावशाली क्यों न हो, वेद पढना तो दूर, यदि वह कहीं वेदमन्त्र सुन भी ले, तो उनके कानों में उबलता हुआ गरम गरम शीशा भर दिया जाता था। शूद्रों की छाया तक से परहेज किया जाता था। आम रास्तों पर चलने तक की उन के लिए मना ही थी जन्मजात पवित्रता और जातपांत तथा ऊँच-नीच की आसुरी सीमाओं ने मानवता के टुकड़े-टुकड़े कर दिये थे।

इस प्रकार भगवान महावीर युगीन समाज, जातिगत, श्रेष्ठता, स्वार्थ, संघर्ष और वेमनस्य की भावनाओं से जर्जर और पीड़ित हो रहा था। क्रूर, स्वार्थ और लिप्सा का चित्रण देखिए :

हिंसा और असत्य जगत पर
अपने पञ्जे गाड़े थे।
क्रूर स्वार्थ, लिप्सा और काम-
मानवता के आड़े थे॥ [१]

***

ऐसे समय में राजसत्ता और अपार वैभव को ठोकर मारकर महावीर अकिंचन बन आत्मकल्याण एवं लोककल्याण के लिए साधना के पथ पर बढे चले। साढे बारह वर्ष की कठोर तपस्या के बाद उन्होने क्रान्ति का शंखनाद किया। तथा कथित निम्न वर्ग को गले लगाया और उनमें व्याप्त हीन भावना को समाप्त कर विश्वास का व्यापक सम्बल प्रदान किया। उन्होने स्पष्ट रुप से कहा कि जन्म से कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नहीं होता, व्यक्ति का कर्म ही उसे ऐसा बनाता है।

उस समय नारी जाति की अवस्था भी शोचनीय थी नारी जो चार दीवारों में कैद थी। बाजारों में खुल्लेआम नारियों की बोली लगती थी। कवि ने काव्य में नारी की इसी दयनीय स्थिति का वर्णन किया है -

भूख-प्यास से पीड़ितनारी
नीलामी पर चढती थी
अधनंगी काया पर कोड़े।
खाती थी और हंसती थी॥ [२]

***

---

१. "श्रमण भगवान महावीर", कवि योधेयजी, प्रथम सर्ग-३६
२. वही, पृ.३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवाह प्रथा :

विवाह-व्यवस्था, प्राचीनकाल से लेकर आज तक मानवीय समाज व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग रही है। धार्मिक दृष्टि से वह स्वपत्नी या स्वपति सन्तोषव्रत की व्यवस्था करता है। जिसका तात्पर्य है व्यक्ति को अपनी काम वासना को स्वपति या स्वपत्नी तक सीमित रखना चाहिए। मतलब यह है कि यदि ब्रह्मचर्य का पालन सम्भव न हो तो विवाह कर लेना चाहिए। विवाह विधि के सम्बन्ध में आचार्यो की क्या धारणा थी, इसकी सूचना हमें आगमों और आगमिक व्याख्याओं में प्राप्त नहीं होती है। जैन-विवाह विधि का प्रचलन पर्याप्त रुप से परवर्ती है और दक्षिण के दिगम्बर आचार्यों की देन है तो हिन्दू-विवाह विधि का जैनीकरण मात्र है। उत्तर भारत के जैनों में तो विवाह विधि को हिन्दूधर्म के अनुसार ही सम्पादित किया जाता है। आज भी श्वेतांबर जैनों में अपनी कोई विवाह पद्धति नहीं है। जैन आगमों और आगमिक व्याख्याओं से जो सूचना हमें मिलती है। उसके अनुसार युगलिया काल के युगल रुप से उत्पन्न होनेवाले भाई-बहन की युवावस्था में पति-पत्नी का जीवन व्यतीत करते थे। जैन पुराणों के अनुसार सर्वप्रथम ऋषभदेव से ही विवाह प्रथा का आरम्भ हुआ।[१] उन्होने भाई-बहनों के स्थापित होनेवाले यौन सम्बन्ध (विवाह प्रणाली) को अस्वीकार कर दिया। उनकी दोनों पुत्रियों ब्राह्मी और सुंदरी ने आजीवन ब्रह्मचारिणी रहने का निर्णय किया। फलतः भरत और बाहुबालि का अन्य वंशो की कन्याओं से विवाह किया गया। जैन साहित्य के अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आगमिक काल तक स्त्री विवाह सम्बन्धी निर्णय करने को स्वतंत्र थी और अधिकांश विवाह उनकी सम्मति से ही किये जाते थे। जैसा कि 'ज्ञाता' में[२] मल्ली और द्रोपदी के कथानकों से ज्ञात होता है। ज्ञाताधर्मकथा में पिता स्पष्ट रुप से पुत्री से कहता है कि यदि मैं तेरे लिए पति चुनता हूँ तो वह तेरे लिए सुख-दुःख का कारण हो सकता है, इसलिए अच्छा यही होगा तूं अपने पति का चयन स्वयं ही कर। मल्ली और द्रौपदी के लिए स्वयम्बरों का आयोजन किया गया था।

पूर्वयुग में ब्राह्मी, सुंदरी, मल्ली, आगमिक युग में चंदनबाला, जयन्ती आदि ऐसी अनेक स्त्रियों के उल्लेख प्राप्त होते हैं, जिन्होने आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन स्वीकार

---

१. आवश्यक चूर्णि, भा.१, पृ.१५२

२. ज्ञाताधर्मकथा- मल्ली एवं द्रौपदी कथानक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया और विवाह अस्वीकार कर दिया।[1] आगमिक व्याख्याओं में उपलब्ध विवाह के विविध रूपों का विवरण प्रस्तुत किया हैं।

विवाह के विविध प्रकार :

महावीर स्वामी के पूर्व में आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख आता है।

(१) बाह्य विवाह :- जब पिता अपनी कन्या को वस्त्र व आभूषणों से सुसज्जित कर किसी योग्य वर को प्रदान करे, तो इस प्रकार के विवाह को बाह्य विवाह कहा जाता था।

(२) प्राज्यापत्य विवाह :- जब वर और कन्या का विवाह-प्राज्यापत्य धर्म की वृद्धि (सन्तानोत्पत्ति)के लिए किया जाय, और पिता इसी उद्देश्य से किसी योग्य वर को अपनी कन्या प्रदान करे तो उसे "प्राज्यापत्य" विवाह कहते थे।

(३) आर्ष विवाह : - इस में वर की ओर से कन्या को गौ आदि भेट में देनी हाती थी। वधू की प्राप्ति के लिए वर कन्या पक्ष को दक्षिणा देता था।

(४) देवयज्ञ में ऋत्व क् का कर्म करते हुए जामाता को अलंकार आदि से विभूषित कन्या प्रदान करके जो विवाह किया जाता था, उसे "देव" कहते थे।

(५) आसुर :- कन्या पक्ष को भरपूर धन देकर सन्तुष्ट कर कन्या प्राप्त करके जो विवाह होता था, वह "आसुर" कहलाता था।

(६) गान्धर्व :- परस्पर स्वच्छन्द प्रेम के कारण वर और कन्या अपनी इच्छा से जो विवाह करते थे, उसे गान्धर्व कहते थे।

(७) राक्षस :- कन्या का जबरदस्ती अपहरण कर जो विवाह होता था, वह राक्षस कहाता था।

(८) पेशाच :- मद्य आदि के सेवन से मस्त हुई कन्या से विवाह सम्बन्ध स्थापित कर लेने पर ऐसे विवाह को "पेशाच" कहते थे।

इन आठ प्रकार के विवाहों में से पहले चार विवाह धर्मानुकूल माने जाते थे। पिछले चार विवाह आर्यमर्यादा के विरुद्ध थे। पर उनका भी उस युग में प्रचलन हो गया था। अतः उन्हें कानून की दृष्टि स्वीकार्य माना जाता था। उस समय क्षत्रियों में राक्षस विवाह का प्रचलन बहुत बढ़ गया था। महाभारत के अनेक स्थलों पर इन विविध प्रकार के विवाहों के गुण दोषों का विवेचन किया है।

---

१. आवश्यक चूर्णि, भाग-१, पृ.१४२-१४३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाल-विवाह :-

उस काल में बाल-विवाह की प्रथा का भी प्रारंभ हो गया था तथा नियोग की प्रथा भी प्रचलित थी। पति के मर जाने पर स्त्री देवर के साथ नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर सकती है। यदि पति जीवित हो, तो भी स्त्री पति की अनुमति से नियोग कर सकती थी। पाण्डवों की माता कुन्ती ने युधिष्ठिर आदि जो पुत्र उत्पन्न किये थे, वे नियोग द्वारा ही उत्पन्न हुए थे। इसके लिए उसे उसके पति पाण्ड ने आदेश दिया था। पाण्डु स्वयं सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ था। जैन-युग में विधिपूर्वक विवाह तो होता ही था, साथ ही उक्त अवसर पर उचित दहेज भी दिया जाता था। विशेषता यह भी थी कि उक्त दहेज वर का पिता अपने पुत्र एवं पुत्र वधू को देता था। दहेज में जीवनोपयोगी आवश्यक वस्तुएँ रहती थी।

सामान्यतया पुनर्विवाह का प्रचलन नहीं था किन्तु वैश्य एवं निम्न वर्ग में कन्याओं का यदाकदा पुनर्विवाह भी हो जाता था। ऐसे विवाह उस परिस्थिति में होते थे जब कन्या पति द्वारा छोड दी जाती थी। समाज में विवाह विच्छेद भी पाया जाता था किन्तु नारी की अपेक्षा नर ही इसका प्रयोग अधिक करता था। बहुपतित्वप्रथा का प्रायः अभाव था जब कि बहुपत्नीत्व-प्रथा अपनी चरम सीमा पर थी।

बहुपति और बहुपत्नी प्रथा :-

विवाह संस्था के सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण प्रश्न बहुविवाह का भी है। इसके दो रुप हैं बहुपत्नी प्रथा और बहुपति प्रथा। यह स्पष्ट है कि द्रौपदी के एक अपवाद को छोडकर हिन्दू और जैन दोनों ही परम्पराओं ने नारी के सम्बन्ध में एक पति-प्रथा की अवधारणा को ही स्वीकार किया और बहुपति प्रथा को धार्मिक दृष्टि से अनुचित माना गया। जैनाचार्यों ने द्रौपदी के बहुपति होने की अवधारणा को इस आधार पर औचित्य पूर्ण बताने का प्रयास किया है कि सुकुमालिका आर्या के भव में उसने अपने तप के प्रभाव पाँच पति प्राप्त करने का निदान (निश्चयकर) लिया था।[१] अतः इसे पूर्वकर्म का फल मानकर सन्तोष किया गया। किन्तु दूसरी और पुरूष के सम्बन्ध में बहुपत्नीकी प्रथा की स्पष्ट अवधारणा आगमों और आगमिक व्याख्या साहित्य में मिलती है। इनमें ऐसे अनेक सन्दर्भ हैं जहाँ पुरूषों को बहु विवाह करते दिखाया गया हैं। दुःख तो यह है कि उनकी इस प्रवृत्ति की समालोचना भी नहीं की गई है।

---

१. ज्ञाता धर्म कथा, उत्क्षिप्त नामक अध्याय-१६, पृ.४६७, सम्पादक-शोभचन्द्र भारिल्ल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपासकदशा में श्रावक के स्वपत्नी सन्तोषव्रत के अतिचारों का उल्लेख मिलता है, उसमें ''परविवाहकरण'' को अतिचार या दोष माना गया है। ''परविवाहकरण'' की व्याख्या में उसका एक अर्थ दूसरा विवाह करना बताया गया है। अतः हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि जैनों का आदर्श एक पत्नीव्रत ही रहा है।

बहुपत्नी प्रथा के आविर्भाव पर विचार करें तो हम पाते हैं कि यौगलिक काल तक बहुपत्नी प्रथा प्रचलित नहीं थी। आवश्यक चूर्णि के अनुसार सर्वप्रथम ऋषभदेव ने दो विवाह किये थे। किन्तु उनके दूसरा विवाह इसलिए आवश्यक हो गया था कि एक युगल में पुरुष की अकाल मृत्यु हो जाने के कारण उस स्त्री को सुरक्षा प्रदान करने की दृष्टि से आवश्यक था। किन्तु जब आगे चलकर स्त्री को एक सम्पत्ति के रुप में देखा जाने लगा तो स्वाभाविक रुप से स्त्री के प्रति अनुग्रह की भावना के आधार पर नहीं, अपितु अपनी काम वासनापूर्ति और सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए बहुविवाह की प्रथा आरम्भ हो गई। यहाँ हमें स्मरण रखना चाहिए कि यद्यपि समाज में बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी किन्तु इसे जैन धर्म सम्मत एक आचार मानना अनुचित होगा। जैन आगम और आगमिक व्याख्या साहित्य में यद्यपि पुरूष के द्वारा बहुविवाह के अनेक सन्दर्भ उपलब्ध होते हैं, किन्तु हमें एक भी ऐसा सन्दर्भ नहीं मिलता जहाँ कोई व्यक्ति गृहस्थोपासक के व्रतों को स्वीकार करनेके पश्चात् बहु विवाह करता है। यद्यपि ऐसे सन्दर्भ तो है कि मुनिव्रत या श्रावक व्रत स्वीकार करने के अनेक गृहस्थोपासकों को एक से अधिक पत्नियाँ थी। किन्तु व्रत स्वीकार करने के पश्चात् किसी ने अपनी पत्नियों की संख्या में वृद्धि की हो, ऐसा एक भी सन्दर्भ मुझे नहीं मिला। आदर्श स्थिति तो एक पत्नी प्रथा को ही माना जाता था। उपासकदशा में १० प्रमुख उपासकों में केवल एक ही एक से अधिक पत्नियाँ थीं। शेष सभी को एक-एक पत्नी थी, साथ ही उसमें श्रावकों के व्रतों के जो अतिचार बताये गये हैं उनमें स्वपत्नी सन्तोषव्रतका एक अतिचार परविवाहकरण है।[१] यद्यपि कुछ जैनचार्यो ने ''परविवाहकरण'' का अर्थ स्वसन्तान के अतिरिक्त अन्यों की संतानों का विवाह-सम्बन्ध करवाना माना है, किन्तु उपासकदशांग की टीका में आचार्य अभयदेवने इसका अर्थ एक से अधिक विवाह करना माना है।[२] अतः हम यह कह सकते है कि धार्मिक आधार पर जैन धर्म बहुपत्नी प्रथा का समर्थक नहीं है। बहुपत्नी

१. उपासक दशांग, अध्याय-, पृ.४२

२. वही, अभयदेव कृत वृत्ति, पृ.४३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथा का उद्देश्य तो वासना में आकण्ठ डूबना है, जो निवृत्तिप्रधान जैन धर्म की मूल भावना के अनुकूल नहीं है।

विधवा विवाह :

विधवा हो जाने के उपरान्त भी नारी की अवस्था में सामान्यतया कोई अन्तर नहीं आता था उस समय बाल कटवाना, रंगीन वस्त्र न पहनना, मांगलिक कार्यो में उपस्थित न रहना आदि हीनावस्था-सूचक कार्य विधवा स्त्रियों के लिए आवश्यक कृत्य नहीं थे और न ही सती होनी की दारूण प्रथा का ही अस्तित्व था।

विधवा स्त्री के लिए वियुक्त पति की सम्पत्ति, ज्ञाति-पुरूषों का संरक्षण या परपुरूष का ग्रहण जीवनयापन के प्रमुख थे। कभी-कभी उक्त तीनों साधनों के अभाव में स्त्री वर्ग भिक्षुणी संघ को ही अपने जीवनयापन का साधन बनाती थीं।

विधवाओं का पुनर्विवाह समाज से मान्य नहीं था, तथा ऐसी विधवा स्त्रियों का, जिनका पति मर जाता था, पुनर्विवाह नहीं होता था। आगमकाल में नियोग जैसी प्रथा का भी प्रचलन नहीं था। वस्ततः जैन धर्म में विवाह एवं सन्तानोत्पत्ति को, प्रश्रय न मिलने से उस समय न तो विधवा सामाजिक घृणा की पात्र होती थी और नहीं सन्तानप्राप्ति के हुतु पुनर्विवाह या नियोग प्रथा का अपनाना उत्तम माना जाता था।

दासी प्रथा :

परिचारिकाओं में दासियों का आधिक्य था। ये प्रायः प्रत्येक सम्पन्न परिवार में रखी जाती थी। उन पर, उनके स्वामी-वर्ग का पूर्ण अधिकार होता था और जब स्वामी से दासता से मुक्ति प्राप्त करती थी तभी मुक्त समझी जाती थी। स्त्रियाँ चार प्रकार से दासियाँ बन जाती थी -दासी की कुक्षि में जन्म लेने से, किसी से खरीदी जाने पर, प्रतिकूल परिस्थिति से स्वतः दासत्व को स्वीकार करने पर तथा युद्धक्षेत्र में बन्दी हो जाने पर।

दासियों का कार्य गृहपत्नी की आज्ञानुसार उसके प्रत्येक कार्य में सहयोग करना था। कभी-कभी कार्य विशेष के लिए भी दासी रखी जाती थी। ऐसी दासियों को विशिष्ट संज्ञा दी जाती थी-जैसे कुम्भदासी, प्रेषणकारिका आदि।

सती प्रथा और जैन धर्म :

उत्तरमध्य युग में नारी उत्पीड़न का सबसे बीभत्स रुप सती प्रथा बन गया था, यदि हम सती प्रथा के सन्दर्भ में जैन आगम देखें तो स्पष्ट रुप से हमें एक भी ऐसी घटना का उल्लेख नहीं मिलता जहाँ पत्नी पति के शव के साथ जली हो या जलादी गयी हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यद्यपि निशीथचूर्णि में एस ऐसा उल्लेख मिलता है जिसके अनुसार सौपारक के पांच सौ व्यपारियों को कर न देने के कारण राजाने उन्हें जला देने का आदेश दे दिया था और उक्त उल्लेख के अनुसार उन व्यापारियों की पत्नियां भी उनकी चिताओं में जल गई थी।[1] लेकिन जैनाचचार्य इसका समर्थन नहीं करते हैं। पुनः इस आपवादिक उल्लेख के अतिरिक्त हमें जैन साहित्य में इस प्रकार के उल्लेख उपलब्ध नहीं होते हैं, महानिशीथ में इससे भिन्न यह उल्लेख भी मिलता है कि किसी राजा की विधवा कन्या सती होना चाहती थी किन्तु उसके पितृकूल में यह रिवाज नहीं था अतः उसने अपना विचार त्याग दिया।[2] इससे लगता है कि जैनाचार्यो ने पति की मृत्यु के पश्चात् स्वेच्छा से भी अपने देह-त्याग को अनुचित ही माना है और इस प्रकार के मरण को बालमरण या मूर्खता ही कहा है। जैन धर्म और दर्शन यह नहीं मानता है कि मृत्यु के बाद पति का अनुगमन करने से अर्थात् जीवित चिता में जल मरने से पुनः स्वर्गलोक में उसी पति की प्राप्ति होती है। जैन धर्म तो कर्म सिद्धांत के प्रति आस्था के कारण यह मानता है कि पति-पत्नी अपने-अपने कर्मो और मनोभावों के अनुसार ही विभिन्न योनियों में जन्म लेते हैं।

अतः यह स्पष्ट रुप से कहा जा सकता है कि धार्मिक आधार पर जैन धर्म सती प्रथा का समर्थन नहीं करता। जैन धर्म के सती प्रथा के समर्थक न होने के कुछ सामाजिक कारण भी रहे हैं। व्याख्या साहित्य में ऐसी अनेक कथाएँ वर्णित है जिनके अनुसार पति की मृत्यु के पश्चात् पत्नी न केवल पारिवारिक दायित्व का निर्वाह करती थी, अपितु पति के व्यवसाय का संचालन भी करती थी। शालीभद्र की माता भद्रा को राजगृह की एक महत्वपूर्ण श्रेष्ठी और व्यापारी निरुपित किया गया है। जिसके वैभव को देखने के लिए श्रेणिक भी उसके घर आया था। आगमों और आगमिक व्याख्योओं में ऐसे अनेक उल्लेख हैं जहाँ कि स्त्री पति की मृत्यु के पश्चात् विरक्त होकर भिक्षुणी बन जाती थी। जैन भिक्षुणी संघ विधवाओं, कुमारियों और परित्यक्ताओं का सुरक्षित आश्रय-स्थल था। आगम साहित्य में ऐसे उल्लेख भी मिलते हैं जहाँ पति और पुत्रों के जीवित रहते हुए भी पत्नी या माता भिक्षुणी बन जाती थी। ज्ञाता धर्म कथा में द्रोपदी पति और पुत्रों की सम्मति से दीक्षित हुई थी। किन्तु इसके अलावा ऐसे उदाहरणों की विपुलता देखी जाती है जहाँ पत्नी पति के साथ अथवा पति एवं पुत्रों के मृत्यु उपरान्त विरक्त होकर संन्यास

---

१. (अ) निशीथ चूर्णि, भा.-४, उद्देशक-१६, पृ.१४, गा. ५१५६

(ब) तेसिं पंच महिलसताइं, ताणि वि अग्गिं पविट्ठाणि।

२. महानिशीथ, पृ.२१५-२१७ देखें, जैन आगम साहित्यमें भारतीय समाज, पृ.२७१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रहण कर लेती थी। कुछ ऐसे उल्लेख भी मिले हैं जहाँ स्त्री आजीवन ब्रह्मचर्य को धारण करके या तो पितृगृह मे रह जाती थी अथवा दीक्षित हो जाती थी। जैन परम्परामें भिक्षुणी संस्था एक ऐसा आधार रही है जिसने हंमेशा नारी को संकट से उबारकर न केवल आश्रय दिया है, अपितु उसे सम्मान और प्रतिष्ठा का जीवन जीना सिखाया है।

जन भाषा का प्रयोग :

भगवान महावीर ने अपनी उदात्त एवं क्रान्तियुक्त वाणी के सजीव स्पर्श से जीवन के किसी भी पहलू को अछूता नहीं छोडा। मानव-समाज की हित साधना के लिए ही तो वे तीर्थंकर के रुप में धर्म प्रचार के सार्वजनीन रंगमंच पर चमके थे। एक क्रान्तिकारी विचार धारा के उन्नायक होने के नाते जहाँ उन्होने तत्कालीन अनेक रीति-रिवाजों, धार्मिक विधि विधानों और मानवीय दृष्टिकोणों में न्याय-मूलक सुधार किये, वहां भाषा के नाम पर भी एक बहुत बडी क्रान्ति की। पण्डित-वर्ग की संस्कृत भाषा-जिसे देव भाषा कहते थे - को छोडकर लोक में धर्म प्रचार भी उनका एक महत्वपूर्ण सुधार था। अपने पूर्ववर्ती तीर्थंकरो के समान ही भगवान महावीर ने जनता के अत्यन्त निकट पहुँचने की दृष्टि से ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, पुरुष बाल, वृद्ध, पठित, अपठित, जन साधारण तक विशुद्ध आत्म-धर्म का प्रकाश पहुँचाने के न्याय विचार से जनता की बोलचाल की प्राकृत भाषा को धर्म प्रचार के लिए सर्वथा उपयुक्त समझा।

उनके प्रवचन लोकभाषा में होने के कारण उसमें किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं थी। श्रोता सीधे उनकी बात सुनते, समझते और हृदयंगम कर लेते थे। उस युग में आज के वैज्ञानिक साधनों का अभाव होते हुए भी भगवान महावीर का उपदेश तथा शासन इतनी शीघ्रता के साथ लोकप्रिय हो गया था, उसका एक कारण यह भी था कि उनके सीधे-सादे धार्मिक प्रवचनों ने जन-हृदय को छू लिया था। वस्तुतः भगवान महावीर ने अपने धर्म को जैन धर्म और भाषा को जन भाषा का रूप देकर एक रचनात्मक क्रान्ति का आवाहन किया था, जिसका कोटि-कोटि जनता ने मुक्त हृदय से स्वागत किया।

धार्मिक स्थिति :

ई.पू. ६०० के आस-पास भारत की धार्मिक स्थिति भी बहुत ही अस्थिर और भ्रान्त थी। महावीर ने देखा कि, धर्म की लोगों ने उपासना की नहीं, प्रदर्शन की वस्तु समझने लगे हैं। उसके लिए मन के विकारों ओर विभावों का त्याग आवश्यक नहीं रहा है यज्ञ में सामग्री की आहुति के साथ पशुओं तक का बलिदान होने लगा। "वीरायन"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काव्य में महावीरकालीन धार्मिक परिस्थितियों का सजीव वर्णन किया है -

पशुओं की बलि दी जाती है, यज्ञों से ज्वाला उठती है।
हिंसा खुलकर खेला करती, अलकों की लाली लुटती है।[१]

***

मनुष्य माँस खा रहा, मनुष्य काट काट कर।
मनुष्य हाय हँस रहा, हराम चाट चाट कर॥
न शर्म है न धर्म है न देश हैं न वेश है॥
हाय हाय काँय काँय आदमी में शेष है॥[२]

***

एक ओर यज्ञीय कर्मकाण्ड और दूसरी ओर कतिपय विचारक अपने सिद्धांतो की स्थापना द्वारा जनता को संदेश दे रहे थे। चारों और हिंसा, असत्य, शोषण, अनाचार, एवं नारी के प्रति किये जानेवाले और जुल्म अपना नग्न ताण्डव कर रहे थे। धर्म के नाम पर मानव अपनी विकृतियों का दास बना हुआ था। वैयक्तिक स्वातंत्र्य समाप्त हो चुका था और मानव के अधिकार तनाशाहों द्वारा समाप्त किये जा रहे थे। मानवता कराह रही थी और उसकी गरिमा खण्डित हो चुकी थी। धर्म राजनीतिक का एक भेत्थरा हथियार मात्र रह गया था। भय और आतंक के कारण जनता धार्मिक क्रियाकांड का पालन करती थी, पर श्रद्धा और आस्था उसके हृदय में अवशिष्ट नहीं थी। स्वार्थ नहीं था। स्वार्थ लोलुप धर्मगुरु और धर्माचार्य धर्म के ठेकेदार बन बेठे थे। मानव की अन्तश्चेतना मूर्छित हो रही थी और दासता की वृत्ति दिनोंदिन बढती जाती थी।

दिगभ्रान्त मानव का मन भटक रहा था और कहीं भी उसे ज्ञान का आलोक प्राप्त नहीं हो रहा था। नारी की सामाजिक स्थिति भयावह थी। उसका अपहरण किया जा रहा था। कोइ उसे बेडियों में जकड़ता और कोई उसे तलघरों में बन्द करता था। फलतः नारी का नारित्व ही नहीं अपितु समस्त मानव समाज अन्धकार में भटक रहा था और सभी की दृष्टि उद्धार के हेतु किसी महान शक्ति की प्रतीक्षा में लगी हुई थी।

निरीह पशुओं का निर्मम वध किया जा रहा था। पशुमेघ ही नहीं नरमेघ भी किये जा रहे थे। भीषण रक्तपात होने लगा था। अग्निकुण्डों से चीत्कार की ध्वनि कर्णगोचर हो रही थी। बर्बरता और दानवता का नग्न नाच हो रहा था। मनुष्य मनुष्य के

---

१. ''वीरायण'' : कवि मित्रजी, ''पृथ्वी पीड़ा'', सर्ग-२, पृ.५५

२. वही पृ.६३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वारा होनेवाले निर्लज्ज शोषण का शिकार बना हुआ था। उसी का साक्षात् चित्रण कवि ने "वीरायण" काव्य में किया है-

भाई के आगे बहिन लुटी, हत्यारों को कुछ होश न था।
शिशुओं को भालों से गोदा, तलवारों को कुछ होश न था,
मानवता नंगी कर डाली, धर्मान्धों की मन चाहीने ।
भारतमाता को घेर लिया, धर्मों की घोर तबाही ने॥ [१]

***

तीर्थंकर पार्श्वनाथ के पश्चात् यज्ञीय क्रियाकाण्डों ने मानवता को संत्रस्त कर दिया था। आलोक की धर्मरेखा धुंधली होती जा रही थी और जीवन का अभिशाप दिनानुदिन बोझिल हो रहा था।

तत्कालीन धार्मिक जीवन के खोखलेपन, धार्मिक मठाधीशों की ठेकेदारी, मनुष्य और ईश्वर के मध्य तथाकथित दलालों की घुसपेठ आदि का पर्दाफाश करते हुए भगवान महावीर ने मानवीय प्रेम और करुणा की गंगा बहाई।

महावीर की दृष्टि में इश्वर सृष्टि का कर्ता-धर्ता नहीं है। वह तो मात्र एक ऐसी दिव्य आत्मा है जिसने स्वयं को कर्मो के बंधनों से मुक्त कर लिया है तथा सिद्धावस्था प्राप्त कर ली है। ईश्वर का जनतन्त्रीकरण करते हुए महावीरने हर विशुद्ध आत्माकों ही ईश्वर के रुपमें प्रतिष्ठित किया। महावीर ने अपनी इस अवधारण में नारी, पुरुष, आर्य, अनार्य तथा जातिगत भेदों को समाप्त करके धर्म के ऐसे स्वरूप का दिग्दर्शन कराया जो "सर्व जन हिताय" तथा "सर्वजन सुखाय" था। वस्तुतः तत्कालीन समय की माँग थी।

धर्म के क्षेत्र में उस समय उच्छुंखला फैल गई थी। अनेक व्यक्ति अपने को तीर्थंकर कहने लगे थे। कोई कहता कि भौतिकता ही जीवन का चरम लक्ष्य है, कोई त्राण में कहता था कि अक्रिया ही धर्म है और कोई अकर्मण्यता को ही धर्म घोषित करता था। स्वर्ग, नरक बिक रहे थे और धनिकवर्ग लम्बे लम्बे रकमें देकर अपना स्वार्थ सुरक्षित कर रहे थे। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और मैत्री जैसी उदात्त भावनाएँ खतरे में थी। सर्वोदय का स्थान वर्गोदय ने ले लिया था और धर्म एक व्यापार बन गया था।

---

१. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "पृथ्वी पीड़ा", सर्ग-२, पृ.६४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर ने ईश्वर को इतना व्यापक बना दिया कि कोई भी आत्मसाधक ईश्वर को प्राप्त ही नहीं करे, वरन् स्वर्ग ही ईश्वर बन जाय। इस भावना ने असहाय, निष्क्रिय जनता के हृदय में, शक्ति, आत्मविश्वास और आत्मबल का तेज भरा। वह सारे आवरणों का भेद कर, एक बारगी उठ खड़ी हुई। अब उसे ईश्वर प्राप्ति के लिए परमुखापेक्षी बन कर नहीं रहना पड़ा। उसे लगा कि साधक भी वही है और साध्य भी वही है। ज्यों-ज्यों साधक तप, संयम और अहिंसा को आत्मसात् करता जायेगा त्यों-त्यों वह साध्य के रुपमें परिवर्तित होता जायेगा। इस प्रकार धर्म के क्षेत्र से दलालों और मध्यस्थोंको बाहर निकालकर महावीरने सही उपासना पद्धतिका सूत्रपात किया।

आर्थिक परिस्थिति

तीर्थंकर महावीर के समय में भारत में अर्थ संकट नहीं था। उस समय का भारत आज से कहीं अधिक सम्पन्न और सुखी दृष्टिगोचर होता है। पाणिनिकी अष्टाध्यायी, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में उन्नत आर्थिक जीवन सम्बन्धी साम्रगी प्राप्त होती है।

प्रस्तुत महावीर प्रबन्ध काव्यों में भी भगवान महावीर के समय में भारत की आर्थिक परिस्थितियों का सुंदर चित्र अंकित किया है-

स्वर्ण-चांदी-हीर-मुक्ता हार
और था धन धान्य का व्यापार
था नृपति का राज्य-सद-आचार
था प्रजा-वत्सल लुटाता प्यार ॥ [१]

***

हर खनिज द्रव्य की खानें भी,
थी जिसके कोनें कोनें में।
जिस की कृषि ऐसी लगती थी,
ज्यों खेत मढें हो सोने में ॥ [२]

***

नागरिक जन का कि सुललित वेश
बन रहे भूपर सभी देवेश

१. ''तीर्थंकर महावीर'' : कवि गुप्तजी, सर्ग-१, पृ.८

२. ''परमज्योतिमहावीर'' : कवि सुधेशजी, सर्ग-१, पृ.५६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्त्र आभूषण सुसंस्कृत ढंग
थे सुलेपन से सुगंधित अंग - [1]

***

महाभारत के अध्ययन से भी उस समय की आर्थिक समृद्धि का परिज्ञान प्राप्त होता है। नागरिक और ग्रामीण दोनों प्रकार के जीवन का परिचय प्राप्त होता है। घर मिट्टी, ईंट, पत्थर और लकड़ी से बनाये जाते थे। मकानों के बीच में सड़क एवं गलियाँ रहती थी। कवि ''सुधेशजी'' ने भवनों के सौन्दर्य का सजीव चित्रांकन किया है -

कोसों से जिसके सतखण्डे,
भवनों के शिखर चमकते थे।
जिन पर दृग पडते ही पथिकों-
के चरण अवश्य ठिठकते थे। [2]

***

ग्रामों के बाहर मंदिर एवं चैत्य बनवाने की प्रथा थी। कृषि के सम्बन्ध में विशेष उन्नति हुई थी। सिंचाई की व्यवस्था भी विद्यमान थी -

कृषि नहीं सूखने पाती थी,
थी सुविधा सभी सिंचाई की।
प्रत्येक योजना बनती थी,
जनता की पूर्ण भलाई की॥ [3]

***

कुछ व्यक्ति वेतन से भी आजीविका उपार्जन करते थे और कुछ शासन में कार्य करते थे। सरकारी श्रेणी में कार्य करनेवाले अध्यक्ष कहलाते थे। शस्त्रोपजीवी व्यक्तियों का भी निर्देश प्राप्त होता है। भृति या पारिश्रमिक लेकर काम करनेवाले कर्मकार मजदूरों का भी अस्तित्व विद्यमान था।

ग्राम्य पशुओं में गाय, भेंस, भेंड, बकरी, अश्व, गज आदि की गणना की जाती थी। गौ-पालन, दुग्धोत्पत्ति धृतनिर्माण एवं विभिन्न प्रकार के मिष्टान्न निर्माण भी प्रचलित थे -

---

१. ''तीर्थंकर महावीर'' : कवि गुप्तजी, सर्ग-१, पृ.९
२. ''परमज्योति महावीर'' : कवि सुधेशजी, प्रथम सर्ग, पृ.५७
३. वही, पृ.६३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोधन की दशा समुन्नत थी,
धृत-दीप जलाये जाते थे।
शिशु-वृन्द दुग्ध के द्वारा ही,
प्रायः प्रति दिवस नहाते थे॥ [१]

***

गोएँ इतना पय देतीं थी,
दुहनेवाले थक जाते थे।
परदेशी प्यास बुझाने को,
जल नहीं, दुग्ध ही पाते थे। [२]

***

इस प्रकार महावीर के समय का भारत आर्थिक दृष्टि से समृद्ध था अन्न और वस्त्र की कमी उस समय किसी के समक्ष नहीं थी। ग्राम और नगर अपनी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समर्थ थे। कृषि से अन्न, शिल्पियों से विलास सामग्री एवं पशुओं से दुग्ध और वाहन के कार्य सम्पन्न किये जाते थे। आमोद-प्रमोद की सामग्रियों का भी बाहुल्य था। कूप, वाणी, स्नानागार, सभागृह, नाट्यशाला आदि की भी कमी नहीं थी।

*****

प्रबन्धों के आधार पर नारी भावना

महावीरकालीन नारीस्थिति :

भगवान महावीर के पूर्व में नारी का स्थान बहुत निम्म श्रेणिका था। नारी मात्र भोगेषणा की पूर्तिका साधन मात्र रह गयी थी। न उसे अध्ययन कर आत्मविकास के अवसर प्राप्त हैं और न वह धर्म एवं समाज के क्षेत्र में आगे ही आ सकती है। दासी के रुप में नारी को जीवन यापन करना पडता है, उसके साथ होनेवाले सामाजिक दुर्व्यवहार प्रत्येक विचारशील व्यक्तिको खटकते हैं। नारी समाज को देखने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे युग-युगान्तरसे इनकी आत्मा ही खरीद ली गई है। कवि "मिश्रजी" ने काव्य में महावीरकालीन नारी स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है-

१. "परमज्योति महावीर" : कवि सुधेशजी, प्रथम सर्ग, पृ.६१
२. वही, पृ.११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर हरण भोगकर युवती को दूसरे रोज खा जाते थे।
फिर नयी किसी कन्या को ला, वे पहेला जमाते थे॥
ये नृत्य रात दिन होते थें, ये कांड रात दिन होते थे।
हत्यारे हिंसा करते थे, त्रिशला के अक्षर रोते थे॥ [१]

***

अनमेल-विवाह ने नारी की स्थिति को ओर गिरा दिया है। सामान्त युग से प्रभावित रहने के कारण आज दहेजका लेना-देना बडप्पन का सूचक समझा जाता है। आज नारी का स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं रहा है, पुरुष के व्यक्तित्व में ही उसका व्यक्तित्व मिल गया है। अतः इस दयनीय स्थिति को उन्नत बनाना अत्यावश्यक है। यह भूलना न होगा कि नारी भी मनुष्य है और उसको भी अपनी उन्नति का पूरा अधिकार प्राप्त हैं।

समय-समय पर ऐसे कार्य होते रहें जिनसे उतार-चढाव का तूफान आता रहा। जो नारी पुरुष के समकक्ष थी, जिसका समाज में आदरणीय व समानता का स्थान था। कालचक्र के साथे उसको पीछे धकेल दिया गया। अच्छी अच्छी कुशाग्र बुद्धिशीला नारियाँ जो विश्व में चमत्कारपूर्ण कार्य कर सकती थी, उनके उपर अत्याचार ढाये गये। वासना तृप्ति का शिकार बनाया गया और वे भोग्य पदार्थ सी बन गई। महावीर कालीन समाज में वे तिरस्कृत थी तथा समाज में समकक्ष स्थान चाहती थी। महावीर तो सुलझे हुए तपस्वी थे। वे संसार वासियों को उत्तम तरीके से जीने-देने की इच्छा रखते थे। नारी जाति के प्रति भगवान महावीर बड़े ही उदार विचारक थे। उस युग में नारी-जाति की अत्यन्त दयनीय स्थिति थी, उसी का कवियों ने प्रबन्ध काव्यों में चित्रण किया है -

मच गई लूट वैशाली में, पत्नियाँ लुटीं बेटियाँ लुटी।
रानियाँ लूटीं बाँदियाँ लूटीं, सिन्दूर पीछे मंहदियाँ छुटी॥
कितनी स्वच्छ नीरजाएँ जीवित, जल गई चिताओं में।
कुछ फूलों में दर्शन देतीं, कुछ दीपित दीप शिखाओं में॥ [२]

मायावी कामाग्नि और साक्षात् नरक मूर्ति आदि मनमाने अपशब्द कहकर उसका पग पग पर अपमान और उपेक्षा की जाती थी। सामाजिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्रों में वह अपने सब अधिकारों से सर्वथा वंचित थी, न उसे पवित्र

---

१. "वीरायण", कवि मित्रजी, "तालकुमुदिनी", सर्ग-३, पृ.८०

२. वही, "संताप", सर्ग-८, पृ.२०१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मग्रन्थों के पठन-पाठन का अधिकार था, न ही उच्च आध्यात्मिक क्षेत्र में अग्रसर होने का अधिकार था और न धर्म-कर्म करने का। कदम-कदम पर उसके लिए दासिता की बेडियाँ बिछी थी। नारी जाति को उस युग में पैर की जूती से भी हेय समजा जाता था। बपौती के रुप में रखा जाता था। सरे बाजार में नारियाँ बिकती थी। उनके भाव लगते थे, बोलियाँ लगती थी। पशुओं से भी बुरी गत थी नारियों की। जिस किसी के पास दास-दासियाँ जितनी अधिक होती, उसे उतनी ही सामाजिक प्रतिष्ठा मिलती। अतएव होड लगी हुई थी कि कौन अधिक दास-दासियाँ खरीदे। कवि ''रघुवीरशरण मित्र'' ने अपने वीरायण काव्य में नारियों की करुणाजनक स्थिति का वर्णन किया है -

नीलाम नारियाँ होती हैं, सुन्दरता के बाजार लगे।
अपने रक्षक अपने न रहे, वे शत्रु हुए जो रहे सगे॥
पापों से प्यास नहीं बुझती, शंकर को काम सताता है।
जो दनुज चोर मक्कार धूर्त, वह कवि का दोष बताता है॥ [१]

***

रोटी न रही बोटी बिकती, चोटी न रही माला छूटी।
रक्षक भक्षक बन बैठे हैं, भारत माँ की किस्मत फूटी॥
उत्कोच न्यायकर्ता लेते, योगी भोगी बन खाते हैं।
लक्षण न रहे खाते अभक्ष्य, प्रिय देश बेचते जाते हैं। [२]

***

पारिवारिक सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक क्षेत्रों में भारतीय नारी को समानता के अधिकारों से समय पर वंचित रखा गया है। नारी को केवल गृहलक्ष्मी कहकर उसको घर की चार दीवारों में ही बंध रखा गया है। नारी को लोक लाज की कटपुतली समझकर उसे भीषण पर्दा पथा में जकड़ा गया। लोकजानकारी न हो और पुरुषों के बराबर अपना उत्थान न करे इसलिए उसको जान बुझकर शिक्षा से दूर रखा। परिवार में पुरुष की गुलामी की बेडियों में नारी को इस प्रकार जकड़ा गया कि पुरुष के बिना इशारे पर उसका घरसे बाहर निकलना भी मुश्किल था। समाज की गतिविधियों पर कभी भी नारी को सोचने का अवसर ही नहीं दिया। राजनैतिक क्षेत्र में

---

१ ''वीरायण'', कवि मित्रजी, ''संताप'', सर्ग-८, पृ.२७५

२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवेश पाना नारी के लिए कोसों दूर था। आर्थिक क्षेत्र में नारी का आना अपमान समझा जाता था। धार्मिक क्षेत्र में भी नारी की उपेक्षा की जाती रही। इस प्रकार महावीर काव्यों में कवियों ने महावीर युगमें नारी की अत्यन्त शोचनीय दया का वर्णन किया है :

द्रोपदी को नग्न कर रहे यहीं।
आदमी में आदमी रहा नहीं ॥
न प्यार है न सार है न साज है न राज है।
समाज कोढ से धिरा अराज राज आज है ॥
न कौन झूठ खा रहा न कौन लूट ला रहा।
न कौन रक्त पी रहा न कौन मांस खा रहा ॥ [१]

***

चंदनबाला जैसी सती नारियों ने क्या नहीं सहा ? स्त्रियों को गुलामों की भाँति बेचा करते थे। लोगों के हृदय में उनके प्रति जरा भी करुणा नहीं थी। आदर की तो क्या कहे ? जिस समय सती चंदना को बाजार के बीच लेजाकर खड़ी करके खुले आम नीलामी पर चढाया गया। उस समय की दयनीय दशा का कविने चित्रण काव्य में प्रस्तुत किया है -

क्या लोगे, इतना लूँगा, इतना दूँगा।
काप रहा तूफानों में निर्मल मूँगा
खुले आम नीलामी की बोली लगती।
कैसे निज धुर पर टिकी रही जगती ॥ [२]

***

कैसा था वह दृश्य बालिका निर्विकार।
खड़ी हाट में, देख रहे थे खरीददार ॥
करता रहा, मनुज ही, व्यापार मनुज का
कहो ! काम यह नर का है या दुष्ट दनुज का ॥ [३]

***

---

१. "वीरायण", कवि मित्रजी, "पृथ्वीपीड़ा", सर्ग-२, पृ.६३
२. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "चंदना उद्धार", सर्ग-१२, पृ.१४०
३. वही, पृ.१३९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार के क्रूर एवं अमानवीय व्यवहार स्त्री जाति के साथ किये जा रहे थे। कितना निर्दयता पूर्ण वातावरण होगा वहाँ का ? कितनी सुकुमारियाँ छिप छिप कर आँसू बहाती होगी ? और भीतर ही भीतर अपने स्वजनों के वियोग एवं पराधीनता की यंत्रणा में हाहाकर कर रही होगी ? कवि ने "वीरायन" काव्य में चंदना की करूण स्थिति का वर्णन किया है -

जंजीरो में चंदना बंधी, बन्दिनी कुमुदनी कारा में।
काली नागिनी फुंकार उठी, गंगा की निर्मल धारा में॥
बन्दीगृह में वे कष्ट दिये, जो कहते कहते कह न सका।
पीड़ा निर्दोष चंदना की, में बिना कहें भी रह न सका॥ [१]

***

साधना काल के बारहवें वर्ष में भगवान महावीर ने एक घोर अभिग्रह (वज्र संकल्प किया) जो जैन इतिहास के पृष्ठों पर आज भी जगमगा रहा है। भगवान का यह घोर अभिग्रह केवल उनकी एक कठोर तपः साधना का अंग मात्र बनकर ही नहीं रहा, अपितु इस अभिग्रह ने युग की हवा ही बदल दी। अभिशापग्रस्त नारी जाति के उद्धार और कल्याण का एक महान पथ प्रशस्त कर दिया। मातृजाति को दासता से मुक्ति दिलाने में मुक्ति के संदेशवाहक भगवान महावीर का यह अभिग्रह एक ऐतिहासिक महत्व है। भगवान महावीर के दर्शन मात्र से चंदना सती का बन्दीगृह से मुक्त होना उसीका सजीव चित्रण कविने "वीरायन" काव्य में प्रस्तुत किया है -

वह सोच रही थी रह रहकर, धन में बिजली सी दमक दमक।
कारा के तट तक आती थी, वह शीत धूप सी चमक चमक॥ [२]

***

वास्तव में कहना होगा कि भगवान महावीर जैन संघ श्रावक, श्राविका साधु, साध्वी इन चारों का चतुर्विध संघ बनाकर जो भूमिका निभाई वह युग युगों तक नारी उत्थान एवं कल्याण के मार्ग दर्शन का कार्य करती रहेगी।

---

१. "वीरायण", कवि मित्रजी, "संताप", सर्ग-८, पृ.२०२
२. वही, "उद्धार", सर्ग-१३, पृ.३१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारी उत्थान :

भगवान महावीर ने इस नारी उत्पीड़न, उसकी गुलामी का जोरदार प्रतिकार किया। उन्होने उसे महान सामाजिक दोष व मानवता के नाम पर एक बड़ा कलंक घोषित किया। महावीर ने कहा, जो अपनी माता, बहिन, पुत्री, पत्नी आदर नहीं कर सकता वह बड़ा पापी है। अपनी जननी का अनादर पाप का बन्ध करता है। महावीर आगे आये उन्होने अपने प्रवचनों में बार-बार नारी के महत्व को बड़ा स्थान दिया।

भगवान ने ज्ञान से देखा कि नारी की आत्मा भी आत्मा है और पुरुष की आत्मा भी आत्मा है। तात्विक दृष्टि से देखा जाये तो कोई भेद नहीं है। दोनों समकक्ष है। वहाँ लिंग भेद या देह भेद को कोई स्थान नहीं है। ठीक हैं, पूर्वजन्म के शुभाशुभ कर्म से एक को पुरुष देह मिली और दूसरे को स्त्री देह मिली। स्त्री सभी जन्मों में स्त्री रुप से रहेगी और पुरुष सभी जन्मों में पुरुष रुपसे ही जन्म लेता रहता है ऐसा कोई अकाटय नियम नहीं है। तो सिर्फ लैंगिक और दैहिक भेद के कारण पुरुष कल्याण के लिए पूर्ण अधिकारी और स्त्री नहीं, यह कैसी विडम्बना है ? मुझे तो लगता है कि उसमें तो नारी देह का अपमान है, नारी की आत्मा का अनादर है। जो तीर्थंकरो, अवतारों को जन्म देती है और जो सन्तों, ऋषियों, महर्षियों, और उत्तम नरों की जन्मदात्री है, ऐसी जगज्जननी को हीन दृष्टि से कैसे देखा जायें ? कितनी ही स्त्रियाँ सर्वगुणों से सम्पन्न साधुओं और पुरुषों में श्रेष्ठ चरमशरीरी पुरुषों को जन्म देनेवाली माताएँ हुई है। [१] अन्तकृतदशा और उसकी वृत्ति में कृष्ण द्वारा प्रतिदिन अपनी माताओं के पाद-वन्दन हेतु जाने का उल्लेख है। [२] आवश्यक चूर्णि और कल्पसूत्र टीका में उल्लेख है कि महावीर ने अपनी माता को दुःख न हो इस हेतु उनके जीवित रहते संसार त्याग नहीं करने का निर्णय अपने गर्भकाल में ले लिया था। [३] इस प्रकार नारी तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव और श्रेष्ठ गणधरों को जन्म देनेवाली श्रेष्ठ देवों और उत्तम पुरुषों के द्वारा भी पूजनीय मानी गई है। महानिशीथ में कहा गया है कि जो स्त्री भय, लोकलज्जा, कुलांकुश

---

१. भगवती आराधना गाथा, ९८९-९४

२. तए णं से कण्हे द्रासुदेव ण्हाए जाव विभूसिए देवईए देवीए पायवंदाये - अन्तकृद्दशा सूत्र-१८.

३. नो खलु मे कप्पइ अम्मापितीहिं जीवंतेहिं मुण्डे भवित्ता अगारवासाओ....- कल्पसूत्र९१ (एवं)गब्भत्थो चेव अभिग्गहे गेण्हति णाहं समणे- होक्खामि जाव एताणि एत्थ जीवंतित्ति।- आवश्यक चूर्णि, प्रथम भाग, पृ.२४२ प्र. ऋषभदेव जी केशरीमल श्वेतांबर सं. रतलाम, १९२८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं धर्म श्रद्धा के कारण कामग्नि के वशीभूत नहीं होती है, वह सर्व कल्याणकारक है, वह धन्य है, पुण्यशाली है, वंदनीय है, दर्शनीय है, वह लक्षणों से युक्त है, वह सर्वकल्याणकारक है, वह सर्वोत्तम मंगल है, वह तो साक्षात् देवता है, सरस्वती है, अच्युता, परम पवित्र सिद्धि, मुक्ति शाश्वत शिवगति है।[१]

जैन धर्म में तीर्थंकर का पद सर्वोच्च माना है। और श्वेताम्बर परम्परा ने मल्ली कुमारी को तीर्थंकर माना है।[२] इसिमण्डलत्थू (ऋषिमण्डलस्तवन) में ब्राह्मी, सुन्दरी, चन्दना आदि को वंदनीय माना गया है।[३] तीर्थंकरों की अधिष्ठायक देवियों के रुप में चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती, सिद्धायिका आदि देवियों को पूजनीय माना गया है।[४] और उनकी स्तुति में परवर्ती काल में अनेक स्तोत्र रचे गये हैं। यद्यपि यह स्पष्ट है कि जैन धर्म में देवी-पूजा की पद्धति लगभग गुप्तकाल में हिन्दू परम्परा के प्रभाव से आई है। उत्तराध्ययन एवं दशवैकालिक की चूर्णि में राजीमति द्वारा मुनिरथनेमिको तथा आवश्यक चूर्णि में ब्राह्मी और सुन्दरी द्वारा मुनि बाहुबली को प्रतिबोधित करने के उल्लेख है।[५] न केवल भिक्षुणियां अपितु गृहस्थ उपासिकाएँ भी पुरुष को सन्मार्ग पर लाने हेतु प्रतिबोधित करती थीं। उत्तराध्ययन में रानी कमलावती राजा इषुकार को सन्मार्ग

---

१. महानिशिथ २/सूत्र २३ पृ.३६

२. तए णं मल्ली अरहा.....केवल नाण दंसणे समुप्पन्ने। - ज्ञाताधर्मकथा ८/१८६

३. अज्जा वि बंभी-सुन्दरी-राइमई-चन्दणा पमुक्खाओ। कालतए वि जाओ ताओ य नमामि भावेणं।। - ऋषिमण्डलस्तव २०८

४. देवीओ चक्केसरी अजिया दुरियारी कालि महाकाली।
अच्चुय संता जाला सुतारया असोय सिरिवच्छा।।
पवर विजयंकुसा पण्णत्ति निव्वाणि अच्चुया धरणी।
वइरोट्ट ऽच्छुत्त गंधारी अंब पउमावई सिद्धा।। -प्रवचनसारोद्धार, भाग-१, पृ.३७५-७६
देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार संस्था सन् १९२२

५. तीसेसो वयणं सोच्चा संजयाए सुभासियं।।
अंकुसेण जहा नागो धम्मे संपडिवाइयो।।- उत्तराध्ययन सूत्र-२२-४८
(तथा दशवैकालिक चूर्णि, पृ.८७-८८ मणिविजय सीरिज-भावनगर)
भवयं बंभी-सुंदरीओ पत्थवेंति ...इमं व भणितो।
ण किर हत्थिं विलग्गस्स केवलनाणं उप्पज्जई।। -आवश्यक चूर्णि-भाग-१, पृ.२११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिखाती है,[१] इसी प्रकार उपासिका जयन्ती भरी सभा में महावीर से प्रश्नोत्तर करती है[२] तो कोशावेश्या अपने आवसमें स्थित मुनि को सन्मार्ग दिखाती है,[३] ये तथ्य इस बात के प्रमाण है कि जैन धर्म में नारी की अवमानना नहीं की गई। चतुर्विध धर्मसंघ में भिक्षुणीसंघ और श्राविका संघ को स्थान देकर निर्ग्रन्थ परम्परा ने स्त्री और पुरुष को समकक्ष ही प्रमाणित किया है। पार्श्व और महावीर के द्वारा बिना किसी हिचकिचाहट के भिक्षुणी संघ की स्थापना की गई।

जैनसंघ में नारी का कितना महत्वपूर्ण स्थान था। इसका सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि उसमें प्रागैतिहासिक काल से वर्तमान काल तक सदैव ही भिक्षुओं की अपेक्षा भिक्षुणियों की और गृहस्थ उपासकों की अपेक्षा उपासिकाओं की संख्या अधिक रही हैं। समवायांग, जम्बुद्वीप-प्रज्ञप्ति, कल्पसूत्र एवं आवश्यक निर्युक्ति आदि में प्रत्येक तीर्थंकर की भिक्षुणियों एवं गृहस्थ उपासिकाओं की संख्या उपलब्ध होती है।[४] भगवान ने तो नारी को नर की तरह ही अधिकारिणी कहा। उसमें भी आध्यात्मिक क्षेत्र में ज्यादा। भगवान महावीर के संघ में छत्तीस हजार जितनी विपुल संख्या में स्त्रियों ने दिक्षा ली थी। यह संघ और देश के लिए कितने बड़े सौभाग्य और गौरव की बात थी। आज भी महावीर के संघ में नारी जाति का बाहुल्य है। यदि भारतवर्ष में आज २५०० से अधिक जैन मुनि है तो वही ७००० से भी अधिक साध्वियाँ है। कवि मित्रजी काव्य के अन्तर्गत महावीर कालीन साध्वियाँ, मुनि, श्रावक और श्राविका संघ का वर्णन करते हुए लिखा है -

अर्जिका संघ युग का प्रकाश, चंदना प्रकाश के लिए घूमी।
श्राविका श्वेतवस्त्रा जेष्ठा, घर घर दीपक घर घर घूमी॥
बन गई श्राविकायें, लाखों, चन्दना सती की गति फैली।
श्रावक अनगिनत कर्मरत थे, चादर न किसी की थी मैली॥[५]

***

---

१. बंतासी पुरिसोरायं, न सो होइ पसंसिओ।
माहणेणं परिचतं धणं आदाउमिच्छसि॥ -उत्तराध्ययन सूत्र १४, ३८ एवं उत्तराध्ययन चूर्णि, पृ.२३० (ऋषभदेव केशरीमल संस्था रतलाम-सन् १९३३)

२. भगवती १२/२

३. जइ वि परिचत्तसंगो तहा वि परिवडइ।
महिला संसग्गीए कोसा भंवणूसियव्विरिसी॥ -भक्तपरिज्ञा गाथा-१२८

४. कल्पसूत्र, क्रमशः १९७, १६७, १५७ व १३४, प्राकृत भारती, जयपुर, ई. १९७७

५. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "उद्धार", सर्ग-१३, पृ.३२०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान महावीर के शासन और धर्म-देशना में नारी-जाति के लिए कितना आकर्षण था, कितना ऊँचा मान था। उन्होंने समवशरण में स्त्रियों के लिए पुरूष के समान पूर्ण स्वतंत्रता थी। बिना किसी संकोच और प्रतिबन्ध के वे उसमें आ-जा सकती थी, उपदेश श्रवण कर सकती थी। कवि गुप्तजी ने समवशरण की सभा (परषदा) का सुंदर शब्दावली में वर्णन किया है-

थे पर कोटे पर खिंच चित्र बहुरंगी
गजराज व्याघ्र थे और मयुर भी संगी
जोड़ नर-नारी के चित्रों में छाये
वे वृषभ वहाँ के भी विशाल मन भाये। [१]

***

सुननर मुनि जन देवगण, जल थल नभ चर जीव।
समवशरण में सज गये, नृपति मुकट धर जीव। [२]

***

भगवान के नारी-उत्थान का जो महान कार्य किया वह युग-युगान्तर तक नारी जाति को उत्थान एवं कल्याण की ओर प्रेरित करता रहेगा। कवि योधेय ने नारी के गौरव का प्रस्तुत करते हुए लिखा है-

महावीर ने उस देवी को संयम देकर,
मोक्ष पत्थ की उस पथिकाकी राह दिखाकर
नारी के गौरव को था अक्षुण्ण बनाया,
चंदनबाला को सतियों की मुख्य बनाकर [३]

***

मुक्ति-पथ पर चल निकली थी कई नारियाँ।
चंदनबाला की शिष्या हो गई नारियाँ॥ [४]

***

---

१. "तीर्थंकर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-५, पृ.१८१
२. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "ज्ञानवाणी", सर्ग-१२, पृ.२९९
३. "श्रमण भगवान महावीर", कवि योधेयजी, सोपान-८, पृ.३०५
४. वही, सोपान-७, पृ.२९५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारी के विविध रूप :

वर्तमान हिन्दी-कवियों ने काव्य के अन्तर्गत नारी को शक्ति, अबला आकर्षण, आधुनिक, कुलवधू, माता, अमृत, चंचल, आदर्श, साहसिक तथा वीर आदि नानाविध रुपों में अंकित किया है। राष्ट्रीय रचनाओं में कवि नारी को शक्ति रुप स्वीकार करता है। उसकी कल्पना में भी वह विपथगा बनकर; कभी त्याग के रुप में और कभी क्रान्तिकारीणी रणचंडी के रुप में, अवतरित होती है। यही रुप देशवासियों को जागृत बनाने के लिये उसने स्वीकार किया। भारतीय संस्कृति में नारी को अबलारुप में ही विशेष चित्रित किया गया है। आंसू ही उसकी निधि है। और त्याग ही उसका सर्वस्व। प्रायः सभी कवियों ने किसी न किसी रुप में उसके इस रुप को स्वीकार किया है। कवि ''योधेयजी'' काव्य में नारी चंदनबाला का अबला रुप का वर्णन करते हुए लिखते है कि-

बंधन युत वह सुभग हंसिनी मौन मौन ही रोती थी।
अपने गौरव अश्रुजल से होकर पद को धोती थी
भोजन अति सामान्य फेंक देते थे कारावास में।
अनगिन पीड़ा के पिशाच दुःख देते उस आवास में॥ [१]

***

चटका डाले नारी के हाथों के बन्धन
मुक्त हुई वह अबला जो करती थी क्रन्दन॥ [२]

***

नारी प्रकृति का अंश है जो युग-युग से पुरूष के आकर्षण का केन्द्र रही है। उसके सौंदर्य ने पुरूष को सदैव पराजित किया है, और प्रेरणा भी दी है। नारी के जिन विविध रुपों की चर्चा कवि ने अपने काव्यों में ही की है, उसमें वह आधुनिक के रुप का चित्रण अवश्य करता है, परन्तु ऐसी नारी के प्रति उसकी कोई सहानुभूति नहीं है। उसकी दृष्टि में आधुनिक मात्र भत्सना की पात्र है। कविने काव्य में नारी का इर्ष्या, राक्षसी तथा विष आदि अनेक रुपों में चित्रित किया है-

---

१. ''भगवान महावीर'' : कवि शर्माजी, ''चंदना उद्धार'', सर्ग-१२, पृ.१४१
२. ''श्रमण भगवान महावीर'' : कवि योधेयजी, सप्तम सोपान, पृ.२९५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नागिन यदि काटे कभी
बच सकते है प्राण।
नारी के विष का डसा,
कही न पाता त्राण ॥[१]

***

नारी के व्यवहार सें
तरह तरह के रुप।
रुप रुप में लुंट गये
योगी योद्धा भूप ॥[२]

***

आधुनिकता की भर्त्सना करनेवाले कवि ने नारी का कुलवधू गृहिणी रुप श्रेयस्कर माना है। नारी में वह शक्ति है जो कुलवधू का भार ग्रहण कर वेदना को पीकर भी अपने कुल की प्रतिष्ठा को बनाये रखती है। भारतीय परम्परागत आदर्श से युक्त कुलवधू की स्थिति बड़ी ही दयनीय होती है। उसका सर्वस्व पति के लिए समर्पित हो जाता है। संसार की कुत्सित भावनाओं से बचने के लिए वह आवरण में छिपी रहती है लज्जा ही उसका आभूषण बन जाता है। कुलवधू का दूसरा रुप सुकन्या है जिसे अपनी गृहस्थी में सुख और संतोष प्राप्त है। कुलवधू की मर्यादा, सहनशीलता, सौजन्य सभी गुण सुकन्या में दृष्टव्य है। जैसे कविने वर्धमान की पत्नी यशोदा का गुणानुवाद का चित्रण सुंदर काव्य में अंकित किया है -

सास श्वसुर औ निज स्वामी से पहिले शैया से उठ जाती।
शौच आदि से निवृत्त होकर चरण स्पर्श का पुण्य कमाती ॥
गाय पुजती, तुलसी अर्चन, अर्घ्य सूर्य को नित देती।
चीटीं कीडे विहंग वृन्द को खिला पिलाकर अतिसुख लेती ॥[३]

***

---

१. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "विरक्ति", सर्ग-९, पृ.२२९

२. वही

३. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "सद् गृहस्थसरिता"- सप्तम् सर्ग, पृ.९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारी जब मातृत्व के गौरवान्वित पद पर सुशोभित होती हैं, तब वह सर्वाधिक श्रेष्ठता प्राप्त कर लेती है। वात्सल्य उसकी निधि हो जाती है, लोकमंगल की भावनाओं से वह उभर उठती है। मातृत्व नारी जीवन की तपस्या का नवनीत होता है। कवियों ने काव्य में नारी रुपों के अन्तर्गत सर्वाधिक महत्ता एवं श्रेष्ठता मातृरुप कों ही प्रदान की है। कवि ने उर्वशी, सीता, त्रिशला, कुन्ती, मेनका आदि नारियों के जीवन का उजागर कर उनकी आदर्श रूप में प्रतिष्ठा की है। कवि डॉ. शर्माजी ने जगत जननी रानी त्रिशलादेवी ने राजकुमार वर्धमान के प्रति वात्सल्य भाव का सजीव वर्णन किया है -

कितना सुख मिलता माता को।
जब शिशु करता था दुग्ध पान॥
पुलकन से तन ज्यों कदम कुसुम।
वात्सल्यवती थी मुग्ध प्राण॥ [१]

***

कवि ने नारी के इन रुपों के उपरान्त नारी के नर्त की रुप को प्रस्तुत किया है- जहाँ कवि उसके पेशे के प्रति घृणाभाव से नहीं करुणा भाव से ही निहारता है। पेट की भूख वह कला बेंचकर मिटाती है, परंतु दुःख है कि वह किसी की सहानुभूति को प्राप्त नहीं कर पाती। कभी कवि नारी को देवी रुप में निहारता है। कवि युगानुरुप नए सन्दर्भो में उसका मूल्यांकन करता है। नए युग बोध में भी नारी के ग्रामीण एवं संयत रुप को ही कविने श्रेयस्कर माना है। कवि भोगमयी नारी से अधिक त्याग और अनुरागमयी नारी का समर्थक है। उन्हों ने विविध रुपों को अपनाते हुए अपनी संपूर्ण श्रद्धा एवं आस्था उसके मातृत्व में ही व्यक्त की है। कवियों ने काव्य के अन्तर्गत यही उद्बोधन दिया है कि भोग की अपेक्षा त्याग में हीं नारी जीवन की सफलता है। कविने रानी यशोदा का राजकुमार वर्धमान के प्रति समर्पण भावों का यथातथ्य चित्रण काव्य में निरूपित किया है।

सार्थकता है किन्तु मोक्ष में, सेवा ही जीवन का सार।
सुमन लगे जो प्रेम-शाख में, दिव्य-सुरभिका हो विस्तार॥
सब जन सुखी रहें जगती के, हो निज उर का अमित प्रसार।
स्वामी का उद्देश्य पूर्ण हो, अर्द्धांगिन का जीवन सार॥ [२]

*****

१. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "शैशवलीला"-सर्ग-४, पृ.४०
२. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "सद् गृहस्थसरिता"-सर्ग-७, पृ.९९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रबन्धों के आधार पर प्रकृति चित्रण

कवियों ने अपने काव्य को प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य से मण्डित किया है और उसे मानवीय भूमिका पर प्रस्थापित किया है। उसका मानवीकरण करके मानव और प्रकृति के द्वैत को मिटा दिया है। उन्होंने प्रकृति को एक स्वतंत्र चेतना सत्ता के रुप में देखा तथा उसके माध्यम से मानव-जीवन की समस्त क्रियाओं और अनुभूतियों का सजीव चित्रण किया है। सभी कवियों ने काव्य में सृष्टि के अमूर्त और जड़ पदार्थों को मूर्त और सप्राण मानकर चित्रण किया है। उन्होंने प्रकृति में मानव-रुप, व्यापार और भावों का प्रतिबिम्ब देखा और अपने हृदय में प्रकृति के हर्ष-विषाद का प्रतिरुप पाया। प्रकृति और मानव अभिन्न हो गये। महावीर काव्य में कवियों ने प्रकृति में परमात्मा का दर्शन किया तथा मानवीय भावनाओं का सुंदर आरोपण किया है। युगधर्म की भावना से प्रेरित होकर इन कवियों ने प्रकृति-चित्रण में मानवीय-संवेदना को भी स्थान दिया है। कवि पूर्वकालीन दुःखी जनों की स्थिति वर्णन करते हुए प्रकृति के उपमानों का प्रयोग करता है -

वेदना की उत्तर आई शाम
तिर रहे हर आंख में
बनकर सजल घनश्याम
धर्म पर आस्था - अटल - विश्वास फैलता ही गया।[१]

***

रो उठा या देखकर आकाश
बन रहा था मनुज
धरती के मनुज का दास[२]

***

प्राचीन कवियों ने तटस्थ रुप से प्रकृति का बाह्य निरुपण किया था, किन्तु छायावादी कवि की भाँति प्रकृति से इतने घुलमिल गये कि दोनो में भेद नहीं रहा। उसका मानवीय करण कर दिया। उन्होंने महावीर काव्य में वर्णित प्रकृति में अपनी भावनाओं

---

१. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-१, पृ.६

२. वही, पृ.५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का प्रतिबिंब देखा और उसके विकल मनने प्रकृति की गोदमें स्वयं को भुला देने में ही सुख और शान्ति का अनुभव किया। प्रकृति उनकी प्रेयसी बन गई। इन कवियों ने दार्शनिक दृष्टि से प्रकृति के अचेतन तत्वों में चेतना भर दी। प्रकृति केवल जड़ पदार्थ नहीं है, अपितु वह एक रहस्यमयी शक्ति है, जो संसृति का संचालन करती है। जैसे...

धरती पर उतर उतर कर
किरणें भी रास रचाती
बिखरे मुक्ता दल लेकर
प्रकृति का साज सजाती -[१]

***

गीतों की बांसुरिया पर
उठती रागनियाँ प्यारी
प्रियतम को बुला रही ज्यों
छन्दों की राजकुमारी- [२]

***

भाव की चरम परिणति रस की विविधता प्रबंध काव्यों में दृष्टि गोचर होती है। मनुष्य से लेकर कीट, पतंग, वृक्ष, नदी, पर्वत आदि सृष्टि का कोई भी पदार्थ आलम्बन बन सकता है। जिस के काव्य में सृष्टि के विस्तृत प्रांगण से जितनी अधिक वस्तुएँ गृहित होगी वह उतना ही महान कवि होगा। उसने चेतन-अचेतन, क्षुद्र-विराट्, मानव-दानव, पशु-पक्षी, शुभ-अशुभ, राजा-रंक सभी को समस्त विभिन्नता के साथ अपनाया है। "तीर्थंकर महावीर" काव्य में कवि भगवान की अमृतमयी वाणी का उद्घाटन करते हुए लिखते है -

कहते थे खुले हृदय से
सब सृष्टि एक है भाई
सब का है एक नियामक
यह देख सभी ने पाई- [३]

***

१. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-८, पृ.३३६
२. वही
३. वही, पृ.३३९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह जाति भेद के नाशक
समता का पाठ पढाते
बढ चले पन्थ में आगे
दुखियों को गले लगाते[१]

***

भगवान का सच्चा उपदेश यही था कि मानव-मानव भाई हैं। मानव के बीच व्यर्थ धृणा की खाई मत खोदों। प्रेम की वर्षा करो। जब मानव के हृदय में यह भावना व्याप्त हो जाती है तब ही व्यक्ति अच्छे समाज का, राष्ट्र का निर्माण कर सकता है। कविने काव्य में भगवान महावीर के दया, प्रेम, ममता, करूणा, आदि को प्रस्थापित कर के विश्व को "जीओ और जीन दो" का महान संदेश दिया। उन्होने जनसादारण को सम्बोधन करते हुए लिखा है कि दूसरों की उन्नति और भलाई करना चाहते हो तो स्वयं अपनी आत्मा को "बल्ब" की तरह प्रकाशमान कर लो तभी तुम्हारा हृदय "ग्लोब" की भाँति चमकेगा। सर्वप्रथम तुम्हारी आत्मा के प्रस्ताव, अन्तर की ध्वनि दिव्य बनेगी तब तुम सच्चे महावीर बन सकोगे।

इस प्रकार कविने लेखनी द्वारा महावीर के सामाजिक और आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रो में वास्तविक जीवन-दर्शन का उद्घोष जनता के समक्ष रखा है। अतः कवियों के काव्यों के द्वारा महावीर के आदर्शों एवं सिद्धांतो को जन-मानस तक पहुँचाने का प्रयास किया है वह अनुमोदनीय है। इस प्रकार का माध्यम उन्होंने प्रकृति को बनाया।

भगवान महावीर काव्यों में कवि ने देश के प्राकृतिक सौंदर्य, उसकी नदियों, घाटियों, पर्वतों, खेतों, वनो आदि सभी का सुंदर चित्रण अंकित किया है। जैसे गंगा-यमना बह रही है। इस में सुंदर हरे भरे खेत है। नर्मदा की लहरों में एक करुणा का संगीत है। देश की काली माटी की उजली गोद में कृतियों के पौधे लगे हुए हैं, जिस में से वेद-कमाओं की गंध बह रही हैं। भारत का यश सर्वत्र व्याप्त है। यह संतो का देश है। इसके पर्वत शिखर नभ को मौन संकेत दे रहे हैं। पवन से झूमते वन हरे भरे हैं। भारत को प्राकृतिक सौंदर्य का अनूठा चित्रण कविने काव्य में संवारा है -

---

१. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-८, पृ.३३९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सागर चरण परवार रहा है, सुरभित सरिताएँ गाती हैं।
अम्बर भारत का गौरव है, धरती भारत की थाती है ॥[१]

***

उन्नत शीश हिमाभ्रहिमालय, सूर्य सुनहरा मुकुट भाल पर।
परिक्रमा कर रहा हिमानिल, यहाँ नाचते कृष्ण व्याल पर ॥[२]

***

वास्तव में कविने आलम्बन के माध्यम से चेतन-अचेतन प्रकृति का सजीव चित्रण अंकित किया है। हमारी परिस्थिति जीवन का आलम्बन है, अतः उपचार से वह हमारे भावों का भी आलम्बन है।

कवि ने काव्यों मे परिस्थिति का पुरा ध्यान रखा है वह पार्श्ववर्ती दृश्यों के मध्य ही प्रायः आलम्बन की प्रतिष्ठा करता है। कविने काव्य में तपोमय भारतभूमि तथा उसके सौन्दर्य का सुंदर चित्रण किया है-

ऐसे उत्थानों का भारत, अर्चित है झरनों केजलसे।
यह देश महावीरों का है, वट वृक्ष बना तप के बलसे ॥
यह वन है खिले गुलाबों का फूलों में कांटे बड़ेबड़े।
यह देश सुगन्धित फूलों का जब फूल छुवे तब शूल गड़े ॥[३]

***

अवतीर्ण हुए हैं भारत में, शंकर तीर्थंकर मुनि ज्ञानी
इन्द्रासन की रक्षा करते निज अस्थिदान कर ऋषिदानी ॥[४]

अति प्राचीन भारत देश के मध्य स्थित कुण्डलपुर नगरी की शोभा का वर्णन कवि ने बड़ा ही मनोरम किया है। चारों ओर से दृढ कोट से धिरी हुई यह नगरी है। गगन चुम्बी मकान, चारों दिशाओं में तोरण बंधे हुए हैं। स्वर्ण, चाँदी, हीरा माणेक, धन धान्य आदि से यह नगरी परिपूर्ण व रमणीय है,

---

१. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "पुष्प प्रदीप", सर्ग-१, पृ.२७
२. वही, पृ.२८
३. वही, पृ.२७
४. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-१, पृ.८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्दिशि में लोह तोरण द्वार
नगर रक्षा के सुदृढ आधार[१]
स्वर्ण-चांदी-हीरा-मुक्ता हार
और था धन-धान्य का व्यापार[२]

***

कवियों ने सौन्दर्य चेतना में लौकिक सौन्दर्य को अलौकिक भूमिका पर पर्यावसित करने का सफल प्रयास किया है, वह अनुमोदनीय है, यह कवियों की महत्वपूर्ण उपलब्धि रही है। सच कहा जाय तो पूर्वयुगीन काव्य में हमें ऐसी सूक्ष्म और गंभीर सौन्दर्य दृष्टि दिखाई नहीं देती है। यह सौन्दर्य दृष्टि सर्वथा मौलिक है।

कवि डॉ. गुप्तजी, मित्रजी, शर्माजी, योधेयजी, आदि समस्त कवियों ने महाकाव्यों में प्रकृति के विविध रुपों का उद्दीपन के रुप में भी अलौकिक चित्रण किया है। जन्म के समय का वातावरण, बालक्रीडा, उपसर्ग, शान्त, करुणरस, संयोग-वियोग आदि श्रृंगाररस वर्णन में कवि ने काव्य में प्रकृति के उद्दीपन भाव से उत्तम चित्र प्रस्तुत किए हैं। कवि ने काव्य के अन्तर्गत दो प्रकार के उद्दीपन भावों को लिया है - पात्रस्थ और बाह्य। पात्रस्थ में आलंबन की चेष्टाएँ। आलम्बन गत चेष्टाएँ तो सभी रसों में हुआ करती हैं पर बाह्य परिस्थितियों का उद्दीपन के रुप में श्रृंगार में ही विधान दिखाई देता है। अन्य रसो में प्रायः उनका अभाव है। कवि गुप्तजी, माणकचन्दजी, आदि कवियों ने भगवान के जन्म से पूर्व का वातावरण तथा रानी त्रिशला की देह का प्रकृति के साथ उसके अनुकूल चित्रण अंकित किया है -

गर्भ भार से मुख
आभा पीली पीली
कनक लता सी देह यष्टि
सुरभित गर बीली -[३]

***

---

१. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-१, पृ.८
२. वही, पृ. ११
३. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वातायन से चलकर आया
पवन हठीला
खेल खेलता अलक जाल से
खड़ा रंगीला[1]
***

जन्म के समय :

कवि प्रकृति का चित्रांकन बड़े ही सजीव रुप से प्रस्तुत करता है। भगवान के जन्म के समय जड़ और चेतन प्रकृति में चारों ओर हर्षोल्लास छा गया। प्रकृति में सब ओर से शुभ शुकन होने लगे। सभी सुखसागर की लहर में बहने लगी। सोने की चिडिया मुंडेरों पर प्रातः काल में चहकने लगी, मोर नृत्यगान करने लगा। मन को लुभानेवाला शीतल सुगंधित पवन धीरे धीरे चलने लगा। इस प्रकार कविने काव्य में प्रकृति के अनुकूल जन्म के समय का वास्तविक चित्रण किया है -

दीप्ति मान थी सभी दिशा निर्मल-निर्मल
भूसे समीर उड़ चला गगन की ओर विकल
माता त्रिशला ने दिया जन्म हो गया प्रसव
अवतरण धरा पर वर्धमान प्रभुका अभिवन-[2]
***

पेड़ो की फुनगी पर चिड़िया
गीत मनोहर गाती।
मलियानिल की पुरवाई सी
हवा गंध ले आती॥[3]
***

वीर भगवान के जन्म से गगन में मधुर ध्वनि बजने लगी। पुष्पों की वर्षा हुई। विश्व में सर्वत्र ही सुख की किरणें फैलने लगी। इन्द्र का सिंहासन कम्पित हुआ। इन्द्र सभी

---

१. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-१, पृ.११
२. वही, पृ.१३
३. "जय महावीर" : कवि माणकचन्द, सर्ग-४, पृ.४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवों को बुलाकर भगवान का अभिषेक एवं जन्मोत्सव मनाने के लिए चल दिये। अभिषेक के लिए, प्रस्थान करते हुए भगवान ऐरावत हाथी पर बैठे हुए दिव्य मनोहर सुंदर ऐसे दिख रहे थे मानो इस वसुन्धरा का वरदान हो। जन्मोत्सव का कविने बुद्धि कौशल से रमणीय चित्रण काव्य में किया है -

जा रहे मोद में भर सुमेरू पर्वत पर
जय हो ! जय हो ! जय ध्वनि से गुंजित अंबर
उल्लसित सभी हर्षातिरिक मन वाणी
तन रोमांचित ले चली सहज इन्द्राणी [१]

***

छा रहे थे अम्बुद अभिषेक
मयूरों से सुर नाचे देखे
घेर कर बैठ गये नगराज
सज गया दिक्पालों का साज- [२]

***

कवियों ने महावीर काव्य में भगवान महावीर के जीवन प्रसंगो का मार्मिक वर्णन प्रकृति के माध्यम से किया है। निर्जन वन में कठोर साधना का अनुभव होना, घोर उपसर्गो को सहन करना, धूप-छाया, शीत-उष्ण आदि कष्टों को समभावपूर्वक सहन करते हुए साधना के मार्ग पर आरूढ होना, आदि का काव्य में चित्रण हुआ है-

ग्रीष्म दिवस अति तप्त, सूर्य था प्रस्तर जैसे अंगारा।
वही हुए असीन उर्द्ध मुख ज्यों, प्रकाश की दिवि धारा॥ [३]

***

बैठ तरु तल समाधि में
किया करते तप में तन क्षीण

---

१. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-१, पृ.१५
२. वही, पृ.१६
३. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "तपस्या", सर्ग-११, पृ.१२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शिशिर में जल काया थर-थर
चर्तुष्पाद या सरिता तट पर - [१]

***

एक पाँव पर कभी बैठकर
प्रभु ने पुरा दिन काटा।
कभी आँधियों में ही रहकर,
अपना कर्म जाल काटा। [२]

***

यक्ष रात में घात लगा के -
टूटा उन पर वज्र गिरा के।
अट्टहास फिर किया जोर से -
अशनि-पात के तुमुल शेर से। [३]

***

भगवान की सहिष्णुता चरम सीमा पर थी। साढे बारह वर्ष की सतत साधना के अन्तर्गत अनेक उपसर्गो को भगवान ने कैसे शांतिपूर्वक सहन किया। उनकी ताड़ना, तर्जना, अपमान और उत्पीड़न कदम-कदम पर होते रहे फिर भी समता से इन कष्टों को किस प्रकार झेला ? कैसे संगमदेवता द्वारा छः मास तक निरंतर उपसर्गों की वर्षा हुई और भगवान अपने ध्यान से विचलित नहीं हुए। उसने विविध भयानक रुपों को धारण कर भगवान को परास्त करना चाहा, किन्तु स्वंय परास्त हुआ। इन उपसर्गों की क्रूरता-भयानकता का प्रस्तुतीकरण प्रकृति के माध्यम से किया है -

ध्यान मुद्रा में लगी समाधि
सामने भूत-प्रेत की व्याधि
नेत्र भारी विशाल को फाड़
खड़ा था सम्मुख मार दहाड़ - [४]

***

१. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-४, पृ.१४७
२. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, सोपान-६, पृ.२३५
३. "जय महावीर" कवि माणकचंद सर्ग-११, पृ.१०७.
४. "तीर्थंकर महावीर" : कविगुप्तजी, सर्ग-४, पृ.१५०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असूर गर्जन किलकारी मार
लगा होने मानो पतझार
वरसती थी नयनों से ज्वाल
लगे फूफकार मारने व्याल - [१]

***

विभिन्न स्थानों में भ्रमण करते हुए अनशन तप, कठोर साधना, कठिन परिषहों आदि प्रसंगो का गहन चित्रण किया है। ग्वालों द्वारा भगवान को असह्य पीड़ा करना करुण दृश्य कविने काव्य वर्णित किया है -

मूढ हृदय में क्रोध जगा के
रस्सा बैलों का ही लाके।
प्रभु पर खींच चलाया तत्क्षण
अपने-पन से होकर उन्मत्त। [२]

***

उसको क्रोध जगा वह प्रभु को
मन-ही-मन धिक्कारा।
कठिन काल की कील श्रवण से
ठोंकी वह हत्यारा॥ [३]

***

भगवान महावीर विविध स्थानों में भ्रमण करते हुए ऋजुकूला नदी के पास पहुँच गये। प्रकृति के सौरभ को देखकर भगवान का मन प्रसन्नता से भर गया। जृम्भि का गाँव के बाहर सरिता किनारे एक रत्न शिला की ओर भगवान बढने लगे, जिसके पर वृक्ष की शीतल छाया पड़ रही थी। मंद-मंद हवा से पत्तियाँ हिल रही थीं। इस मधुमय वातावरण में भगवान का ध्यान अधिक आत्म-दृढ हो रहा था। अवधिपूर्ण होने पर चार धाति कर्मों को नष्ट करके भगवान केवलज्ञान को प्राप्त हुए। कविने केवलज्ञान के बाद का रमणीय व सौम्य प्रकृति का वर्णन काव्य में किया है -

---

१. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-४, पृ.१५०
२. "जय महावीर" : कवि माणकचन्द, दशमा सर्ग-पृ.१०३
३. वही, सर्ग-१३, पृ.१२०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह नीलाम्बर था स्वच्छ दिशायें लोनी
वह मन्द हवा भी बहती आज सलोनी
देवों ने अंजलि भरकर पुष्प गिराये
गन्धोदक के छींटे प्रभु पर बरसाये। [१]

***

भगवान महावीर के केवलज्ञान उत्पन्न होते ही देवगण पंच दिव्यों की वृष्टि करते हुए ज्ञान की महिमा करने आये। श्रद्धा और भक्ति से भगवान की पूजा, स्तुति और केवलज्ञान कल्याणकका महोत्सव मनाया। तदुपरांत समवशरण की रचना की। कवि गुप्तजी ने काव्य-कौशल व बुद्धि चातुर्य द्वारा समवशरण का सुंदर चित्रण किया है।

रे भूमि भाग खाई का षट् ऋतु सुरभित
क्रीडा के सुंदर कुंज कुंज थे कुसुमित
वह चन्द्रकान्त मणि शिला जहाँ थी शीतल
विश्राम इन्द्र करते कि बैठकर इक पल। [२]

***

प्रभु के वन आगमन से प्रकृति में उल्लास की लहर उठने लगी। पशु-पक्षी, नर-नारी भगवान के स्वागत के लिए खड़े हैं। अपनी अपनी भाषा में सभी जड़-चेतन प्रकृति प्रभु के गुणगान करने लगे। सभी ने श्रद्धा से भगवान को वंदना की। सरिता आदि भगवान के चरण का पक्षालन करके अपने आप को धन्य-धन्य समझने लगी। इस प्रकार वीर प्रभु के पदार्पण से संपूर्ण आकाश मधुर गीतों से गूँजने लगा। इसी का चित्रण कविने करते हुए कहा है -

सब भाषाओं की वाणीने, सब भाषाओं में गुण गाये।
पग छू छू सभी दिशाओं ने, परिधान दिगम्बर से पाये॥
फूलों ने इत्र निचोड़ दिया, तरुओंने छाते तान दिये।
पग जिधर बढे खिल गये कमल, ज्ञानोदयने दियमान दिये॥ [३]

***

---

१. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, पंचम सर्ग-पृ.१७६
२. वही, "बालोत्पल", पृ.१८०
३. वही, "वनपथ", सर्ग-१०, पृ.२६१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनिनाथ बढे पथ पर आगे, वन वन ने चरण वंदना की।
सरिता सरिता ने पग धोये, पथ पथ ने चरण अर्चना की ॥
वर्षाने आ अभिषेक किया, गूँजे मेघों के मधुर गीत।
मोरों ने मनहर नृत्य किये, चरणों से करने लगे प्रीत ॥ [१]

***

जब भगवान का पावापुरी में शिष्यों सहित आगमन होता है उस समय का कविने प्रकृति का अलौकिक चित्रण खींचा है। खेतों की सुनहली फसल ऐसी दिखाई दे रही थी जैसे स्वर्णवालियाँ हो, उँचे उँचे तरुदल मानों नभ को स्पर्श कर रहे हों। तारे टिम टिम कर रहे थे। चाँदनी ऐसी दिख रही थी मानो धरती का गीत सुनाने नीचे उतर आई हो। सूर्योदय की किरणों की छटा अनोखी थी। एक विशाल सरोवर में पक्षी तपस्वी सा क्रीडा कर रहा था । बक ध्यान मग्न हो कर तपस्वी सा खड़ा था, मछलियाँ जल में उछल-कूद कर रही थी। पावापुरी का मोहक, रमणीय प्रकृति का चित्रण कवि ने काव्य में गुंथित किया है-

खेतों की फसल सुनहली
बिखरा हो जैसे सोना
आ निकट दूब को चरता
कोई स्वर्णिम मृग छौना- [२]

***

तारे टिम टिम कर देते
रातों को सहज विदाई
धरती को गीत सुनाने
चाँदनी उतर आई- [३]

पावापुरी में वीर भगवन्त के पदार्पण से जड़-चेतन आदि सभी प्राणियों में अलौकिक दिव्य भाव के दर्शन हुए। प्रकृति की शोभा मनोहर और आकर्षक दिखाई देने

---

१. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, "दिव्यदर्शन", सर्ग-१०, पृ.२७६
२. वही, सर्ग-८, पृ.३४३
३. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लगी। चारो ओर एक आनंद की लहर छा गयी। समस्त प्राणी अपनी-अपनी भाषा में भगवान के गुणगान गाने लगे। इस प्रकार सभी ओर संगीत की मधुर ध्वनि गूंजायमान होने लगी।

भँवरों में गीत अलापा।
पिंक ने मधुतान लगाई
सिर हिल-हिलाकर तरुदल ने
चरणों में डाल झुकाई। [१]

***

हम प्रकृति से ऐसे सजीव चित्रण से ही उसके साथ तादात्म्य का अनुभव कर सकने में समर्थ हो सकते हैं। कवि ने भगवान महावीर के पावापुरी में आगमन के समय का प्रभावोत्पदक चित्रण किया है। उससे एक सजीवता ही खड़ी कर दी है। एक दृश्य ही खड़ा हो गया है।

आगे आगे चलता था
मलयज बुहाराता पथ में
प्रभु महावीर थे पीछे
आसीन ज्ञान के रथ में- [२]

***

ऐसा लगता धरती पर
उमड़ा अपार धरती पर
चलनेवाले को कैसा
विश्राम कहीं भी क्षणभर- [३]

***

जिस समय प्रभुका निर्वाण होता है, उस समय जड़-चेतन प्रकृति शोक में डूब जाती है। प्रभु के वियोग से सभी ओर विलाप का वातावरण छा जाता है। गौतम गणधर को वीर प्रभु के निर्वाण का समाचार मिलते ही जैसे आसमान ही टूट पडा है। लगता है

१. "तीर्थंकर महावीर", कवि गुप्तजी, सर्ग-८, पृ.३४१
२. वही, पृ.३३८
३. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसे आकाश से बिजली गिर पड़ी हो। इस प्रकार की अत्यंत दारूण स्थिति का वर्णन कविने काव्य में वर्णित किया है। जिस के पठन मात्र से पाठक का हृदय भी रोने लगा है। काव्य का वर्णन इतना सटीक है कि पूरे वातावरण का दृश्य आँखो के सामने घूमने लगता है -

गौतम के युगल नयन से
झर रही अश्रु धारायें [१]

***

रो उठे फ फ क कर गौतम
सुन प्रभु की अंतिमवाणी। [२]

***

सूरज ने छिपा लिया मुख
बादल को औट बनाकर
रो उठे दिशा वन उपवन
रो उठा विकल हो अम्बर। [३]

प्रभु की अन्तिमवाणी सुनकर गणधर गौतम फूट फूट कर रोने लगे। कार्तिक कृष्ण की अमावस की रात आ गई। प्रभु की दिव्य वाणी स्थंभित हो गयी। हँस उड़कर चल पड़ा और रह गया मृत शरीर। केवल धरती पर माटी ही रह गई। भगवान के परिनिर्वाण के पश्चात् गणधर को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। पूजन के थाल सजकर सभी मंदिर में आ रहे थे। शंख ध्वनियाँ बजती थीं। मंदिर में जय महावीर की जय ध्वनियाँ ध्वनित हो रही थी। पावापुरी धरती का कण-कण पावन बन गया। निर्वाण भूमि तीर्थ बन गई। वृक्षों के समूह, पत्तियाँ, हिल-मिल कर मानों प्रभु की समाधि की ओर संकेत कर रहे थे। भू-अम्बर से जय महावीर, जय तीर्थंकर की आवाज गूँजती है।

इस प्रकार कवियों ने काव्य के अन्तर्गत अपनी लेखनी द्वारा जन्म से लेकर प्रभु के निर्वाण तक का प्रकृति के अनुकूल उत्तम वर्णन चित्रित किया है। प्रभु का जन्म होना, इन्द्र द्वारा जन्म कल्याणक का आयोजन करना, देव-देवियाँ, इन्द्र आदि का

---

१. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-८, पृ.३५०
२. वही, पृ.३४९
३. वही, पृ.३५१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिलकर मेरु पर्वत पर अभिषेक करना, बाल-लीला आदि का वर्णन सरल-सुबोध शैली में प्रकृति के माध्यम से किया है। जंगली प्राणियों द्वारा घोर उपसर्ग, केवल ज्ञान की प्राप्ति के समय पावापुरी में आगमन एवं निर्वाण आदि का प्रकृति के अनुकुल, भावानुकूल, विषयानुकूल सुंदर चित्रण किया है।

वास्तव में कविने प्रकृति का स्वाभाविक चित्रण अंकित कर काव्य के सौंदर्य को बढाया है।

*****

प्रबन्धों में रस दर्शन

काव्य में रस की महत्ता :

काव्य में रस की विशेष महत्ता है, उसका विशेष स्थान है। काव्य की आत्मा रसादि ही हैं। जहाँ रस है वहाँ काव्य है और जहाँ रस नहीं है वहाँ काव्य नहीं है। उसका मतलब यह न हो कि रस के आधिक्य से काव्य की कथावस्तु का प्रवाह ही विच्छिन्न हो जाए।

काव्य और रस का अभिन्न संबंध है। मानव के मन में समय-समय पर उत्पन्न होनेवाले विकारों से रस की सिद्धि होती है। ''रस्यन्ते अन्तरात्मनाऽनुभूयन्ते'' इति रसाः अर्थात् अन्तरात्मा की अनुभूति को रस कहते हैं। कवियों ने महावीर प्रबन्धों में विषयनानुकूल, भावानुकूल रसों का अद्वितीय चित्रण प्रस्तुत किया है।

शांतरस :

कवियों ने साहित्य-शास्त्रियों की भाँति ही शम को शान्तरस का स्थायी भाव माना है। उन्होने एक मतसे, राग-द्वेषों से विमुख होकर वीतरागी पथ पर बढने को ही शान्ति कहा है। उसे प्राप्त करने को दो उपाय कविने काव्यों में बताये हैं-तत्वचिंतन और वीतरागियों की भक्ति।

उन्होने शान्त भाव की चार अवस्थाएँ स्वीकार की है। प्रथम अवस्था वह है जो मन की प्रवृत्ति, दुःख रुपात्मक संसार से हटकर आत्म शोधन की ओर मुड़ती है। यह व्यापक और महत्वपूर्ण दशा है। दूसरी अवस्था में उस प्रमाद का परिष्कार किया जाता है, जिसके कारण संसार के सुख-दुःख सताते हैं। तीसरी अवस्था वह है जब कि कषाय-वासनाओं का पूर्ण अभाव होने पर निर्मल आत्मा की अनुभूति होती हैं। चौथी अवस्था केवलज्ञान के उत्पन्न होने पर पूर्ण आत्मानुभूति को कहते हैं। इनमें स्थिति ''शम'' भाव ही रसता को प्राप्त होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शान्तरस स्थायी भाववाला होता है और इस की उत्पत्ति कवि ने काव्य के अन्तर्गत तप और योगि संपर्क आदि विभावों से बतायी है। तथा काम, क्रोध आदि अभावरुप अनुभावों होते हैं। धृति, मति आदि इसमें व्यभिचारी भाव होते हैं अर्थात् जिसका 'शम' रुप स्थायी भाव है तथा जो मोक्ष का आपादक है। यह तत्वज्ञान, वैराग्यचित्त शुद्धि आदि विभावों के द्वारा उत्पन्न होता है।

प्रस्तुत भगवान महावीर संबंधी काव्यों में शान्तरस की प्रधानता है। तथा काव्यों का अन्त भी शांतरस में होता है। भगवान महावीर के काव्य नायक धीर प्रशान्त महावीर हैं। वे मोक्षफल के दाता हैं । कवियों ने भगवान महावीर काव्यों में जन्म से लेकर निर्वाण तक के भावों के अनुकूल रसों का चित्रण खींचा है। तीर्थंकर का जन्म सम्पूर्ण प्राणी जगत के लिए मंगलमय होता है, इसीलिए उनके जन्म-प्रसंग पर मनुष्य ही नहीं, स्वर्ग के देव-देवियों इन्द्र एवं इन्द्राणी तक खुशी मनाते हैं। पशु-पक्षियों में आनन्द की लहर दौडने लगती हैं, संगीत की मधुर ध्वनि सुनाई देने लगती है, मयूर नाचने लगते हैं। कवि ने भगवान के जन्म से पूर्व वातावरण की शान्ति का सुंदर चित्रण काव्य में किया है -

निर्मल अम्बर सुन्दर समीर, फैला बसन्त बन बागों में।
मंगल ध्वनियाँ मनहर बाजे, पक्षी गाते सब रागों में॥
नक्षत्र सभी अनुकूल हुए, शुभ घड़ियों की आ गई घड़ी।
उस क्षण की पूजा करने को, सिद्धियाँ खड़ी थी बड़ी बड़ी॥ [१]

***

कोई गायन वादन करती मनमोहक नृत्य दिखाती थी,
पूछा करती थीं प्रश्न गूढ सुन्दर आख्यान सुनती थी,
वे वन क्रीडा को ले जातीं कोई नीत महल सजाती थी,
विक्रिया ऋद्धि से चमत्कार वे नाना भाँति दिखाती थी। [२]

***

वह शुभ दिन आया, मन हरषाया, प्रकृति छटा अति पावन थी।
मृदु मंद सुगंधित अनिल प्रवाहित, शीतल प्रेम लुभावन थी॥

---

१. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "जन्मज्योति", सर्ग-४, पृ.९५
२. "त्रिशलानन्दन महावीर" : कवि हजारीलाल, पृ.३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस दिव्य शक्ति का तेज प्रकट था, नर शिशु का तन अतुलित था।
देख विमोहित सकल नारियाँ, आकर्षण अतुल अपरिमत था॥ [१]

***

भगवान के जन्म के पश्चात् चारों और शान्ति का साम्राज्य फैल जाता है। प्रकृति में भी शांति का वातावरण छा जाता है। इन्द्र-इन्द्राणी, देवगण और जन-मानस में आनन्द का सागर उमड़ने लगता है -

बज उठी देव दुन्दुभी हुआ जयनाद-गहन
शंखध्वनि से आपूरित धरती और गगन
स्वर्ग से वृष्टि थी पारिजात के पुष्पों की
हो गई ध्यान मुद्रा विभंग ऋषि-मुनियों की [२]

***

कोई करता था नृत्य दौडता कोई
मंगलवेला की बेलि किसीने बोई
जा पहुँचे कुण्डलपुर में क्रम से सुरगण
भर गया सुरों से राजमहल का आंगन [३]

***

अवतीर्ण हुई वह दिव्य ज्योति, जो युग के तम पर प्रकाश।
घर घर में थे आह्लाद नये, घर घर में धन घर घर प्रकाश॥
वह प्रकट हुआ जो धरा बना, वह प्रकट हुआ जो गगन बना।
वह आया जो ब्रह्माण्ड ईश, त्रिशला ने अमर सपूत जना॥ [४]

***

पड़े दुःख में जीव अनेक
मिला कुछ उनको भी परित्राण।

---

१. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "दिव्य शक्ति अवतरण", सर्ग-३, पृ.३१
२. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-१, पृ.१३
३. वही, पृ.१४
४. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "जन्मज्योति", सर्ग-४, पृ.९६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जगी सुख की अनुभूति अजान-
न जिसका था कोई परिणाम।[१]

***

देवलोक में बजी बधाई-
गूँजा साज मनोहर
कल्पवृक्ष ने फूल गिराये-
खिलकर उनके ऊपर॥[२]

***

महाकाव्यों के अन्तर्गत कवि ने विविध प्रसंगो पर भिन्न-भिन्न शान्तरसका चित्रण अंकित किया है। जन्म से पूर्व जड़ व चेतन प्रकृति में शांति, राज्य में शांति, साधना में, वैराग्यता के समय में, भव निर्वेद में, समोवशरण में परस्पर वैरभावना में शांति आदि अनेक शान्तरस के पदों को काव्य में प्रस्तुत किया है। विविध प्रसंगों में वर्णित शांतरस के कुछ उदाहरण प्रस्तुत है-

केवल ज्ञान के समय की शांति का भाव देखिए -

वह नीलाम्बर था स्वच्छ दिशायें लीनी,
वह मन्द हवा भी बहती आज सलौनी,
देवों ने अंजलि भर-भर पुष्प गिराये,
गन्धोदक के छींटे, प्रभु पर बरसाये-[३]

***

चन्द्रयोग नक्षत्र उत्तरा-फाल्गुनी का था तब भगवान।
गोदुह आसन लगा बिराजे आत्म-रुप ले सम्यक् ज्ञान।
शुक्लध्यान की लथ में, केवल दर्शन का हो गया प्रकाश,
लोका-लोक भाव थे प्रभु के सन्मुख फैला आत्म-प्रकाश।[४]

***

---

१. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, सोपान-१, पृ.६९
२. "जय महावीर" : कवि माणकचन्द, सर्ग-४, पृ.४६
३. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-५, पृ.१७६
४. "चरम तीर्थंकर महावीर" : आचार्य श्री विद्याचंद्रसूरि, पद सं, १५७, पृ.४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जगमग करता सूर्य गगन में विहंस रहा था
महावीर के भीतर-बाहर हुआ उजाला।
मात्र ज्ञान का पुञ्ज बने बैठे ही बैठे,
दशों दिशाओं में फैला था शुभ्र उजाला। [१]

***

स्फटिक मणि सम देह हुई हो गए घातियाँ कर्म नाश,
बहती थी मंद सुगन्धवायु चहुँ दिशि में फैल गई सुवास,
शचि पति का आसन हिला तभीसुर वाद्य बज उठे अनायास,
तब इन्द्र अवधि से जान गया प्रभु अन्तर में फैला प्रकाश, [२]

***

आसन लग गई उसी तरू तल प्रतिमासन ध्यान लगाते हैं,
वैशाख शुक्ल दशमी को तब केवल ज्ञानी बन जाते हैं,
तप के प्रभाव से गाय सिंह पानी पीते हैं एक घाट,
छह ऋतुओं के फल फूल सभी तरूओं में आए एक साथ, [२]

***

वन में शांति :

मुनिनाथ बढे पथ पर आगे, वन-वन ने चरण बन्दना की।
सरिता सरिता ने पग धोये, पथ-पथ ने चरण अर्चना की।
वर्षा ने आ अभिषेक किया, गूँजे मेघों के मधुर गीत।
मोरों ने मनहर नृत्यु किये, चरणों से करने लगे प्रीत॥ [४]

***

खग कुल गुण गाने लगे
डाल डाल पर गीत

---

१. ''श्रमण भगवान महावीर'' : कवि योधेयजी, सोपान-७, पृ.२८७
२. ''त्रिशलानंदन महावीर'' : कवि हजारीलाल, पृ.६७
३. वही
४, ''वीरायण'' : कवि मित्रजी, ''दिव्यदर्शन'', सर्ग-११, पृ.२७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गीत गीत में प्रीत थी,
गीत गीत में जीत[१]

***

साधु सन्तों ने नमन किया, फल फूल चढ़ाये पेड़ों ने।
पग पग पर बढ़ते गये पैड़, पग पग बढाए पेड़ों ने॥
शेरो ने किया प्रणाम कहा, भगवान सिंह कुल के दादा।
ये अपने बाबा पड़बाबा, अति वीर सिंह कुल के दादा॥[२]

***

रिमझिम रिमझिम वर्षा आई, प्यासे पेड़ों को नीर मिला।
हँसती गाती वर्षा आई, वन-उपवन का हर फूल खिला॥
वन वन में वन सम्पदा बढी, भर गई अन्न से धरा वरा।
जब तप से गंगा आती है, हो जाता है संसार हरा॥[३]

समोवशरण में शांति :

सब के सब निर्भीक भाव से,
हिंसक पशु भी शांत भाव से।
उनके निकट आनकर बैठे,
मन में सब के मृदुल भाव थे।[४]

***

सुर नर मुनि जन देवगण,
जल थल नभ चर जीव।
समवशरण में सज गये,
नृपति मुकुट धर जीव[५]

***

---

१. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "दिव्यदर्शन", सर्ग-११, पृ.२७४
२. वही
३. वही, पृ.२७६
४. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, सोपान-५, पृ.१७७
५. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "ज्ञानवाणी", सर्ग-१२, पृ.२९८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सबने किया प्रणाम शीश कुछ अनायास ही झुक जाता था।
ऐसा लगता जन्म जन्म का जीवनऋण चुकता जाता था॥
पशु-पक्षीओं जीव जन्तु भी झुके जले आते थे।
परम दुःखी भी क्षण भर में ही परमोसुख पाते थे॥ [१]

***

नव में प्रकोष्ठ में सूर्य चन्द्र भी बैठे
औ अन्य कल्पवासी बैठे दस में थे
थे ग्यारहवें में मनुज और विद्याधर
थे सिंह और मृह बारहवें में आकर- [२]

***

भव निर्वेद में शांति :

आत्मा जब परमात्मा के स्वरुप को प्राप्त करती है उस समय जो अपूर्व शांति प्राप्त होती है उसका वर्णन कवि ने मनोहर शब्दावली में किया है-

रुक गई दिव्य वाणी की
सब अंग हो गये निष्क्रिय
लेकिन प्रतिमा का अब भी
वह योग चला रहा सक्रिय - [३]

***

शुक्ल ध्यान की चौथी स्थिति में जा पहुँचे
जहाँ कर्म, कोई शेष नहीं रहता।
शुद्ध-जीव, निज आभासे आलोकित था,
इसके नन्तर कोई बन्ध नहीं रहता [४]

***

---

१. भगवान महावीर कवि शर्माजी, "समवशरण परिषद", सर्ग-१४, पृ.१५५
२. "तीर्थंकर महावीर", कवि गुप्तजी, पंचम सर्ग, पृ.१९७
३. वही, आंठवाँ सर्ग, पृ.३५०
४. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, "परिनिर्वाण", नवम् सोपान, पृ.३४६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पावापुर के उद्यान माहिं आकर प्रभु ध्यान लगाया है,
ज्यों ही दिव्य ध्वनि बंद हुई सब समोरण बिखराया है,
लेकर के प्रतिमा योग प्रभु कर गई बहत्तर प्रकृति नाश,
चौदहवें गुण स्थान मांहि कर लिया प्रभु ने तभी वास, [१]

***

महावीर भगवान का, हुआ यहाँ निर्वाण
उड़ती यहाँ सुगन्ध है, दर्शन देते प्राण [२]

***

महा प्रभु ने अन्तिम यह मौन, बंद ये राजिव लोचन शान्त ।
मोक्ष का खुला शुचि भान, वायु मंडल भी बना प्रशान्त ॥
इन्द्रियों की अवरोधित राह, बंद थे सब भौतिक व्यापार ।
अनिल का राषित साँस प्रवाह, चेतना का सुअनन्त प्रसार ॥ [३]

***

श्रृंगाररस :

श्रृंगाररस का स्थायीभाव रति है। भगवान महावीर की पत्नी राजकुमारी यशोदा के संयोग और वियोग श्रृंगार का कवि ने काव्य में अवर्णनीय चित्रण किया है। उन्होने काव्य में त्रिशला के अंगोपांग की सौन्दर्यता का सजीव चित्रण किया है-

सु-आनना सुन्दर-चन्द्र-कान्त-सी,
सुकेशिनी नील-शिखा-समान थी,
सुपादसे आरूण पद्म-राग-सी,
सुशोभिता रत्न-मयी सुभीरू थी। [४]

***

चित्रकार या चतुर कलाविद
उसका शिल्प अनूठा था।

---

१. "त्रिशलानंदन महावीर" : कवि हजारीलाल, पृ.७६
२. "वीरायण": कवि मित्रजी, "अनन्त", सर्ग-१४, पृ.३४१
३. "भगवान महावीर" कवि शर्माजी, "पावापुर निर्वाण", सर्ग-२०, पृ.२०
४. "वर्धमान" कवि अनूप शर्मा, सर्ग-१, पृ.४९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसकी कूर्च में पूरित था -
मौलिक भाव अटूटा-सा ॥[१]

***

कविने राजकुमार वर्धमान और राजकुमारी-यशोदा के दाम्पत्य जीवन का कल्पना की तूलिकासे रंग भरकर रति भाव का अलौकिक चित्रण अंकित किया है-

दुल्हन का जो रुप निहारा दुल्हा ने
हृदय उछलकर, जैसे मिलने को भागा।
एक घड़ी ऐसी थी आई जीवन में -
सागर नदिया में मिलने को था भागा।[२]

***

काया में काया के घुलने की वेला
आलिंगत हों-जैसे धरती और गगन।
एक अलौकिक सुख का पुलकित भाव प्रबल-
जिस में पुरुष और नारी हों प्रेम-मगन।[३]

***

रस में सरिता सागर में थी, सुख में दो तन थे एकरुप।
तन के महलों मे लीन हुए, रानी में खोये हुए भूप ॥
रानी राजा के चरण चूम, बोलो प्रिय तुम जल में प्यासी।
पर प्यास हमारी नीर बने, उपवन के फूल न हों बासी ॥[४]

प्रेम दो प्रकार का होता है-लौकिक और अलौकिक। राजकुमारी यशोदा का प्रेम लौकिक धरातल से उठकर अलौकिक धरातल पर प्रतिष्ठित हो गया था। इस में समूचा आत्म-समर्पण होता है और प्रेम के प्रत्यागमन की भावना नहीं रहती है। हिन्दी-कवियों ने कवि सूरदास की भाँति श्रृंगाररस का अनोखा चित्रण काव्य में किया है। कवि द्वारा पत्नी यशोदा की विरह वेदना का करुणामय चित्रण देखिए।

---

१. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, "विविध विचार", सोपान-३, पृ.९९
२. वही, "गृहस्थ में", सोपान-३, पृ.१०५
३. वही, "विविध विचार", सोपान-३, पृ.१०५
४. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "जन्मज्योति", सर्ग-४, पृ.८९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वियोग श्रृंगार :

कण कण जलता और पिघलता
काया तिल तिल चटक रही।
अंग अंग जैसे कटते हों,
हड्डी हड्डी तिड़क रही।[१]

***

स्व की पीड़ा को स्वयं ही जान सकता है, पराई पीड़ा को कौन जानेगा ? कवि यशोदा के शब्दों में अंतः मन की विरह व्यथा को राजकुमार वर्धमान को व्यक्त करते हुए काव्य में लिखते हैं कि-

ऐसे ही जाना था तजकर
तो क्यों मुझको ले आए ?
तो क्या मेरे अन्तर्मन में,
टीस जगाने को लाए ?[२]

***

पत्नी यशोदा कभी अनिल से, कभी नभ की परी से, कभी चन्द्रमा से, तो कभी सूरज से पतिदेव के कुशल क्षेम का समाचार पूछती है और प्रियतम को असह्य वेदना का संदेश भी भेजती है। वह अपने प्रियतम को किसी न किसी प्रकार से प्राप्त करना चाहती है। प्रकृति के प्रत्येक कण-कण में उसे खोजने का प्रयास करती है।

अरि अनिल परदेश से आई है गतिमान।
कह प्रियका संदेशा कुछ, कुशलक्षेम भगवान॥[३]

***

जारी नभ की परी, प्रिय से कह संदेश।
गौरी अब काली पड़ी बसे कौन से देशः

---

१. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, "विदा की वेला", तृतीय सोपान, पृ.१२६

२. वही, पृ.१२५

३. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, यशोदा विरह, सर्ग-१५, पृ.१६५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अरी घटा उस देश जा, जहाँ नारी के कंत।
यहाँ बरसि क्यों रीतती, ऊसर थल पर हंत। [१]

***

प्रियतम वर्धमान कुमार वन की ओर प्रयाण करते समय प्रिया यशोदा के अन्तर्मन के अनेक प्रश्न उभरकर अश्रु-जलके रुप में बह निकलते हैं। इस प्रकार कवि ने राजकुमारी यशोदा की वेदना युक्त मनःस्थिति का करूण चित्रण काव्य में किया है-

यह कैसा है न्याय पुरूष का
निर्णय स्वयम्, सुना डाला।
हरा भरा जीवन मेरा तो,
पलमें भस्म बना डाला। [२]

***

मेरे लिए महल का जीवन
शूल भरा है पीड़ा स्थल।
बिन स्वामी के नरक तुल्य है,
नागों का है क्रीडा स्थल [३]

राजकुमारी यशोदा मार्ग में खड़ी खड़ी पतिदेव के लिए मंगल कामना करती हुई अपनी मधुरवाणी में हृदयोद्गारों को व्यक्त करती हैं -

मग में वियोगिनी खड़ी-खड़ी, गाती थी जाओ जय पाओ।
मेरे मनहर मेरे उपास्य ! मेरी पुजा के हो जाओ॥ [४]

***

तुम तप करने को जाते हो,
मैं बदली बनकर साथ चली,
तुम को धूप न लगने पाये,
इसलिए धूप में स्वयं जली॥ [५]

***

१. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, यशोदा विरह, सर्ग-१५, पृ.१६५
२. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, "विदाय की वेला", तृतीय सोपान, पृ.१२६
३. वही
४. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "वनपथ", सर्ग-१०, पृ.२५५
५. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभु तुम जिस पथ से जाओगे
मेरी काया छाया होगी।
मेरे प्रभु बाल ब्रह्मचारी,
पूजा मेरी माया होगी ॥ [१]

***

यह लौकिक प्रेम जब निसृत होता है तब सृष्टि के कण-कण में एक दिव्य चेतना दिखाई देने लगती है। सारे भेदों का अन्त होता है। इसमें इतनी शक्ति होती है कि पाप भी पुण्य में परिणत हो जाता है। काव्य में प्रेम के संयमित और उदात्त स्वरुप को ही कवि ने ग्रहण किया है। प्रेम के क्षेत्र में सौन्दर्य की नूतन कल्पनाओं, प्रेम का उदात्तपक्ष कवियों ने महावीर काव्य में निरुपण किया है। राजकुमारी यशोदा प्रियतम की स्मृति में अपनी सखी से कहती है कि-

देख अनाधिन सी यह कलिका, मुरझाई बिना खिली सी।
शैशव में भी नहीं किलकती, गुमसुम सी है होठ-सीली सी ॥ [२]

***

चकवी जैसे रात रातभर, प्रिय से बिछुड़ कलपती है ॥
कौन समझता ? किसका दुःख है ? जिस पर बीती वही जानता। [३]

***

बिना वृक्ष के बेल अभागिन, ऐसी ही स्थिति मेरी है।
जैसे सलिम बिना सरिता हो, शुष्करेत समयह चेरी है ॥ [४]

राजकुमारी यशोदा अपनी बेटी प्रियदर्शना से कहती है कि

आ बेटी ! प्रभु के गुण गालें।
जग के हित प्रभू सूर्य बने हैं, मंगल-पर्व मना लें ॥ [५]

***

---

१. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "वनपथ", सर्ग-१०, पृ.२५५
२. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, यशोदा विरह, सर्ग-१५, पृ.१६४
३. वही, पृ.१६८
४. वही
५. वही, पृ.१६३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कविने यशोदा के विरह का विविध प्रतीकों के द्वारा चित्रांकन किया है। उन्होने चाँदनी, संध्या, बिजली, लहर आदि को मिलन, विरह, प्रफुल्लता उदासी, वेदना, उल्लास आदि के प्रतीक बनाकर काव्य में चित्रण किया है। यशोदा प्रिय सखी को सम्बोधन करके कहती है-

देख अरी कुछ सूरज सा है, करता आता शुभ्र प्रकाश।
लगता है मेरे स्वामी ही पहुँच रहे हैं नभ के पास॥ [१]

***

देखो री वह चन्द्र है, कला लगी है साथ।
मैं ऐसी हत भागिनी त्याग गये हैं नाथ॥ [२]

***

हाय सखी ! कैसे कहूँ ? सुखद स्वप्न प्रिय साथ।
गुड़ी तनी नभ में कहीं, शिथिल डोर है हाथ॥ [३]

***

कवि ने प्रकृति को ससीम से असीम की ओर व्यष्टि से समष्टि की ओर विकसित किया है। प्रेम काव्यों में पुष्ट, प्रांजल एवं गंभीर होकर कवि की अन्तर साधना के रुप में प्रस्तुत हुआ है। जिसके माध्यम से कवि निजी जीवन के अनेक मानवीय गुणों का विकास करता है।

वात्सल्य रस :

वात्सल्य के सम्राट कवि सूरदास की भाँति डॉ. गुप्तजी, डॉ. शर्माजी एवं कवि योधेयजी आदि कवियों ने वात्सल्य की अवर्णनीय सुन्दर झांकी काव्य में प्रस्तुत की हैं। देव-देवियाँ, इन्द्र-इन्द्राणी सभी प्रभु की सेवा में रत हैं। कोई प्रभु के अंगोपांग को सुसुज्जित करती हैं तो कोई खिलौने, कोई मस्तक पर स्नान कराकर केशर का चंदन लगाती है तो कोई आँखो में अंजन देती हैं। इस प्रकार भगवान को दिव्याभूषणों से सज्जित करने का तथा अंगोपांग की चपलता का चित्ताकर्षक चित्रण कविने काव्यों में वर्णित किया है -

---

१. ''भगवान महावीर'' : कवि शर्माजी, ''यशोदा विरह'', सर्ग-१५, पृ.१६५

२. वही, पृ.१६४

३. वही, पृ.१६३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोई स्नान करा मस्तक पर
केशर का चंदन
कोई लगा डिढौना-पहिना
देती दिव्य वसन -[१]

***

घुटनों के बल गिरे सरकते
चले पेट के बल
रत्न खिलौने हाथी घोड़ा
पाना था केवल - [२]

***

प्रायः सभी कवियों ने प्रभु की बाल्यावस्था का सौन्दर्य एवं शारीरिक चेष्टाओं का ही नहीं, बल्कि उनकी अन्तः प्रकृति के भी सजीव और हृदयग्राही चित्र अपनी काव्य कुशलता से अंकित किये हैं। कवि डॉ. रामकृष्ण शर्माजी के वात्सल्य चित्रण में ममतामयी माता के स्नेहपूर्ण हृदय की व्याकुलता और औत्सुक्य की व्यंजना का सुंदर आलेखन हुआ है। जिस समय माता त्रिशला मुदित होकर पलने में झूला झूलाकर मधुर स्वरों में लोरियाँ गा रही है, उस समय के वात्सल्य का कविने सजीव चित्रण किया है -

गाती रसमय मुदित लोरियाँ
आओ परियाँ! नवल गोरियाँ [३]
आरी निंदिया! प्यारी निंदिया!
माथे सोहे मोहन बिंदिया। [४]

***

वीर प्रभु घुटनों के बल पर चलने का अनुपम चित्रण देखिए -

छम छम पायल बजतीं

---

१. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-१, पृ.२८
२. वही
३. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "शैशवलीला", सर्ग-४, पृ.४६
४. वही, पृ.४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किकिनियाँ कलखसा
माताके मन आनन्द भरती[१]

***

झूम झनन झून झूनियाँ
बजती पैरों में पैजनियाँ
लाला चलता चाल घुटनियाँ[२]

***

बालक माता से कहता है कि हे माँ ! मुझे चम्दा दे दों, मैं खेल खेलुँगा-

मचल गया शिशु दे माँ चन्दा
खेल रचाऊंगा गल फन्दा ॥[३]

***

देदे गेंद चन्दनी डंडा
बना कलम यह ले सरकंडा ॥[४]

***

कवि हजारीलाल कृत ''त्रिशलानन्दन'' काव्य में भी बालक माता के साथ तुतलायी भाषा में बोलना, और माता के साथ हँसी-मझाक करना, बालक किस प्रकार बैठता है, उठता है, खाता है, पीता है और सोता है आदि बाल चेष्टाओं का सूक्ष्म निरिक्षण काव्यों में किया हैं। बालक के हाव-भावों को देखकर माता का उनके प्रति किस प्रकार वात्सल्यभाव उमड़ता है वह देखिए -

दुतिया का चाँद बढ़े, जैसे ऐसे प्रभु बढ़ते जाते थे,
माता के साथ बात करते, तो अक्सर ही तुतलाते थे,
रत्नों की धूल उठा करके, हँसकर सरपर ढुलकाते थे,
गिरकर उठते फिर चल देते, क्रियाए कई दिखाते थे।[५]

***

---

१. ''भगवान महावीर'' : कवि शर्माजी, ''शैशवलीला'', सर्ग-४, पृ.४८
२. वही, पृ.४९
३. वही
४. वही
५. ''त्रिशलानन्दन'' : कवि हजारीलाल पृ.३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हँसी हँसी में मीठी झिड़की
खाकर शिशु ने होंठ सिकोड़े।
माता ने चिपकाया उर से
हँसकर दासी के कर जोड़े। [१]

***

वीर बालक जिस समय पनहारिन का खेल खेल रहा था, उसी समय की बाल चेष्टा का प्रशंसनीय चित्रण काव्य में कवि ने किया है -

मारा ढेला गिरी मथनियाँ
लड़ने को आ गई दुलहनियाँ॥
बरजो रानी बालक अपना,
अभी उम्र को छोना ढ़ोना, दिखा रहा रसरंजित सपना॥ [२]

***

माता पनहारिन को समझाती है कि देखो बहिन; बुरा मत मानना। अभी बालक छोटा है। बाल्यावस्था निर्विकार और निर्मल सच्चित सोना जैसी होती है। तुम्हारा घड़ा फूट गया तो लादूँ तथा चुनरियाँ सीदूँ। हे पनहारिन! ज्ञान कूप रुपी तप से युक्त बुद्धि की गगरियाँ भर दो-

घडा फूटा तो नव घट दे दुँ, सीं दूँ फटी चुनरियाँ
ज्ञान कूप से तप रसरी ले, भर लो बुद्धि गगरियाँ॥ [३]

***

राजकुमार वर्धमान ने साधना के लिए गृहत्याग कर वन में जाने का निर्णय किया, उस समय माता का बालक के प्रति वात्सल्य उमड़ पड़ा और दुःखी स्वर में अपने मनोभावों को व्यक्त करती हुई पुत्र को समझाती है -

तू कमल फूल-सा कोमल
तप की कठिन डगर

---

१. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, "बाललीला", द्वितीय सोपान, पृ.७८
२. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "शैशवलीला", सर्ग-४, पृ.४९
३. वही, पृ.५०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तप के महान उपसर्ग
सहन होंगे क्योंकर- [१]

***

जब धहरायेगें नभमें
वर्षा के बादल
तम फैला रहा गहरा
भूपर काला काजल [२]

***

जिस समय भगवान दीक्षा के लिए वन की ओर प्रस्थान कर रहे हैं, उस समय माँ की ममता व विरहजन्य स्थिति का करुण चित्रण कवि अनूप शर्मा आदि कवियों ने प्रस्तुत किया है -

वह गिरी बिद्ध विहंगी-सी
आहत धरती पर
सुत के वियोग में काँप
उठी काया थर-थर [३]

***

चल रही साथ माँ
मग्नमना दीना हीना
थी अस्त-व्यस्त-सी तन की
सुधबुध कुछ भी ना- [४]

***

वह फूट-फूट रोती जाती
थी डकराती

---

१. ''तीर्थंकर महावीर'' : कवि गुप्तजी, तृतीय सर्ग, पृ.११२
२. वहीं, पृ.११४
३. वही, पृ.१०९
४. वहीं, पृ.१११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसकी विह्वलता रूदन
देख फटती छाती-[1]

***

कवियों द्वारा, प्रस्तुत वात्सलन्य वर्णन को पढ़ते समय सूर का बालवर्णन साकार होने लगता है। जैसे माँ-यशोदा और कृष्ण की बाललीलाओं का वर्णन सूर ने किया है। उसी तरह का वात्सल्य वर्णन इन कवियों ने भी किया है। ये रचनायें सूर की परवर्ती रचना में होने से उन पर सूर का प्रभाव होना स्वाभाविक हैं जो परलक्षित होती है।

करूणरस :

करूणरस का स्थायी-भाव शोक है। कवि ने काव्य के अन्तर्गत भगवान महावीर के त्याग के समय माता-पिता, भाई और पत्नी के प्रति करूणा, चन्दबाला के कष्ट के प्रति करूणा और चराचर जगत के प्रति महावीर की दृष्टि में करूणा आदि विविध प्रसंगो पर करूणरस का रमणीय चित्रण चित्रित किया है -

नयनों में आंसू भरे
देखते नर-नारी
प्रभु के वियोग की धिरी
घटा पुर में भारी[2]

***

यह क्या : दीखे नन्दी वर्धन,
फूट फूट कर रोते से।
सम्बन्धों की वसुधा-उर में
प्रेम बीज वर बोते से ॥[3]

***

महावीर के वनगमन के समय वन के समस्त प्राणी अपना भान भूलकर शोक में डूब गये थे। इस प्रकार जड व चेतन प्रकृति में शोकमय वातावरण छाया हुआ था-

---

१. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, तृतीय सर्ग, पृ.१११
२. वही, पृ.१०९
३. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "सन्यस्तसंकल्प", सर्ग-१०, पृ.१२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तोता-मेना, सारस जोडी, कल कपोत के नव जोडे
चुप चुप रोते गुमसुम होते, नीचे को अनन मोडे ॥
फूट पड़ी थी घटा कहाँ है, ज्योति जाल उस चपलाका।
निशा साँवरी क्रन्दन करती, कहाँ तेज है चन्द्र कलाका ॥ [१]

***

कवि ने चंदना को वेश्या के घर बेंचे जाने पर, उनके साथ किये गये क्रूर व्यवहार को करूण भावों में व्यक्त किया है -

वेश्या ने कोड़ा मंगवाकर चंदन बाला पर वार किया,
हर बार बार करती थी वह लेकिन इसने इन्कार किया,
बाला रोती थी जोर जोर, जुड़ गए हजारों नर-नारी,
यह दृश्य देखकर ऋषभसैन के दिल में बढ़ी दया भारी। [२]

***

कविने भगवान महावीर काव्य में निर्वाण के पश्चात् गौतम आदि शिष्यों का करूण विलाप तथा प्रकृति के शौकमय वातावरण का दारूण्य चित्रण अंकित किया है-

होकर अनाथ विकला-सी
वह शिष्य मण्डली रोई
दुःख के अपार सागर में
वह मूढ़ बनी-सी खोई - [३]

***

सूरज ने छिपा लिया मुख
बादल को ओट बनाकर
रो उठे दिशा वन उपवन
रो उठा विकल हो अम्बर [४]

---

१. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "सन्यस्तसंकल्प", सर्ग-१०, पृ.१२४
२. "त्रिशलानन्दन महावीर" : कवि हजारीलाल, पृ.६२
३. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी सर्ग-८, पृ.३५१
४. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीभत्स रस :

यद्यपि महावीर सम्बन्धी प्रबंधों में बीभत्स रस नहिंवत् है। भगवान पर जो घोर उपसर्ग हुए उन वर्णनों में स्वाभाविक रुप से बीभत्स की झलक दिखाई दी है।

"श्री रघुवीरशरण" कृत "वीरायण" काव्य में बीभत्स रस का वर्णन चित्रात्मक रुप से किया है। बीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा है -

कुछ भूत लोथों का उठा,
नाली बहाते रक्त की,
लड्डू बनाते मांस के,
रबड़ी बनाते रक्त की। [१]

***

रौद्र रस :

रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। भगवान के जन्म से पूर्व चारों और अंधकार फैला हुआ था। बहनें लुटीं जा रही थी। मानव दानव बनकर तलवारों, भालों से हत्या कर रहे थे उसी क्रूरता का सजीव चित्रण कवि ने काव्य में किया है :-

भाई के आगे बहिन लुटी, हत्यारों को कुछ होश न था।
शिशुओं को भालों से गोदा, तलवारों को कुछ होश न था॥
मानवता नंगी डाली, धर्मान्धों की मनचाहीने।
भारत माता को घेर लिया, धर्मो की घोर तबाही ने॥ [२]

***

एक बार भगवान ध्यान में लीन थे। एक ग्वाला अपने बैलों को लेकर उधर आया। भगवान ध्यानस्थ अवस्था में वृक्षों के नीचे खड़े थे। ग्वाला बैंलो का ध्यान रखने का कहकर चला गया। वापिस लौटने पर जब ग्वाला ने बैलों को न देखा तो तपस्वी मुनि पर असह्य क्रोध किया। इन्हीं भावों के अनुकूल रौद्र रस का चित्र कवि ने काव्य में वर्णित किया है -

मूढ़ ह्रदय में क्रोध जगा के
रस्सा बैलों का ही लोके-

---

१. "वीरायण" : "कवि रघुवीर शरण", "दिव्य दर्शन", सर्ग-११, पृ.२८०
२. वही, "पृथ्वी पीड़ा" सर्ग-२, पृ.६४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभु खींच चलाया तत्क्षण
अपने पन से होकर उन्मत्त ।[१]

***

लकड़ी का कीला उठा एक
दोनों कानों में आर पार
पत्थर से ठोके चला गया,
करता था चोटे बार-बार ।[२]

भयानक रस :

भयानक रस का स्थायी भाव भय है। भगवान महावीर ने साढ़े बारह वर्षो तक सतत साधना की। उसी साधना के अन्तर्गत असुरों के द्वारा भयंकर उपसर्गो का चित्रण पाठकों के सामने उपस्थित किया है -

सोचा बालक डर जायेगा
रुप विराट् भयावह उग्र
सात ताड सम लम्बा होकर
की ग्रीवा अतिशय उदग्र ॥[३]

***

निष्कर्ष रुप में मैं कह सकती हूँ कि महावीर संबंधी सभी काव्यों में शांतरस की बहुलता है। सर्वत्र प्रतिकूल-अनुकूल उपसर्गो में शांति, साधना में शांति, राज्य में शांति, जन्म के समय शांति, वैराग्य दशा में शांति, केवलज्ञान में शांति, समोवशरण में परस्पर वैमनस्यता में शांति और भव निर्वेद में शांति। जिस समय भगवान का निर्वाण होता है उस समय गौतम गणधर को फूट फूटकर रोते हुए देखकर जनता के दिलों में करूणा का भाव पैदा होता है। किन्तु अन्त में गौतम गणधरा का भगवान के प्रति जो अंश मात्र भी राग भाव था वह समाप्त होने पर उनको केवलज्ञान प्राप्त होता है। यही करूण रस फिर भावों के अनुसार शांतरस में परिणत हो जाता है। इस प्रकार विभिन्न प्रसंगो में शांतरस का पूर्ण विकास है।

---

१. "जय महावीर" : "कवि माणसचन्द", दशम सर्ग, पृ.१०३
२. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, सप्तम् सोपान, पृ. २७४
३. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "शैशवलीला" सर्ग-४, पृ.५४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वास्तव में कवियों ने काव्य के अन्तर्गत करूणभाव, दयाभाव, क्षमाभाव, माता का ऋजुभाव, राजा का वात्सल्यभाव, महावीर का निर्वेद भाव, उपसर्ग कर्ताओं के क्रूर भाव और चंदना का त्याग भावों का अजोड़ चित्रण अंकित किया है। सच्चे रुप में कवियों ने प्रबन्धों में सभी रसों का चित्रण करके काव्य को निखारा है।

*****

अतिशय वर्णन

अतिशय :

अतिशय अर्थात् विशेष चमत्कारिक घटनाएँ। प्रायः प्रत्येक महापुरूष का अवतारी पुरूष के जीवन के साथ ऐसी घटनाएँ जुड़ी होती हैं जो उसके महत्व को प्रगट करते हैं और प्रभाव में वृद्धि। जैन शास्त्रों में, पुराणों में तीर्थंकरों के ऐसे ही अतिशयों का वर्णन किया गया है। जैन दृष्टि से ये अतिशय चौतीस हैं। प्रायः सभी तीर्थंकरों के ये जन्म से निर्वाण तक होते हैं। चरम तीर्थंकर महावीर के इन अतिशयों का इन प्रबंध काव्योंमें भी सभी कवियोने वर्धमान महावीर की शक्ति प्रभाव आदि का उल्लेख किया है।

आगमों के अनुसार तीर्थंकरों के चौतीस अतिशय होते हैं जन्म से चार, केवलज्ञान के बाद पन्द्रह और देवकृत पन्द्रह अतिशय होते हैं। समयवायांग सूत्र के आधार पर चौतींस अतिशय निम्नलिखित है [१]

जन्म जात चार अतिशय :

* भगवान का जन्म से शरीर स्वस्थ और निर्मल होता है।
* उन का रक्त और मांस गाय के दूध के समान होता है।
* श्वासोच्छवास कमल की तरह सुगंधित होता है।
* उनका आहार और नीहार दोनों प्रच्छन्न होते हैं।

केवल ज्ञान के बाद पन्द्रह अतिशय :

* योजन पर्यन्त सुनाई देनेवाला हृदयस्पर्शी स्वर होता है।
* अर्धमागधी भाषा में भगवान उपदेश देते हैं।
* अर्धमागधी भाषा का उपस्थित आर्य, अनार्य, द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी और सरिसृपों की भाषा में परिणत होती हैं तथा उन्हें हितकारी सुखकारी एवं कल्याणकारी प्रतीत होती है।

---

१. समवाओ सुत्तं, सम्पादक-युवाचार्य महाप्रज्ञ, चौतीसवाँ समवाय सूत्र,-१, पृ.१८२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

* पूर्वबद्ध वैरवाले तथा देव, असुर, नाग, सुपर्ण, यक्ष राक्षस, किन्नर, किं पुरूष गरूड, गन्धर्व और महोरग अर्हन्त के पास प्रशान्तचित्त और प्रशान्त मनवाले होकर धर्म सुनते हैं।
* अन्यतीर्थिक प्रावचानिक भी पास में आने पर भगवान को वंदन करते हैं।
* अर्हन्त के सम्मुख आकर अन्य तीर्थिक निरूत्तर हो जाते हैं।
* अर्हन्त भगवन्त जहाँ जहाँ विहार करते हैं वहाँ वहाँ पच्चीस योजनमें ईति (धान्य आदि का उपद्रव हेतु)नहीं होता है।
* प्लेग आदि महामारी का उपद्रव नहीं होता है।
* स्व चक्र (अपनी सेना का विप्लव) नहीं होता है।
* परचक्र (दूसरे राज्य की सेना से होनेवाला उपद्रव)नहीं होता है।
* अतिवृष्टि नहीं होती।
* अनावृष्टि नहीं होती।
* दुर्भिक्ष नहीं होता।
* पूर्व उत्पन्न औत्यपातिक व्याधियाँ शीघ्र ही उपशान्त हो जाती है।
* मस्तक के कुछ पीछे मुकुट के स्थान में तेज मंडल (भामंडल)होता है। वह अन्धकार में भी दशों दिशाओं को प्रभासित करता है।

देवकृत पन्द्रह अतिशय :

* उन के शिर के केश, दाढ़ी, मूछ रोम और नख अवस्थित रहते हैं ... न बढ़ते हैं न घटते हैं।
* उनके आगे-आगे आकाश में धर्मचक्र चलता है।
* उनके उपर छत्र रहता है।
* दोनों और श्रेष्ठ चामर ढुलते है।
* उनको आकाश के समान स्वच्छ स्फटिक मणीका बना हुआ पादपीठवाला सिंहासन होता है।
* उनके आगे आकाश में हजारों लघुपताकाओं से शोभित इन्द्रध्वज चलता हैं।
* जहाँ जहाँ भगवान ठहरते हैं या बैठते हैं वहाँ वहाँ उसी क्षण पत्र, पुष्प और पल्लव से सुशोभित छत्र, ध्वज, घंट, एवं पताका सहित अशोकवृक्ष उत्पन्न होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

* उनके पैरों के नीचे का भूमिभाग सम और रमणीय होता है।
* कण्टक अधोमुख हो जाते हैं।
* ऋतुएँ अनुकूल और सुखदायी हो जाती है।
* शीतल, सुखद और सुगंधितवायु एक योजन प्रमाण भूमिका चारों ओर से प्रमार्जन करती है।
* मेघ द्वारा रज का उपशान्त हो जाता है।
* जानु प्रमाण देवकृत पुष्पों की वृष्टि एवं पुष्पों के डंठलों का अधोमुख होता है।
* अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श रस, रुप और गंध न रहती है।
* मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रुप और गन्ध का प्रादुर्भाव होता है।

उपर्युक्त आगम सूत्र के आधार पर लिखे गये चौंतीस अतिशयों के नाम कवियों ने अपनी कृतियों में सुंदर ढंग से चित्रित किये हैं। उन्होंने अपनी लेखनी द्वारा जन्म के समय के वातावरण का केवल ज्ञान के पश्चात् के और देवों द्वारा किये गये अतिशयों का अद्वितीय चित्रण किया है। "तीर्थंकर महावीर" काव्य में तीर्थंकर के जन्म के समय के अनुंकूल वातावरण का सुंदर वर्णन किया है -

बरसने लगा सुगन्धित जल
पुष्प की वर्षा थी अविरल
सुगन्धित शीतल मन्ध बयार
चल पड़ी खोल प्रकृति का द्वार -[1]

***

वन उपवन में सज्जित होकर आये रम्य ऋतुराज।
डाल डाल पर नव किसलय दल मधुर फलों का सुंदर साज॥
कुहू कुहू करती कोयलियाँ, मञ्झरियाँ का कर रसपान।
विहग नाचते भ्रमर गूँजते, गाते मधुरिम स्वगात-गान॥[2]

***

---

१. "तीर्थंकर महावीर" : कवि छैलबिहारी गुप्त, सर्ग-१, पृ.२०
२. "चरम तीर्थंकर महावीर" : कवि विद्याचन्द्रसूरि, पद.६०, पृ.१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छः ऋतुओं के फल फूल हुये, भर गये जलाशय आसपास।
सातों नरकों में क्षण भरकों सुख चैन हो गया अनायास॥ [1]

***

पेडों की फुनगी पर चिड़िया
गीत मनोहर गाती।
मलियानिल की पुरवा-सी
हवा गंध ले आती। [2]

***

भगवान के शरीर का अंगोपांग स्वर्ण के समान सुशोभित था, यह पूर्व जन्म की बहुत बड़ी विशेषता थी। शरीर सुडौल मिलना यह भगवान का जन्मजात अतिशय का ही श्रेय है। कवि ने काव्य में भगवान के अंगोपांग के सौन्दर्य का मनोहर चित्रण प्रस्तुत किया है -

पादम्बुज थे मृदुल सुमंजुल, मनहर अतिशय शोभावान।
कटि वक्षस्थल सिंह सदृश औ, बाहुदण्ड में शौर्य महान॥
बदन चन्द्र-सा सुन्दर अनुपम, लोचन भाल कपोल ललाम
वज्र ऋषभनाराच संघयण, स्वर्ण-देह शोभित अभिराम। [3]

***

कवियों ने काव्यों में आठ प्रातिहार्य और चार अतिशयों का वर्णन किया है। इन गुणों का एक रमणीय वातावरण का काव्य में मनोहर वर्णन किया है।

तीस चार अतिशय तीर्थंकर, अष्ट समुज्ज्वल है प्रातिहार्य।
स्वेद हीन तन रक्त दुग्धतम, सुरभित होते दिव्य कार्य॥
सहसाष्ट शुभ लक्षण होते, अमितशक्ति युग और छविमान।
हितमित अतिप्रिय वचन सुधासम, जग सुभिक्षकारक-शुचि ज्ञान॥ [4]

***

---

१. "त्रिशलानन्दन महावीर" : कवि हजारीलाल, पृ.३५
२. "जय महावीर" : कवि माणकचन्द, सर्ग-३, पृ.४२
३. "चरम तीर्थंकर महावीर" : कवि विद्याचन्द्रसूरि, पद.६६, पृ.१८
४. "भगवान महावीर" : कवि रामकृष्ण शर्मा, सर्ग-१, पृ.१५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकर के जन्म हेतु शुभ देवों के कुछ अतिशय काम।
चतुर्दिशायें स्वच्छ, स्वच्छ नभ, वसुधा होती हरित सुधा-न ॥
सौरभमय मारूत शुचि वसुधा, सुरभि सलिल का अति सिंचन।
पथ कंटक प्रस्तर विहीन ही, सुमनयुक्त नभ जय गुंजन ॥ [१]

***

धर्म चक्र आगे चलता है तद्रत द्रव्य मांगलिक अष्ट।
अष्ट सुभग प्रातिहार्य विराजे, तरु अशोक स्फटिक पुष्ट ॥
तीन छत्र चामर वातायित, दिव्य प्रभा मंडल पुष्ठार्स्थ।
गुंजन ध्वनि अति दिव्य, देवता बरसाते शुचि सुमन नभस्थ ॥ [२]

***

बाल्यावस्था में वीर प्रभु की परीक्षा हेतु ईर्ष्यावश संगम देव ने सर्प का रुप धारण किया। इस भयंकर सर्प को देखकर खेलते हुए सभी बच्चें भाग गये, किन्तु निर्भय वीर प्रभु ने सर्प के फण को उसी समय हाथ में पकड़कर या पैर से दबा लिया। यह भगवान के बल की ही महिमा है। शास्त्रों की भाषा में यह अतिशय ही है -

फुफकार मारता महाकाल के स्वर में
निर्भय प्रभु ने, जा दबा लिया फण कर में
बन गये एक क्षण में प्रभु कुशल सपेरा
फिर लगे खेलने बना सर्प का घेरा - [३]

***

अतएव उत्तर कर वे उसके,
फण पर निर्भय आसीन हुये।
जननी की शय्या सम उस पर,
क्रीडा करने में लीन हुये ॥ [४]

***

---

१. "भगवान महावीर" : कवि रामकृष्ण शर्मा, सर्ग-१, पृ.१५
२. वही
३. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-२, पृ.३४
४. "परमज्योतिमहावीर" : कवि सुधेशजी, सर्ग-९, पृ.२४८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हाथी को परास्त करने का चित्रण :

वह शुण्ड पकड़कर ही उस पर,
चढने वे वीर कुमार लगे।
यह देख दूर से ही दर्शक,
करने उनकी जयकार लगे ॥ [१]

दीक्षा के समय के जुलूस का चित्रण :

हुए विराजित शिविका में प्रभु वर्धमान सिद्धार्थ कुमार।
राज मार्ग पर शोभा यात्रा निकली होती जयजयकार।
इन्द्र ध्वज था सबसे आगे, वाद्य वृन्द संगीत महान्
अशोक-उपवन में आते ही उतरे शिविका से भगवान। [२]

***

वीर प्रभु के वन में आगमन से जड़ व चेतन प्रकृति में अनुकूल वातावरण हो जाना यह भगवान के प्रभाव का ही फल है। जब वे ध्यानावस्था में खड़े थे उस समय विषधर ने भगवान के पैर में डंक मारा तो उस खूनके बदलेमें दूध की धारा निकली, क्योंकि भगवान के एक एक परमाणुं स्नेह से युक्त थे। उसको हम भगवान का अतिशय या विशेषता ही कहेंगे।

जहाँ डंक मारा विषधर ने, दूध वहाँ से निकला,
प्रभु के अंगूठे से तत्क्षण, अमृत था वह निकला।
उसका छींटा पड़ा नाग पर, वह सचेत हो जायेगा,
उस की काया से पलभर में सारा विष वह निकला। [३]

***

पहुँचे ही थे निकट सर्प के हुआ भयावह आक्रमक।
दंशाघात किया चरणों पर, दुग्धधार निसृत भूतक ॥
चकित चण्ड कौशिक था, भारी लगा देखने प्रभु की ओर।
उसकी दुःखमय पापावस्था से भगवान थे भाव विभोर। [४]

***

---

१. "परमज्योतिमहावीर" : कवि सुधेशजी, सर्ग-९, पृ.२५५
२. "चरम तीर्थंकर महावीर" : आचार्य विद्याचन्द्रसूरि, पृ.२१, पद सं.८१
३. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, सोपान-५, पृ.२११
४. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, सर्ग-११, पृ.१३५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाँच महीने पच्चीस दिन के उग्र तपस्वी अभिग्रहधारी मुनि भगवान महावीर विचरण करते करते तीन दिन की उपवासी चंदना के घर आहार के लिए पधारे। चंदना ने विधिवत् श्रद्धापूर्वक आहार दिया। उसी क्षण देवताओं ने रत्नों की वर्षा की इस अतिशय का कवियों ने उल्लेख किया है।

बज उठे वाद्य तत्काल तभी
रत्नों की वर्षा हुई वहाँ।
उसे सेठ धनावह के घर पर-
सोने की वर्षा हुई वहाँ। [१]

***

दिगम्बर मतानुसार उत्कृष्ट अभिग्रहधारी भगवान को सेठानी ने दिये हुए मिट्टी के पात्र में कौंदों भात (बासी भात)चंदना ने गोचरी में दिए। भगवान की कृपा से मिट्टी का पात्र स्वर्णमय बन गया और बासी भाँत उत्तम खीर रुप में परिवर्तित हो गई-

कौंदो डाले चन्दना,
कौंदो बनते खीर,
महिमा है भगवान की,
वीर बन गया धीर॥ [२]

***

शराव या मुण्मय हेम हो गया,
कदन्न पकवान्न हुआ तुरन्त ही,
यतीन्द्र ने भी उपवास-पारणा
बनी शुभा चंदन-तुल्य चंदना। [३]

***

मट्ठा कौंदों एकत्रित कर रखे जब प्रभु ने हाथों में,
स्वादिष्ट खीर बन गई तभी उत्तम बातों बातों में। [४]

***

---

१. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, सोपान-७, पृ.२७२
२. "वीरायण" : कवि मित्रजी, सर्ग-१३, पृ.३१८
३. "वर्द्धमान" : कवि अनूपशर्मा, सर्ग-१५, पृ.४८७
४. "त्रिशलानन्दन महावीर" : कवि हजारीलाल, पृ.६४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान के पवित्र चरण-कमलों के आशीर्वाद से मूला सेठानी द्वारा बेडियों में जकड़ी हुई चंदना के पैरों में नूपुर सोनैया की वर्षा होने लगी। यह भगवान का अलौकिक अतिशय का ही श्रेय है -

बनी बेड़ियाँ नूपुर मनोहर, वेणिका का सुन्दर सन्धान।
हुआ सेठ को द्रव्य देखकर, मन-ही-मन आश्चर्य महान।
कौशाम्बी-नृप बोले आकर, इस धन पर मेरा अधिकार।
हुई देववाणी, इस धन पर चंदनबाला का अधिकार। [१]

***

प्रभु वन में एकग्र चित्त से ध्यान में लीन थे। एक ग्वाला भगवान के पास आकर बैलों की देखभाल करने का सौंपकर चला गया। वापिस लौटा और बैल न मिलने पर देखने गया। अंत में थक कर प्रभु के पास आनेपर बैलों को न देखा, तो क्रोध में आकर ध्यानस्थ मुनि के कानों मे कीले ठोकें। प्रभु ने असह्य पीड़ा को शांतिपूर्वक सहन किया। यह भगवान की समता की पराकाष्ठा थी। सहन करने का अत्याधिक बल पैदा करना, यह अतिशय से मिलता है -

प्रभु से पूछा उन ग्वालों ने, वृषभ कहा ? पर प्रभु थे मौन !
प्रभु को देखा मौन, ग्वाल क्रुध हुए बोले-तूं कौन ?
कानों में ठोके फिर प्रभुके, कीले घातक तीक्ष्ण महान
त्रिपुष्ठ भव का उदय हुआ था, सहा कष्ट वन शांति निधान। [२]

***

दीक्षा के समय का प्रकृति के अनुकूल वातावरण :

वह अगरू धूम था फैल रहा
उठकर ऊपर
फैली सुगन्ध जल मिली
वायु उससे आकर- [३]

---

१. "चरम तीर्थंकर महावीर" : श्री विद्याचन्द्रसूरिजी, पद सं. १४८, पृ.३८
२. वही, पद सं.१५२, पृ.३८
३. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-३, पृ.१२२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीक्षा के बाद का वातावरण :

पुष्पों की वर्षा लगे
देव नभ से करने
जय के निनाद से लगे
सकल अंबर भरने [१]

***

केवलज्ञान के समय का अनुकूल वातावरण :

दुन्दुभियों के स्वर में गुञ्जित अन्तरिक्ष था,
मधुर मृदुलस्वर फूट रहे थे दशों दिशाओं में।
रंग बिरंग रत्न, और फूलों की वर्षा,
अप्सरियाँ करती फिरती थीं दशों दिशामें। [२]

***

स्फटिक मणि सम देह हुई ही गए घातियाँ कर्म नाश,
महती थी मन्द सुगन्धवायु चहुँ दिशि में फैल गई सुवास।
शची पतिका आसन हिला, तभी सुर वाद्य बज उठे अनायास
तब इन्द्र अवधि से जान गया, प्रभु अन्तर में फैला प्रकाश। [३]

***

केवलज्ञान के पश्चात् कवियों ने देवकृत समवशरण के अतिशय की महिमा का अद्भुत वर्णन काव्यों में प्रस्तुत किया है-

फिर रची मध्य में गंध कुटी जिस पर सिंहासन रत्नमयी,
था जिस पर शतदल कमल एक जिसकी शोभा न जाय कही,
उससे भी चार अंगुल उपर आसन थी अधर प्रभुजी का,
सिर पर थे तीन छत्र मणिमय भामंडल की शोभानो की, [४]

***

---

१. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-३, पृ.१२५
२. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, सोपान-७, पृ.२८८
३. "त्रिशलानन्दन महावीर" : कवि हजारीलाल, पृ.६७
४. वही, पृ.६८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विपुलाचल में आगमन के समय का कवि ने काव्य में सजीव चित्रण किया है-

विपुलाचल पहुँचा समवशरण
षद् ऋतु प्रसून सब संग खिले।
लद गये फलों से वृक्ष तथा,
लतिकाओं के मृदु अङ्ग खिले॥ [१]

***

समवशरण में बैठे हुए सभी प्राणी वैमनस्य भाव को त्यागकर समता से बैठे हुए थे, यह भगवान के शरीर के शुद्ध परमाणुओं का ही प्रभाव था-

प्रभु के शरणागत ये जीव,
समतामय थे सारे जीव।
जीव-जीव के बीच अनौखा,
एक तार था बंधा जीव। [२]

***

आ जन्म विरोधी प्राणी भी,
वन सहचर लगे विहरने थे
मृग छौने सिंहों के बच्चों-
के भी संग लगे विचरने थे॥ [३]

***

प्रभु के शिर पर थे तीन छत्र
जिन की भी सुषमा न्यारी थी।
जो चन्द्र कान्ति सी शुभ्र और,
भव्यो को अतिशय प्यारी थी। [४]

***

---

१. "परमज्योतिमहावीर" : कवि सुधेशजी, बीसवाँ सर्ग, पृ.५१६
२. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, सोपान-७, पृ.२९२
३. "परमज्योतिमहावीर": कवि सुधेशजी, सर्ग-२०, पृ.५१६
४. वही, पृ.५२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दो यक्ष जिनेश्वर की चमरों,
से सेवा करने में रत थे।
मानो यो बारम्बार चमर,
प्रभु के समक्ष होते नत थे ॥[१]

***

भगवान अर्धमागधी भाषाा में उपदेश देते थे। विश्व के समस्त प्राणी अपनी अपनी भाषा में समझ लेते थे -

लोक भाषा का चलता दौर
मागधी भाषा की चितचौर
भाव भाषा थे पूर्ण सरल
मधुर निर्मल ज्यों गंगाजल[२]

***

ले परिकर प्रभु आये पुलकित हुआ तभी गुणशीलोद्यान।
समवशरण की अनुपम रचना, की देवों ने धर प्रभु ध्यान।
प्रातिहार्य थे अष्ट सुशोभित, मध्य विराजित थे भगवान।
सुरनर और तिर्यंच सभी थे, करते वजनामृत का पान।[३]

***

भगवान महावीर के शिष्य गोशाला ने गुरू द्रोही बनकर क्रोधानिग्र से वशीभूत होकर भगवान पर तेजोलेश्या छोड़ी। किन्तु भगवान की अलौकिक शक्ति के सामने वह तेजोलेश्या भगवान के चारों ओर प्रदक्षिणा करती हुई लौटकर वापिस आयी-

किन्तु सामने महावीर तो शांत रहे,
तेजोलेश्या उन पर क्या प्रभाव करती।
तन के चारों और घूमकर लौट चली,
केवलज्ञान के जैसे वंदन करती।[४]

***

१. "परमज्योति महावीर" : कवि सुधेशजी, सर्ग-२०, पृ.५२५
२. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-७, पृ. २८६
३. "चरम तीर्थंकर महावीर" : श्रीमद् विद्याचन्द्रसूरि म. पद. सं. २१०, पृ.५४
४. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, सोपान-८, पृ.३३५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेजोलेश्या लौटी तापस घबराया,
उसके भीतर आग लगी, वह तड़प उठा।
अग्नि पुञ्ज उसके ही भीतर समा गया,
एक बार गोशाला फिर से तड़प उठा। [१]

***

वास्तव में कवियों ने भगवान महावीर महाकाव्यों के अन्तर्गत भगवान के अतिशयों को सुबोध-सरल भाषा में प्रस्तुत कर उन्हों की महत्ता को मूर्तरुप दिया है पाठकों की श्रद्धा को दृढ़ किया है। सच्चे रुपमें इन कवियों ने इन कृतियों की रचना करके साहित्य और समाज की महती सेवा की है।

*****

१. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, सोपान-८, पृ.३३५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ अध्याय

(१) काव्यमें भाषाकी महत्ता

(अ) शब्दशक्ति

(ब) तत्सम-तद्भव, देसज-विदेशी शब्द

(क) चित्रात्मकता या सजीवता

(ड) मुहावरें-कहावतें

(इ) क्लिष्टता -अप्रयुक्त शब्दावलि

(२) अलंकार

(३) छंद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काव्यमें भाषा की महत्ता

काव्यका भाषा के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रायः सभी प्रसंगों में काव्यमें भाषा के अनेक तत्व भरे पड़े हैं-कहीं अनुस्यूत रुपमें कहीं समन्वित रुपमें, कहीं आनुषंगिक रुपमें और कहीं काव्य चमत्कार के उपकारक रुप में। वस्तुतः स्वयं काव्यका शरीर ही भाषा है-काव्य सौन्दर्य भाषा से ठीक उसी प्रकार अलग नहीं कर सकते जिस प्रकार त्वचा के रंगको उससे अलग नहीं कर सकते अथवा पुष्प के रंगोको उस की पंखुडियों से अलग नहीं कर सकते।

वास्तवमें यह भाषा का ही प्रसाद है कि यह सब लोक-व्यवहार चल रहा है, तथा यह सम्पूर्ण जगत शब्द रुपी ज्योति के बिना अन्धकारमय बन जाता है। विशुद्ध भाषा तो कामधेनु गाय है, किन्तु अशुद्ध भाषा प्रयोक्ताकी मूर्खता की द्योतक है। काव्य में अत्यल्प दोष भी काव्य को उस प्रकार कुरुप बना देता जिस प्रकार सुंदर शरीर को कुष्ठ रोग का एक भी दाग कुरुप बना देता है। अतः हम कह सकते है कि काव्यमें काव्यमयी भाषाका विशेष स्थान है।

(अ) शब्द-शक्ति :

किसी उक्ति में शब्द और अर्थ दोनोंका होना अनिवार्य है। शब्दविहीन अर्थ और अर्थ हीन शब्द की कल्पना की ही नहीं जा सकती। शब्द और अर्थ एक दूसरे से मिले-जुले रहते हैं। शब्द और अर्थ के इसी सम्बन्ध को शक्ति कहते हैं। शब्द-शक्ति के तीन भेद हैं- अभिधा, लक्षणा और व्यंजना।

अभिद्या :

शब्दकी जिस शक्ति के कारण किसी शब्द का (साधारण प्रचलित) मुख्य या संकेतिक अर्थ समझा जाता है उसे अभिधा शक्ति कहते हैं।

लक्षणा :

वाक्यके अन्तर्गत किसी शब्द के वाच्यार्थ का बाध होने पर उसीसे सम्बद्ध किन्तु भिन्न अर्थात् अन्य अर्थ किसी रुढि या विशेष प्रयोजन से लिया जाता है। वह लक्षणा शक्ति कही जाती है। कवियोने अपने काव्यों में लक्षणाशक्ति के विभिन्न उदाहरण सुंदर ढंग से प्रस्तुत किये हैं-

एक बावला हाथी कबसे
ऊधम मचा रहा था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नगर-जनों को कुचल-कुचलकर-
चिथड़े उड़ा रहा था[१]

***

कविने चिथड़े उड़ाना शब्द का प्रयोग किया है, किन्तु उस का चिथड़े उड़ाना अर्थ न होकर लक्षणा से उसका अर्थ तहस-नहस करना है।

त्रिशलानन्दन के दर्शन को धरणेन्द्र चले देवेन्द्र चले
सिद्धार्थ सुवनके वन्दन को, धरती अम्बर में दीप जले :
दर्शन को जन सागर उमड़ा, अभिनन्दन को आलोक चले
आँसू गीतों में बदल गये, जाने कब कबके पुण्य फले ॥[२]

***

कविने "धरती अम्बर में दीप जले" वाक्यका प्रयोग किया है, परन्तु वास्तवमें धरती अम्बरमें दीप जलते नहीं है, पर इसका लक्षणा से नक्षत्रोंका जगमगाना अर्थ होता है। तीसरी पंक्तिमें "जनसागर को उमड़ने" का कहा है किन्तु लक्षणा से जन रुपी सागर दर्शन के लिए उमड़ा अर्थ हुआ। यहाँ भी "आँसू के गीतों में बदलने" का कहा है परन्तु इसका लक्षणा से अर्थ भगवान के जन्म से आनन्दकी लहर छा जाना।

पदके नखसे शीश-शिखा तक सब अवयव थे वशीभूत।
एक चेतना का प्रवाह था, जोड़ रहा था पंचभूत ॥[३]

***

उपर्युक्त प्रथम पंक्तिका लक्षणा से अर्थ निकलेगा पैर से शिखा तक के सब अवयव व्यवस्थित थे।

ढँका कलश सोभाग्य चिन्ह है,
द्म सरोवर यशकी खान।
सागर का गर्जन बतलाह-
युद्ध वीरकी यह पहचान।[४]

***

---

१. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, द्वितीय सोपान, पृ.८४
२. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "जन्म ज्योति", सर्ग-४, पृ.९७
३. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "तपस्या", सर्ग-११, पृ.१२९
४. "श्रमण भगवान महावीर", कवि योधेयजी, "स्वप्नों का विश्लेषण" प्रथम सोपान, पृ.६५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस पदमें ''पद्म सरोवर को यश की खान'' कहा है, परन्तु उसका अर्थ यशकी खान न होकर लक्षणा से इसका अर्थ पद्म सरोवर यशको देनेवाला होता है।

व्यंजना :

जिस शक्ति से अभिप्रेत अर्थ तक पहुँच होती है, उसे व्यंजना कहते हैं। व्यंजना के दो भेद होते हैं-शाब्दी और आर्थी। जहाँ व्यंग्यार्थ किसी विशेष शब्द के प्रयोग पर ही निर्भर रहता है वहाँ शाब्दी व्यंजना होती है अर्थात् उस शब्द के स्थान पर उसका पर्याय रख देने से व्यंजना नहीं रह जाती। शाब्दी व्यंजना केवल अनेकानेक शब्दों में होती हैं।

आर्थी व्यंजना :

जहाँ व्यंजना किसी शब्द विशेष पर अवलम्बित न हो अर्थात् उसका पर्याय रखने पर भी बनी रहे, वहाँ आर्थी व्यंजना होती है।

कण कण जलता और पिघलता,
काया तिल तिल चिटक रही।
अंग अंग जैसे कटते हों,
हड्डी हड्डी तिड़क रही। [1]

***

कविने विरह की अग्निके साथ तुलना की है। अंग जो कट रहे हैं और हड्डी तिड़क रही है, दोनों में मुख्यार्थ बाध हुआ और लक्षणा से विरह वेदना अर्थ मिलता है। और उससे तीव्र विरह की वेदना होना ही व्यंजना है।

जननी मुस्काती रही, खिले जन्म से फूल।
प्रसव वेदना का कहीं, चुभा न कोई शूल। [2]

***

इस पद में मुख्यार्थ के बाध से लक्षणा हुई। और लक्षणा से चारों और आनंद फैलना यह रुप व्यंग्यार्थ अभिव्यक्त होता हैं।

प्रतिक्षण दंश मारते रह रह
सम्भावित वियोगके व्याल

---

१. ''श्रमण भगवान महावीर'' : कवि योधेयजी, ''विदा की वेला'', सोपान-३, पृ.१२६

२. ''वीरायण'' : कवि मित्रजी, ''जन्मज्योति'', सर्ग-४, पृ.९६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लगता है-जैसे प्राणों में,
ढलता हो पिघला प्रवाल। [१]

***

यहाँ वियोग के ब्यालमें मुख्यार्थ का बाध होता है और लक्षणा से विरह वेदना अर्थ होता है। साँप डसने से तीव्र वेदना होनाही व्यंजना है।

निर्मल अम्बर सुन्दर समीर, फैला बसन्त बन बागों में।
मंगल ध्वनियाँ मनहर बाजे, पक्षी गाते सब रागों में॥
नक्षत्र सभी अनुकूल हुए, शुभ घडियों की आ गई घड़ी।
उस क्षण की पूजा करने को, सिद्धियाँ खड़ी थी बड़ी बड़ी॥ [२]

***

कविने इस पद में सिद्धियाँ खड़ी थी बड़ी बड़ी का प्रयोग किया है, लेकिन सिद्धियाँ कभी खड़ी नहीं रहती है, अतः व्यंजना से इसका अर्थ सिद्धियाँ भगवान के निकट आनेके लिए तैयार थी।

अजगर बोला निज दाँतों में, मै जहर मनुजसे लाता हूँ।
दबने पर काटा करता हूँ, बचता हूँ और बचाता हूँ॥
मेरा काटा बच भी जाता, बचता न मनुज के काटे से।
सज्जनता को गर्वान्ध दुष्ट, उत्तर देता है चांटे से॥ [३]

***

अजगर मनुष्य से जहर लाता है ऐसा कविने कहा है। इसमें मुख्यार्थ बाध हुआ, क्योंकि मनुष्य के पास जहर नहीं होता। किन्तु लक्षणा से अर्थ हुआ कि दुर्जन मनुष्य का स्वभाव विषैला होता है। जहर का दूसरा अर्थ हुआ दुर्जन मनुष्यका जहरीला स्वभाव। (अजगर मनुष्यसे जहर लाता है इससे, व्यंजना फलीत हुई कि दुर्जन मनुष्य अजगर के जहर से भी ज्यादा जहरीला है।)

निःसंदेह रुपमें कवियोने कृतियों में अभिधा, लक्षणा और व्यंजना द्वारा भगवान महावीर के काव्यों का कवियोने सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है।

---

१. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, "विदाकी वेला", सोपान-३, पृ.१२६
२. "वीरायण": कवि मित्रजी, "जन्मज्योति", सर्ग-४, पृ.९५
३. वही, "पृथ्वी पीड़ा", सर्ग-२, पृ.६३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द प्रयोग :

काव्य-भाषा में कवि भावों के अनुरुप भाषा का प्रयोग करता है । वह पात्रानुकूल, युगानुरुप, भावों एवं रसोके संदर्भ में शब्दों का प्रयोग करता है । प्रायः पौराणिक व ऐतिहासिक या महापुरूषों के चरित्रांकनमें अधिकांशत- तत्सम् शब्दावली का प्रयोग होता है । रचना हिन्दी में होनेसे स्वाभाविक तद्भव शब्द प्रयुक्त होते रहते हैं, साथ ही लोकबोली के बहु प्रयुक्त देशज शब्दों का प्रयोग भी स्वाभाविक रुपसे हो जाता है । ऐसे शब्द ग्राम्यजीवन की सुगंध लिए होते हैं । उनमें आंचलिकताका सोंघापन होता हैं । युगमें प्रचलित विदेशी शब्द में हमारी बोलचालकी भाषामें सहज रुपसे प्रयुक्त होते हैं वे भी आ जाते हैं । मजे की बात है कि इन चारों प्रकार के शब्द प्रयोग में कवि को जानबूझ कर कोई प्रयास नहीं करना पड़ता । हाँ.....पात्र, समय, युग आदि के अनुरूप शब्द स्वयं ही आते रहते हैं । प्रस्तुत महावीर संबंधी प्रबंधों में सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग हुआ है जिसमें तत्सम व तद्भव की प्रचुरता हैं ।

तत्सम :

जो शब्द मूल संस्कृत भाषा का हो और कालान्तर में पाली, प्राकृत इत्यादि मध्ययुगकी भाषाओं में, और आगे चलकर अर्वाचीन भारतीय भाषाओं में भी बिना कोई ध्वनि परिवर्तन प्रयुक्त होता है तो वह शब्द तत्सम कहा जाता है ।

निशेश न्योछावर आस्य पै हुआ,
प्रवाल-शोभा पद छू सुखी हुई । [१]

***

कविने इस पद में एक से अधिक तत्सम शब्द का प्रयोग हुआ है । जैसे "आस्य" और "प्रवाल" तत्सम शब्द हैं । इसका क्रमानुसार मुख और मूँगा अर्थ होता है ।

कविने तत्सम शब्दों के प्रयोग करके महारानी त्रिशला का सुंदर रुप-गुण वर्णन काव्यमें प्रस्तुत किया है ।

नवांगना के रस-सिक्त चित्त-सा,
बना रहा प्रावृद् इन्द्र-चापको । [२]

***

१. "वर्धमान" : कवि अनूपशर्मा, सर्ग-१, पद सं.८३, पृ.५६
२. वही, सर्ग-२, पद सं. २४, पृ.७९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"प्रावृट" तत्सम शब्द है, उसका अर्थ वर्षा-ऋतु। कविने आषाढ़ की वर्षाऋतुका वर्णन किया है।

एक एक मणि, ऐसी द्युतिमय,
जड़ी रहगी उसमें प्राण।
नभ के नक्षत्रों से बढ़कर,
होगी जगमग, ज्योतिर्मान। [१]

***

इस पद में कविने "द्युतिमान" और "ज्योतिमान" शब्दों के राजा सिद्धार्थ के हृदय पर सुशोभित हारका सुंदर चित्रण किया है।

हार गया वह सर्प अन्तमें,
पलमें अन्तर्ध्यान हुआ।
अगले ही पल, धरती परथा-
एक देव म्रियमाण हुआ। [२]

***

यहाँ "म्रियमाण" शब्द तत्सम है। उसका अर्थ मरा हुआ। देव सर्प रुप धारणकर भगवान की परीक्षाके लिए आया। परन्तु भगवानके बलके सामने देव पराजित हुआ। उसीका वर्णन है।

कुछ कहो मेदिनी सुख कितने ? दुःखों के कितने आवर्तन।
इस पथ पर आने जाने के, देखे कितने प्रत्यावर्तन॥ [३]

***

कविने इस पंक्तिमें तत्सम मेदिनी शब्दका प्रयोग करके धरती की वेदना का वर्णन किया है।

मनुष्य सर्प बन गया मनुष्य श्वान हो गया।
मनुष्य गिद्ध बन गया दुखी जहान हो गया॥

---

१. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, सोपान-२, पृ.८१
२. वही, पृ.८९
३. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "पृथ्वी पीड़ा", सर्ग-२, पृ.४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य बन गया बधिक वसुन्धरी पुकारती।
आँसूओं से आरती स्वदेश की आरती॥ [१]

***

इस पद में तत्सम शब्द ''बधिक'' और ''वसुन्धरा'' द्वारा मनुष्य की हीनता दिखाई है।

शचिने लाकर शिशु दिया इन्द्रको सत्वर। [२]

***

भवन में नृपके किया प्रवेश
उदित हो नभ में ज्यों राकेश। [३]

***

खेलते थे मिल सखागण साथ
हाथमें लेकर किसीका हाथ- [४]

***

बालपन से ही उनमें
ये तीन ज्ञान सुविचारी,
ज्ञानी थे दिव्य दिवाकर
मति-अवधि और श्रुतधारी- [५]

***

उपर्युक्तपदों में कविने तत्सम शब्द राकेश से राजा का, सखा शब्द से शैशवलीला का और ज्ञानी की दिवाकर शब्द से तुलना करके काव्य में भावों को सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है।

इसके अलावा भी स्थान-स्थान पर तत्सम शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। परिधान, पुष्पेसु, जिगीषु, यथैव नरेन्द्र, अनेकशः, इतस्ततः, निषामुषे, संप्रति, अतीव, प्रसह्य, निशा, शिशिरतुँ, रुदन्ती, हसन्ती, भवदीय, हिमर्तु, लौह, विष्टर, नीयमान,

---

१. ''वीरायण'' : कवि मित्रजी, ''पृथ्वी पीड़ा'', सर्ग-२, पृ.६३
२. ''तीर्थंकर महावीर'', कवि गुप्तजी, सर्ग-१, पृ.१४
३. वही, पृ.२३
४. वही, सर्ग-२, पृ.३६
५. वही, सर्ग-२, पृ.४३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्विंशति, विज्ञ, श्रेयांस, यत्नवान, एकदा, चैत्यालय, यौवन, आरूण, शनैश्वरा, चातुर्य, सोकौमार्य, शारद, मौक्तिक, वैदुर्य, शैत्य, गाम्भीर्य, पाथेय, त्रैलोक्य, वैखरी, नैसर्गिक, धैर्य, सौख्य, वैषम्य, वक्ष नासिका, उत्पल, गरल, अंबुधि, नीलाम्बर, सुर, नभ-पथ पांत, मोद आनत, आहृत, वसन, तरु, जटित, नमन, रवि, तन, उषा, पादप, तिमिर, सुमन, भास्वर, शुचि, मही अंक आदि।

तद्भव :

तद्भव अर्थात् तत्सम शब्दों का बोलचाल की भाषा में परिवर्तन। कवि ने तद्भव शब्दों द्वारा प्रसंगानुकुल पात्रों के भावों को व्यक्त किया है। धरती की वेदना का सुंदर चित्रण किया है -

धरती बोली मत कहो व्यथा, अवतार यहाँ रोते देखे।
मेरी मिट्टी में बड़े बड़े, राजा रानी सोते देखे॥ [१]

***

कवि ने काव्य में स्वाभाविक रुपसे तद्भव शब्दों का प्रयोग करके काव्य की सौंदर्यता को बढ़ाया है। त्रिशला के रुप सौंदर्य का वर्णन देखिए -

ये सुकोमल चरण ज्यों जलजात
चन्द्र किरणों सी धवल नखपांत [२]

***

इस पद में कवि ने श्वेत नखों की पंक्तियों को भव शब्द चन्द्र की किरणों के साथ तुलना की है।

तद्भव शब्द कंकर, पत्थर शब्द द्वारा कवि ने भगवान को ढूँढने का वर्णन किया है -

कंकर पत्थर वृक्ष बेल में
ढूँढ रहा था वह भगवान् [३]

***

१, "वीरायण" : कवि मित्रजी, "पृथ्वी पीड़ा", सर्ग-२, पृ.४७
२. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-१, पृ.१०
३. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, सोपान-१, पृ.३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कविने हाथी, दाँत, अंग, कान, आँख आदि तद्भव शब्दों द्वारा विविध प्रसंगो के भावों को उजागर किया है।

बावला हाथी का वर्णन :

एक बावला हाथी कबसे
उधम मचा रहा था [1]

***

कविने भगवान महावीर के अभिग्रह की कथा मुहावरा के द्वारा सुंदर ढंग से काव्य में अभिव्यक्त की है -

उनके अभिग्रह की कथा सुनो
तुम चकित खड़े रह जाओगे।
संकल्प जान लो उनका तो,
दाँतो में जीभ दबाओगे। [2]

***

कवि ने भगवान की समता की पराकाष्ठा का अद्वितीय चित्रण काव्य में अंकित किया है

कुछ पल पीछे आँखें खोली,
चुप चाप बढ़े आगे पथ पर।
कानों में कीले घसे रहे,
वह दृष्टि जमाए थे पथ पर। [3]

***

भगवान का गृहत्याग के समय माँ की ममता का चित्रण देखिए -

हिरनी-सी व्याकुल आँख
देख प्रभु को रोई

---

१. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, सोपान-२, पृ.८४
२. वही, सोपान-७, पृ.२६३
३. वही, पृ.२७५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है पुत्र विरागी और
न माँ रोये कोई- [१]

***

माता त्रिशला शादी का प्रस्ताव रखती हुई राजकुमार वर्धमान के सामने अपनी इच्छाओं को सुंदर ढंग से व्यक्त की है -

त्रिशला मात ने कहा, पुत्र ! कर ब्याह राजसत्ता संभाल।
मेरी आशाएँ पूरी कर, आँखों के तारे वीर लाल। [२]

***

कवियों ने इसके अतिरिक्त अन्य तद्भव शब्दों का काव्य में निर्वाह किया है। गेह, असेत, धूवाँ, कुपथ, लौ, भाँति, जीती, धरा, सृष्टा, श्वास, अनजान, प्रतिपल, विहग, राह, सोने, दिशाएँ, नव, धरती, पूरित, वास, दुःसह, यत्न, गाथा, कठोर, सहज, आज, नेह सूरज, पल, आठ, चैत, श्रृंगार, तेरस, परिमाण, मोल, गात आदि।

देशज :

कविने काव्य की रचना करते समय स्वाभाविक रुप से देशज शब्दों का प्रयोग किया हैं। उन्होने भगवान के जन्म से पूर्व देशकी परिस्थिति का सुंदर चित्रण काव्य में किया है-

पाप पुण्य का एक बवण्डर
उसे उड़ाए फिरता था,
एक लुढ़कता पत्थर बनकर-
लक्ष्य हीन वह रहता था। [३]

***

मैं खोदी गई खंतियों से, लोहें के यन्त्र ने भेदा। [४]

---

१. "तीर्थंकर महावीर", : कवि गुप्तजी, सर्ग-३, पृ.९९
२. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "विरक्ति", सर्ग-९, पृ.२२८
३. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, सोपान-१, पृ.३५
४. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "पृथ्वीपीड़ा" सर्ग-२, पृ.४८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूखा हड्डियाँ चबाता था, हर गली नगर घर में मरघट
ओठों के लिए तरसते थे, जल भरे हुए प्यासे पनघट।[१]

***

ऐसा निखरा-उभरा यौवन वर्धमान का,
खुशबू-सी फैली नगरी में।
तत्पर थी कोई भी तरूणी भर लेने को-
वह सुगन्ध मन की गगरी में[२]

***

उपर्युक्त पदों में बवण्डर, डगमग, पत्थर, गगरी आदि देशज शब्द हैं। वात्सल्य चित्रण में भी सहज रुप से देशज शब्द का प्रयोग हुआ है -

झूलत छोरा और छोरियाँ
आओ परीयाँ श्याम गोरियाँ
माता गाती मधुर लोरियाँ[३]

***

छोरा, छोरियाँ, माता, गोरियाँ, लोरियाँ आदि देशी शब्दों से कवियों ने वात्सल्य के भावों को उभारा है। सहेजते, बुहारता, लसा हुआ, उड़ेलता, लुका, खटखट, उबड़खाबड़, चबचबाकर निहारी, थपेड़, मुड़वा दिये, लिखवाकर दबोचे, करवा दो, बहारो, रिझाते, अकड़ा-अकड़ा, घुमड़कर, करवट, बयार पिसती, छोर, बयासी, लिवालाया, डकराती, ख़ीझ, झुलस, लोरी आदि देशी शब्दों का प्रयोग कवियों ने काव्यों में विषयानुकुल प्रस्तुत किया है।

विदेशी :

बोलचाल की भाषा में हम विदेशी शब्द बोलते हैं वह भी सहजता से काव्य में आ गये हैं। कविने भगवान के जन्म से पूर्व की स्थिति का विदेशी शब्दों द्वारा सुंदर चित्रण किया है-

---

१. "वीरायण", : कवि मित्रजी, "तालकुमुदिनी", सर्ग-३, पृ.७३
२. "श्रमण भगवान महावीर" कवि योधेयजी, सोपान-३, पृ.९३
३. "भगवान महावीर" कवि शर्माजी "शैशवलीला", सर्ग-४, पृ.४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुर्दान्त बना फिरता था,
अपनी ताकात के मद में।
अकड़ा अकड़ा था चलता
अभिमान भरा वह हठमें। [१]

"ताकत" विदेशी शब्द है। महावीर के शब्दों में कविने सहनशीलता के बारे में उद्बोधन देते हुए लिखा है कि -

जो फूलों की डाली नोचे,
उसको फूल न बदबू देते।
वो उनकी मुट्ठी में मसले,
वे उसको भी खुशबु देते। [२]

इस पद में "बदबू" और खूशबू विदेशी शब्द का विषयानुसार सहज रुप से चित्रण हुआ है।

युद्धो की ज्वाला धधक रही, मन मन में लपटें बहक रहीं।
तोपों टेंकों को पता नहीं, सरिताएँ कितनी दहक रही ॥ [३]

***

धरती पर मनमानी की है कैसे कैसे शेतानों ने।
ऋषियों मुनियों को कष्ट दिये, कैसे कैसे हेवानों ने ॥ [४]

***

कवि ने तोपों, टेंको, शैतानों और हैवानों विदेशी आदि शब्दों द्वारा भावों के अनुकूल देश की स्थिति का सुंदर चित्रांकन किया है।

नभ-पथ से होकर चली लिये जब बालक
ज्यों दिव्य ज्योति हो नीलाम्बर में लक-दक [५]

***

---

१. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, सोपान-१, पृ.४३
२. वही, सोपान-४, पृ.१३३
३. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "पुष्प प्रदीप", सर्ग-१, पृ.३६
४. वही, "पृथ्वी पीड़ा", सर्ग-२, पृ.४४
५. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-१, पृ.१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि ने सुमेरू पर्वत पर भगवान को जन्माभिषेक के लिए ले जाने का सजीव चित्रण किया है। जो "लकदक" शब्द का प्रयोग सहज रुप में हुआ है वह फारसी है।

क्या तुम में रबकी ताकत है, क्या तुम में सबकी ताकत है ?
हर और दिखाई तुम देते, वक्तव्य झाड़ते आफत है।[१]

***

फारसी रब और आफत तथा अरबी ताकत शब्द का प्रयोग करते अपने भावों को समाज के सामने सुंदर ढंग से अभिव्यक्त किया है।

रहँटू बट्टा गोली कंचा।
सीटी फिट-फिट और तमंचा।[२]

***

इस पद में कवि ने फिट-फिट और तमंचा शब्द द्वारा शैशवलीला का मनोहारी चित्रण किया है।

उपर्युक्त पदों में फारसी, अरबी और तुर्की भाषा के शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक रुपसे हुआ है इसके अलावा भी काव्यों में विदेशी शब्दों स्थान-स्थान पर देखने को मिलता है। पारसीक, बरबस, किताबी, इमान, संलग्न, इन्सान, तख्त, तबाही, जहान, टैंको आदि।

चित्रात्मकता या सजीवता :

शब्दचित्र अर्थात् शब्द द्वारा ऐसा सजीव वर्णन करना जिसके अमूर्त भी मूर्त हो उटे। पाठक के सामने एक चित्र-सा उभरने लगे। यह चित्रात्मकता प्रस्तुत करने की क्षमता का आधार कवि की काव्यशक्ति का, भाषा के शब्द चयन व प्रयोग पर आधारित होता है। कवि इन्हीं शब्द चित्रों से विविध रसों का प्रवाह प्रवाहित करता है। भावों का निर्माण करता है। मौन भाषा भी मुखरित हो उठती है।

जन्मोत्सव का शब्द चित्र देखिए। चराचर में प्रसन्नता की लहर दौड गई। सभी जन्मोत्सव मनाने के लिए बावले हो उठे -

---

१. "वीरायण" , : कवि मित्रजी, उद्धार, सर्ग-१३, पृ.३२२
२. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "शैशवलीला", सर्ग-४, पृ.४९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जन्म से पूर्व का वातावरण :

तज शोक अशोको के तरुवर,
सुमनावलि पाकर झूम रहे ।
झुक शरणागत लतिकाओके,
मुख मण्डल सहसा चूम रहे ॥ [१]

जन्म के समय का :

मेरू शिखरतै सोहे पंत, पंचम सागर के पर्यन्त ।
सकल सुरासुर तह तैं ढाहि, एक एक छोडयो दधिघाट ॥
सेनी बांधी देवन सबै, हथाहत्थ कलशा लै तबै
सो क्षीरोदधि जल भर लाय, जन्मासेक करा मन लाय ॥ [२]

***

पुष्प बरसे ते रंग बिरंगे
गंधो से सुरभित आकाश
धरती पर भी फूल उठे,
अरविन्द कुन्द पाटल पलाश [३]

***

बजे नगाडे-शंक, अनेकों,
ढोल-झांझ औ तासा
झर-झर झरे खुशी से लोचन
रहा न कोई प्यासा ॥ [४]

वनगमन :

भगवान के वनगमन के समय प्रकृति की जैसे उदात हो गई । श्रद्धासे विश्व भी फूल वर्षा ने लगे-

---

१. "परमज्योतिमहावीर" : कवि सुधेशजी, सर्ग-६, पृ.१८४
२. "वर्द्धमान पुराण" : कवि नवलशाह, अष्टम् अधिकार, पद. सं. -४४-४५, पृ.८०
३. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "दिव्य शक्ति अवतरण", सर्ग-३, पृ.३४
४. "जयमहावीर" : कवि माणकचन्द, सर्ग-४, पृ.४९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्काल सभी ने भाव सहित,
निजभाल सहर्ष, झुकाये थे।
हो नम्र विटपशाखाओंने,
श्रद्धा से फूल चढाये थे ।।[१]

साधनावस्था :

भगवान की साधनावस्था के समय प्रकृति के चारों और शीतलता व शांति वातावरण का चित्रण देखिए -

उस निर्जन वन में एकाकी-
थे, फिर भी भय का नाम न था।
बहता था शीत पवन, फिर भी-
विचलित होता परिणाम न था ।।[२]

दीक्षोत्सव :

कवि ने दीक्षा के समय का सजीव चित्रण काव्य में उभारा है। पुष्पों की वर्षा हो रही है, पक्षिओं के गीत की मंगल ध्वनि सुनाई दे रही है। हृदय को सुख देनेवाले वांजित्रों की मधुर ध्वनि गूँजित हो रही है-

देव-यूथ ने गही पालकी, श्रद्धा सहित बढे आगे।
सुमन बरसाते थे नव नव वर, कंज कोष में अलिदल जागे ।।
विविध विहंग गीत गा गाकर, मंगल ध्वनि गुंजित करते।
वाद्यवृन्द के तुमुल घोष भी, उरमें अभिनव सुख भरते ।।[३]

***

केवलज्ञानोत्सव :

इन्द्र-इन्द्राणी, देवगण आदि के द्वारा भगवान का केवलज्ञानोत्सव का शब्द चित्र कवियों ने काव्यों में प्रस्तुत किया है -

कल्प लोक अनहद एव भयौ, घंटा शब्द मनोहर ठयौं।
होय मधुर ध्वनि अति गंभीर, मनौ सिन्धु यह गर्जर नीर ।।[४]

***

---

१. "परमज्योति महावीर" : कवि सुधेशजी, सर्ग-१३, पृ.३५९
२. वही, सर्ग-१४, पृ.३६६
३. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "सन्यस्त संकल्प", सर्ग-१०, पृ.१२२
४. "वर्धमान पुराण" : कवि नवलशाह, एकादश अधिकार, पद सं. १३, पृ.१४९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुख विकसत इन्दीवर जासा, ताल मृदंग गीत रस रास।
इहि प्रकार शोभित गजराज, तापर इन्द्र लियै सब साज॥

***

शची सहित अति पुण्य उपाय, बहु आभरण अंग परिहाय।
वर्धमान जिन केवलज्ञान, करन महोत्सव चलै महान्॥ [१]

***

वे दशों दिशा के लोकपाल अनुगामी
ये महावीर अब आज उन्हीं के स्वामी
सुरराग सँग थी सात सैन्य बलशाली
सेना पदाति गज रथ तुरंग गति ढाली- [२]

समवशरण रचना :

देवों द्वारा समवशरण रचना का दृश्य तथा उनके उपर बिराजित भगवान का सुंदर चित्र देखिए -

समोवशरण रचियो जुअपार, को बुधवंत लहै कहि पार।
अवसर पाय धर्म मन ध्यान, किमपि लिखौं आनंद उर आना॥
कोश अढाई उर्ध्व अकास, पृथ्वी तैं जहं लौ प्रभुवास।
इन्द्रानील मणिमय पीठिका, तीन लोक की उपमानिका॥ [३]

***

निर्वाणोत्सव :

कवि ने देवगण, इन्द्र-इन्द्राणी द्वारा पावापुरी में निर्वाणोत्सव का मनोरम चित्रण काव्य में प्रस्तुत किया है। चारों ओर सुगंध फैलना, पुष्पों का खिलना, जन-मानस, पशु-पक्षी आदि में आनंद की लहर उठना आदि भावों के अनुकूल अद्वितीय चित्र देखिए -

---

१. "वर्धमान पुराण" : कवि नवलशाह, एकादश अधिकार, पद सं. ३२-३३, पृ.१५०
२. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-५, पृ.१७८
३. "वर्धमान पुराण": कवि नवलशाह, एकादश अधिकार, पद सं. ७६-७७, पृ.१५३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब इहि चतुर निकायी देव, प्रभु निर्वाण जान सब भवे।
अपने अपने वाहन साज, परिजन जुत आये सुरराज ॥[१]

***

सब विभूति पूरब व्रत जान, गति नृत्य, उत्सव उर आन।
अन्तिम कल्याणक जिनराय, पावापुर पूजा करवाय ॥[२]

***

मङ्गल का मङ्गल अरुणोदय,
विहँसा, खग लगे चहकने अब।
खिल गये कम औं दिग दिगन्त,
सौरभ से लगे महकने अब ॥[३]

***

यों लगा कि जैसे गाते हो,
प्रभु की गरिमा ही सर्व विहग।
औ भक्ति विभोर सरोवर हो,
बिखराते होवें गन्ध सुभग ॥[४]

***

इस प्रकार प्रबंधो में कवियों ने भाषा की शक्ति, गुण, शब्दचित्र प्रस्तुत करके वातावरण को और भी अधिक हृदयस्पर्शी बनाया है। शब्द शक्ति भाषा को शक्ति प्रदान करती है उसकी भावगरिमा बढाती है। शब्दचित्र ऐसा वातावरण प्रस्तुत करते हैं कि हम विविध दृश्यों को निहारने का अनुभव करते हैं।

---

१. "वर्धमान पुराण" : कवि नवलशाह, सोलह अधिकार, पद सं. २२७, पृ. २७५
२. वही, पद सं. २२८, पृ. २७५
३. "परमज्योति महावीर" : कवि सुधेशजी, "निर्वाणोत्सव", सर्ग-२३, पृ. ५९०
४. वही, पृ. ५९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुहावरें-कहावतें :

मुहावरें और कहावतें भाषा के वे अंग है जो "गागर में सागर" भर देते हैं। थोडे में बहुत कहने की कला इसमें होती हैं। ये मुहावरें लक्षणा और व्यंजना का कार्य करते हैं। भाषा की गरिमा बढती हैं। वास्तव में ये लक्षणा-व्यंजना के अधिक निकट होते हैं।

प्रस्तुत प्रबंध काव्यों में कवियों ने मुहावरें, कहावतें, दोहें, सूक्तियों आदि का विभिन्न घटनाओं के अनुकूल सुंदर ढंग से चित्रण अंकित किया है।

दाग पर दाग लगना :

जो कुसंग में फंस गया, उसे डस गया नाग।
मरा नहीं जिन्दा नहीं, दाग दाग पर दाग ॥[१]

***

गरल उगलना :

फिर आता है सर्पिणी काल, डसता है गरल उगलता है।
गर्वान्धि दुष्ट राजा बनते, मद में इन्सान उछलता है ॥[२]

दांतो में जीभ दबाना :

उनके अभिग्रह की कथा सुनो,
तुम चकित खड़े रह जाओगे।
संकल्प जान लो उनका तो,
दातों में जीभ दबाओगे।[३]

***

खिलखिला उठना :

रात हुई तो घर-घर दीपक
कोटि-कोटि जगमगा उठे।

---

१. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "बालोत्पल", सर्ग-५, पृ.११६
२. वही, "पृथ्वी पीड़ा", सर्ग-२, पृ.६२
३. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, "महावीरका अभिग्रह" सप्तम् अधिकार, पृ.२६३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रंग बिरंगे जगमगा करते-
रत्नदीप खिलखिला उठे। [१]

आग बबूला होना :
हृदय में फूलाना :

अतएव हुवा अब पहले से-
भी बढकर आग बबूला था।
मैं अभी पछाड़े देता हूँ.
यह सोच हृदय में फूला था॥ [२]

***

बिजली की तरह कूदना :

वे कभी भागते इधर उधर, वे कभी दौडते यहाँ वहाँ।
जाती थी युग युग की निधियाँ बालक जाते थे जहाँ जहाँ॥
बिजली की तरह उछलते थे, बिजली की तरह कूदते थे।
चुपके से एक दूसरे के, छिप छिपकर नयन मूँदते थे॥ [३]

***

हड्डी हड्डी तिड़कना :

कण कण जलता और पिधलता
काया तिल तिल चिटक रही।
अंग अंग जैसे कटत हों,
हड्डी, हड्डी तिड़क रही। [४]

हौले हौले पाँव बढ़ाना :

तरुणाई ने, हौले हौले पाँव बढ़ाए,
सिमट रहा था, शैशव चंचल

---

१. ''श्रमण भगवान महावीर'' : कवि योधेयजी, ''माता-पिता की इच्छापूर्ति'', तृतीय सोपान, पृ.१०४
२. ''परमज्योति महावीर'' : कवि सुधेशजी, सर्ग-९, पृ.२५४
३. ''वीरायण'' : कवि मित्रजी, ''बालोत्पल'', सर्ग-५, पृ-.१२५
४. ''श्रमण भगवान महावीर'' : कवि योधेयजी, ''विदाकी बेला'' सोपान-३, पृ.१२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चला सूर्य, अम्बर की चौटी छूने-
पसर गया आभा का अंचल।[१]

***

राजा बने फकीर :

समय बड़ा बलवान है, राजा बने फकीर।
नारायणं वन वन फिरे, भटके पाण्डव वीर॥[२]

***

अणु अणु में उजियाला होना :

जैसे सूर्योदय होते ही, तम की विभीषिका फट जाती।
जैसे पुण्योदय होते ही, दुःखों की खाई फट जाती॥
ऐसे ही जब विभु आयेगा, अणु अणुमें उजियाला होगा।
वह वीरेश्वर विश्वास रुप, जीवन देने वाला होगा॥[३]

***

जहरीली नागिन :

जहरीली नागिन सी दासी,
भरी क्रोध में फुंकारी।
गोशाले को चली मारने,
भूल गई सुध-बुध सारी।[४]

***

साधु का घर कहीं न होता
रमता जैसे पानी
जाँत-पाँत मजहब की काली
गहरी रेख मिटानी -[५]

***

---

१. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, "तरुणावस्था", सोपान-३. पृ. ९२
२. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "पृथ्वी पीड़ा", सर्ग-२, पृ.६०
३. वही, पृ.६६
४. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, सप्तम् सोपान पृ.२४४
५. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-३, पृ.७०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो है लातों देव भूत ! बातों से नहीं मानता है ॥ [१]

***

"क्रोध पाप का मूल है", "कागज की नाँव चलना", "बिजली की तरह उड़ना", "पक्की स्याही, सिंदुर होना", "सिर पर व्रज लगाना", "घर का अंधकार भगाना", "चादर को दाग लगना", "छिछले पानी में नाव का न चलना", "जल फूँक देना", "संकट आना", "मद में उछलना", "डस लेना", "जिसने जितने बोया जोता", "धर्म न देना", "जीवन को संगीत मिलना", "उथल-पुथल होना", "आग फूँसका, बैर होना", "सत्संग के रंग रंगना", "कदम-कदम पर शूल होना", "जिह्वा पर सरस्वती होना", "बार बार फूँकारना",

सूक्तियाँ :

सूक्तियाँ वैसे सुविचार या उपदेशात्मक वाक्यांश ही होते हैं। इनमें जैसे युग के अनुभव का निचोड़, मार्गदर्शन के भाव एवं उत्तम ज्ञान-चरित्र के भाव भरे होते हैं। ये अधिकांशतः नीतिवाक्य होते हैं। इन प्रबंधों में इनका प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है।

तरह तरह के लोग हैं,
तरह तरह के भाव।
छिछले पानी में कभी,
नहीं तैरती नाव ॥ [२]

***

मित्र रेत पर चिन रहा,
जीवन की दीवार।

---

१. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "प्यास और अंधेरा", सर्ग-७, पृ.१८७

२. वही, "जन्म जन्म के दीप", सर्ग-६, पृ.१३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बह जाती है बाढ़ में,
बड़ी बड़ी मीनार ॥[१]

***

सारी दुनिया स्वार्थ की,
मतलब बिना न मित्र ।
उपर उज्ज्वल देह है,
अन्दर स्याह चरित्र ॥[२]

***

सदा न यौवन रुप पर,
रौनक है दिन चार ।
जिसे कामिनी कह रहे,
वह नंगी तलवार ॥[३]

***

सीधे को सभी सताते है,
टेढ़े से दुनिया डरती है ।[४]

***

योगी जब भोगी बन जाते, जीतहार बनती है ।
जब भारत माता रोती है, भूमि वीर जनती है ॥[५]

***

खानपान सब शुद्ध हो,
रखना शुद्ध चरित्र ।

---

१. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "जन्म जन्म के दीप", सर्ग-६, पृ.१४७
२. वही, पृ.१४७
३. वही, पृ.१५३
४. वही, "प्यास और अंधेरा", सर्ग-७, पृ.१७३
५. वही, पृ.१७९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह धरती उनसे टिकी,
जिनका हृदय पवित्र ॥[१]

***

गुण ही मानव को मानव से,
उन्नत्त श्रेष्ठ बनाते हैं।
अपनेपन को विकसित करके,
मनुज देव बन जाते हैं॥[२]

***

रक्षण जब भक्षक बन जाते, पतन हँसा करता है।
जिसका जन्म-मृत्यु उसकी, पर सत्य नहीं मरता है॥[३]

***

नीतिपूरक दोहे :

उपदेशात्मक नीतिपरक दोहें ऐसे है जो व्यक्ति की उन्नति की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देते हैं। ये अधिकांशतः इन प्रबन्धोमें प्रचुर मात्रामें देखने को मिलते हैं।

साँपन यदि काटे कभी,
बच सकता है प्राण।
नारि यदि नागिन बने,
कहीं नहीं है त्राण॥[४]

***

हाँय हाँय संसार है,
काँय काँय संसार।
यहाँ स्वार्थ के मित्र सब,
यहाँ कहाँ है प्यार ?[५]

***

---

१. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "ज्ञानवाणी", सर्ग-१२, पृ.३१०
२. "जयमहावीर" : कवि माणकचन्द, पंचमसर्ग, पृ.५०
३. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "प्यास और अंधेरा", सर्ग-७, पृ.१७९
४. वही, "विरक्ति", सर्ग-९, पृ.२१४
५. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जग में नाचा बहुत माँ,
नाटक किये अनेक।
मुँह में मधु मन में जहर,
मित्र एक से एक ॥[१]

***

शान्ति सुधा संतोष में, असंतोष में आग।
निकल रहे हैं बिलों से, असंतोष के आग ॥[२]

***

दोस्त न अपना एक भी,
प्यार प्यार में वैर।
समय पड़ा तो हो गये।
सगे सहोदर गैर ॥[३]

***

तृष्णा जड़ है पाप की,
आशा है अभिशाप।
गर्व बड़ा शैतान है,
डाह बड़ा है ताप ॥[४]

***

राज मिले जग धन मिले,
मिले रत्न का कोष।
सारे धन बन्धन बड़े,
यदि न मिला संतोष ॥

***

---

१. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "विरक्ति", सर्ग-९, पृ.२३८
२. वही, "बालोत्पल", सर्ग-५, पृ.११६
३. वही, "विरक्ति", सर्ग-९, पृ.२१४
४. वही, पृ.२३९
५. वही, "वनपथ", सर्ग-१०, पृ.२६१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बुरा किसी का मत करो,
बुरा न बोलो बोल।
बुरा सुनो देखो न तुम,
यही ज्ञान का मोल ॥ [१]

***

संगति रखना साधु की, कल्पवृक्ष सत्संग।
अभिमत फल दातार है, सत्संगति के रंग ॥ [२]

***

निस्संदेह रूप में मैं कह सकती हूँ की कवियों ने प्रबंध काव्यों में मुहावरें, कहावतें, सूक्तियाँ और दोहें को विषयानुकूल रचकर काव्य की भाषा को रोचक एवं सर्वग्राही बनाई है।

(ई) प्रस्तुत महाकाव्यों में कहीं-कहीं पर क्लिष्ट और अप्रयुक्त शब्द भी आये है, फिर भी कथाप्रवाह अक्षुण्ण रहा है -

न स्त्रशं होते रिपु-शस्त्री ही वरन
दुखी नरों के दुख देन्य भागते। [३]

***

जिन्हे सदा उत्कट लालसा रही
विलोक लें विग्रह कल्प-वृक्षका। [४]

***

नरेन्द्र भू पै मलयादि-तुल्य थे,
महार्ट शाखा-सम हस्त में लसी। [५]

***

---

१. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "ज्ञानवाणी", सर्ग-१२, पृ.३०६
२. वही, "बालोत्पल", सर्ग-५, पृ.११६
३. "वर्द्धमान" : कवि अनूपशर्मा, सर्ग-१, पद. सं. ३४, पृ.४३
४. वही, पद. सं.३५, पृ.४३
५. वही, पद.सं.४५, पृ.४६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ईश्वर पृथक् नहीं होते हैं, अज्ञानी ही लड़ जाते।
मठाधीश निज स्वार्थ हेतु ही, भेद बताकर लड़वाते।।[१]

***

कर पद कंजन के गाभा थे,
शुचि रुप मूर्तिमय आभा थे।[२]

***

सदा त्रस-स्थावर रुप विश्व में,
समस्त प्राणी-गण रक्षणार्थे जो।
किया गया पालन इन्द्रियार्थ हो,
प्रसिद्ध है संयम अंग धर्म का।[३]

***

दक्षिण में था सौधर्म अन्य सिंहासन
तारक मणियों से जटित-खचित मणि कांचन।।[४]

***

उर्जना, भचक्र, ज्योतिर्झख, कलंब, एण, कमंध, तति, कलबिंग, वरण्ड, वप्र, वहित्र, चिमि, कुलाय, तल्प, यमणाख्य, रजस्क, केदार, काकोल, हेति, झष-झारि, अत्यंत, कखगा, अनगार, ग्राव और कर्पट आदि क्लिष्ट शब्द काव्यों में सर्वत्र देखने को मिलते है।

इस के अतिरिक्त महावीर काव्यों में कवियों ने अप्रयुक्त शब्दों का भी प्रयोग किया हैं जो हम इन शब्दों से अनभिज्ञ हैं, ऐसे कुछ शब्द य हैं -

पिशंग, तति, वप्र, तल्प, हेति, कषा, जवी, बंजुल, जतूक, कनीनिका, पवित्र की, मन्यु, कषा, ग्राव, लूता, कखगा, चुक, पयाल, आनद्ध, पौगंड, सहा, त्रस, केदार, अक्षय्य, भिया, स्वैरिणी, कृतांत, बार, श्रुति, अनवद्य, त्रसेरणु, अंशु, सुवायिका, परिमेय आदि।

*****

---

१. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, सर्ग-१, पृ.१४
२. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी "दिव्य शक्ति अवतरण", सर्ग-३, पृ.३५
३. "वर्द्धमान" : कवि अनूपशर्मा, पद. सं. १०५, पृ.४६५
४. "तीर्थंकर महावीर" : कविगुप्तजी, सर्ग-१, पृ.१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रबंधो के आधार पर अलंकार-दर्शन :

प्रवर्तकों ने अलंकारो को काव्य का मुख्य तत्व स्वीकार कर इसे काव्य का शोभादायक तत्व माना। इन्होने बताया कि जिस प्रकार आभूषणों के बिना कोई रमणी सुशोभित नहीं हो सकती उसी प्रकार अलंकारों के अभाव में काव्य भी शोभित नहीं हो सकता। प्रवर्तकों ने कहा है कि सुंदर काव्य की रचना के लिए उसका दोष-रहित एवं अलंकारयुक्त होना अत्यावश्यक है।

प्राचीन अलंकारवादियों में अंलकारो के विषय में बड़ा मतभेद है। फिर भी हम उन मतभेदों में न पड़कर आधुनिक हिन्दी-कवियों के आधार पर रचित भगवान महावीर काव्य के अन्तर्गत विविध अलंकारो को यहाँ प्रस्तुत करेंगे।

महाकाव्यों के अनुरुप वर्धमान काव्य में वर्णन-सौंदर्य, पद-लालित्य, अर्थ-गाम्भीर्य, रस-निर्झर और काव्य कौशल सभी कुछ है। पद-पद पर उपमाओं, रुपको की मनोहारिणी लड़ी पिरोई है। त्रिशला-कल्प-वल्लरी है -

उपमा :

सुपुष्पिता दन्त-प्रभा प्रभाव से
नृपालिका पल्लविता सुपाणि से।
सुकेशिनी मेचक-भृंग-यूथ से।
अनल्प थी शोभित कल्प वल्लरी ॥ [१]

कविने रानी त्रिशला और राजा सिद्धार्थ के प्रेमालाप का सुंदर चित्रण खींचा है, जो भावों के अनुकूल उपमा अलंकार का स्वाभाविक सर्जन हुआ है-

ऐसी फूटी हंसी कि जैसे गिरीसे निर्झर फूट पड़े हो।
बाहुपाश में जकड़ लिया ज्यों कल्पलता सुरतरु जकड़े हो। [२]

***

यशोदा का विरह :

महावीर के संग यशोदा, ज्यों प्राणों की धड़कन।
उर से उर एकान्त हुआ था, बिछुडा केवल तन ॥

---

१. "वर्द्धमान" : कवि अनूपशर्मा, सर्ग-१, पद-५९, पृ.५०

२. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, सर्ग-२, पृ.१९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सागर में ज्यों सरिता रहती, बादल में ज्यों रहता जल।
वीणा में ध्वनि शाश्वत रहती, कालचक्र में रहता पल॥ [१]

कविने काव्यमें रानी त्रिशलादेवी की शादी के पश्चात् विरह का करूण चित्रण उपमा अलंकार से दर्शनीय बन पड़ा है-

पिता फूट कर ऐसे रोये,
जैसे सावन भादो। [२]

***

वात्सल्यमयी माता त्रिशला राजा सिद्धार्थ के साथ राज कुमार को वैराग्य के प्रति इन्कार करने का तर्क करती है उसी क्षण वर्धमान कुमार का वहाँ पदार्पण होना उसीका चित्रण कविने पद में उपमा अलंकार से चित्रित किया है-

इतने में आया वीर वहाँ, सब तिथियों के चन्दा जैसा।
ऐसा अरुणोदय हुआ मित्र, फिर कभी न रवि देखा वैसा॥
वह आया जैसे ज्वाला में, सावन बरसे भादों बरसे।
वह प्रकट हुआ जैसे कोई, वरदान प्रकट हो शंकर से॥ [३]

***

विदाई के समय नगर जनों की करुणा और आशीर्वाद :

जैसे कमल सूर्य से खिलते,
तुम से भारत देश खिले। [४]

***

कवि ने महावीर काव्य में भगवान महावीर की दीक्षा के पश्चात् इन्द्र, देव आदि श्रद्धा से स्तुति करते है -

तुमने प्राणों की बेल
सुधा रस में बोई-

---

१. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "यशोदा विरह", सर्ग-१५, पृ.१६२
२. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "तालकुमुदिनी", सर्ग-३, पृ.८५
३. वही, "विरक्ति", सर्ग-९, पृ.२२१
४. वही, "वनपथ", सर्ग-१०, पृ.२७१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुमने सांसारिक भोग
छोड़ अहि-फण समान[१]

***

मालोपमा द्वारा कविने चंदनाजी के रुप सौन्दर्य का वर्णन किया है-

नेत्र थे जैसे खिले कमल
हेम किरणी से थे चंचल[२]

कवि ने इस पद में उपमा, अन्त्यानुप्राश और अतिशयोक्ति अलंकार द्वारा भावों को सुंदर भर दिया है-

सिसिकियाँ हुई एक क्षण बन्द
गीत के रूक जाते जब छन्द
नयन के ऐसे मुक्ता कोष
धरा पर बिखरे जैसे ओस[३]

***

कविने त्रिशलानंदन महावीर काव्य में उपमा द्वारा त्रिशला के सौन्दर्य का अद्वितीय चित्रण किया है -

मस्तक के केश भंवर से थे दाड़िम सी दंत पंक्ति सारी,
थे नैन कुरंग समान युगल कटि थी कृष केहरी उनहारी,
थे आंगोपांग सुडौल उपमा वरणी नहीं जाती थी
जिनके दर्शन कर देवी क्या स्वयंमेव शची शर्मा शर्माती थी।[४]

***

रुपक अलंकार :

कवियों ने काव्य में रुपकों का अद्भूत चित्रण चित्रित किया है। त्रिशला के वर्णन में तरंगिनी (नदी)का रुपक देखिए -

---

१. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-३, पृ.१३०
२. वही, सर्ग-४, पृ.१५६
३. वही, सर्ग-७, पृ.३१०
४. "त्रिशला नन्दन महावीर" : कवि हजारीलाल, पृ.२९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरोज-सा वस्त्र, सु-नेत्र मीन-से
सिवार-से केश, सुकंठ कंबु-सा
उरोज ज्यों कोक, सुनाभि भोंर-सी
तरंगिता थी त्रिशला-तरंगिणी ॥ [१]

कवि ने काव्य में भगवान महावीर के अलौकिक प्रभाव का सुंदर चित्रण रुपक द्वारा अंकित किया है-

हिंसक सब हिंसा विस्मृत कर, प्रेम-सुधा से पूरित से।
गले मिले सब प्रतिद्वन्दी भी, दिव्य प्रेम बल से जित से ॥ [२]

***

यशोदा का विरह वर्णन रुपक अलंकार से कवि ने काव्य में अलंकृत किया है-

मेरी साँस साँस में तुम हो, हर धड़कन में बसे हुये।
तन की वीणा प्रणयनाद में, तार तार में कसे हुये ॥ [३]

***

चंदनबाला के केशराशी की सौन्दर्यता वर्णन कवि ने रुपक अलंकार से किया है-

केश गिर रहे थे जब भूपर, लगता था नागिन लहरें।
श्याम चिकुट की भव्य पताका, रुप भवन पर ज्यों फहरे ॥ [४]

कवि ने रुपक द्वारा जनता को उद्बोधन दिया है कि-

धर्म का तरु ज्ञान की रस्सी।
तोड़ दो अभिमान की रस्सी ॥ [५]

***

मित्रो ! मन की बाढ़ से,
बड़ी न कोई बाढ़

---

१. "वर्द्धमान" : कवि अनूप शर्मा, सर्ग-१, पद सं. ८१, पृ.५५
२. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "दिव्य प्रेरणा", सर्ग-१, पृ.१६
३. वही, "यशोदा विरह", सर्ग-१५, पृ.१६३
४. वही, "चंदना उद्धार"सर्ग-१२, पृ.१४१
५. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "बालोत्पल", सर्ग-५, पृ.११२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माँझी मन की नाव का,
पानी जल्दी काढ़ ॥ [१]

***

राजा सिद्धार्थ रानी त्रिशला देवी से अपनी तुलना की बात करते हुए कहते है कि-

तुम चन्द्र मुखी, मैं छवि चकोर।
तुम सजल घटा, में मुग्ध मोर ॥ [२]

***

पति के विरक्त के भाव जानकर पत्नी यशोदा अपने भावों को व्यक्त करती है उसी का रुपक के द्वारा कवि ने काव्य में दर्शनीय चित्रण किया है-

तुम गगन और मैं धरती हूँ, बरसों तो प्यास बुझे मेरी।
प्यासी प्रतीक्षा में बैठी, क्यों करते आने में देरी ? [३]

***

कवि ने एक पद में चंदनबाला की केश राशी का वर्णन करते हुए उपमा, उत्प्रेक्षा और रुपक इन तीनों का संगम अनोखा बन पड़ा है -

चंदनबाला की जंघो तक
चमकीली काली केश-राशी
थी श्याम-घटा-सी फैल रही,
ज्यों चन्द्रवदन पर मेघराशी। [४]

***

यहाँ कवि ने रुपक, उपमा आदि अलंकार द्वारा अहिंसा की पराकाष्ठा का अनुपम चित्रण किया है -

संवेग महागज अति विसाल बलशाली
वह सहज हुए आरूढ़ चढे ज्यों लाली,

---

१. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "प्यास और अंधेरा", सर्ग-७, पृ.१७१
२. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "शैशवलीला", सर्ग-४, पृ.४४
३. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "विरक्ति", सर्ग-९, पृ.२४८
४. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, "चंदनबाला", सोपान-७, पृ.२६९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फिर तप का लेकर में विशाल शर आसन
रे तीक्ष्ण बाण बन गये ज्ञान औ दर्शन -[१]

***

उत्प्रेक्षा अलंकार :

कविने तीर्थंकर के जन्म के समय का वातावरण का उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों द्वारा अनुपम चित्रण काव्य में लिया है -

ऐसा लगता है ज्यों नभ में-सुधा पुर बादल छाये।
सूर्य चन्द्र जो बिछुड़े कब से आज मिले और हरषाये॥
धरा नवोढ़ा ने भी मानों, नभ प्रिय हित श्रृंगार किया।
शुष्क अधर प्यासे मरते जो, उनने छकर नीर पिया॥[२]

***

पादप शाख लगी लहराने, किसलय मानों थिरक पड़े।
कोकिल कलरव गुंजित धर नभ, रजतस्वर्ण गिरि शिखर जड़े॥[३]

***

रानी त्रिशलादेवी का रुपसौन्दर्य :

अंग-अंग अभिराम चाल में हंसमचलते थे मानों
कल्पवृक्ष की कलित लता पर, शुक शावक पलतें मानो॥
कंठ कोटि कोकिल कंठों को, मानों मौन सिखाता था।
मुख मयंक की मंजुल छबि को, नीरद और दिखाता था॥[४]

***

कवि ने स्थान स्थान पर उत्प्रेक्षा अलंकार को भावों के अनुकूल रखकर उनकी छटा दर्शनीय बन पडी है। यहाँ देखिए राजा सिद्धार्थ के चिंतन में -

---

१. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-५, पृ.१७३
२. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "दिव्य प्रेरणा", सर्ग-१. पृ.१६
३. वही
४. वही, पृ.१८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक दिवस की बात कुंवर तरू तले शिला पर थे आसीन।
नील गगन में नेत्र टिके थे, मानों ऋषि समाधि में लीन॥ [१]

***

बावला हाथी का चित्रण :

चीत्कार पुरजन का सुनकर
वर्धमान उठ भागे
नन्दी चौके, अस्त-व्यस्त से
ज्यों सपने से जागे। [२]

***

भगवान महावीर की करुणा कविने उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अलंकार द्वारा चित्रित की है-

आँखो से करुणा थी झरती
बरसाती नदियाँ को भरती
मरूधर में मान सरोवर-सी
पल-पल में ठण्डक थी भरती [३]

भगवान महावीर की रुप वर्णन छटा :

ज्योति थी मुख की दिव्य ललाम-
चन्द्र पर धिर आये घनश्याम [४]

***

श्याम पलकों में अंजन देख
लगा खींची हो कारी रेख- [५]

***

---

१. ''भगवान महावीर'' : कवि शर्माजी, ''जन्मधाम'', सर्ग-२, पृ.१९
२. ''श्रमण भगवान महावीर'' : कवि योधेयजी, ''किशोर-अवस्था'', सोपान-१, पृ.८५
३. वही, ''महावीर का अभिग्रह'', -सोपान-७, पृ.२६०
४. ''तीर्थंकर महावीर'' : कवि गुप्तजी, सर्ग-४, पृ.१५६
५. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपदेशामृत :

धर्म का देते प्रभु आदेश
तारकों में जैसे राकेश
सुधामय झरती थी वाणी
सकल जन-जन की कल्याणी -[१]

समोवशरण की रचना का वर्णन :

चारों दिश मानस्तंभ चार मानी का मान घटाने को,
लगता था चारों मुक्ति दूत आए हैं मुक्ति दिलाने को,
मणिमयी कोट दरवाजों पर हर ओर ध्वजा लहराती थी,
बन बाग, बापिका बीथों में हर ओर बहार दिखाती थी, [२]

***

त्रिशला का सौन्दर्य :

वह मूर्ति मन्त्रों से बनी, वह पूर्ति तीर्थों की कला।
मानों करोड़ो पुण्य से, वह रुप का दीपक जला ॥ [३]

***

वनचारी की भक्ति व श्रद्धा :

ऋतुराज वसन्ती फूल लिए, प्रभु की पूजा करने आया।
मानों केसरिया बाने में, ऋतुराज वीर के स्वर लाया ॥ [४]

***

अहल्या का उद्धार :

पाषान प्रतिमा को जीवन का दिया दान
मानों अहल्या का उद्धार दर्शन था। [५]

***

---

१. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-४, पृ.१५६
२. "त्रिशला नंदन महावीर" : कवि हजारीलाल, पृ.६८
३. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "तालकुमुदिनी", सर्ग-३, पृ.७७
४. वही, "दिव्य दर्शन", सर्ग-११, पृ.२७७
५. वही, "अनन्त", सर्ग-१४, पृ.३३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतिशयोक्ति अलंकार :

कवि ने कल्पना की कलम चलाकर रानी त्रिशला के ससुराल जाने पर संपूर्ण जड़-चेतन प्रकृति में करूण विलाप का अतिशयोक्ति अलंकार द्वारा आबेहूब चित्रण अंकित किया है -

घर का पत्थर पत्थर रोया,
रोयी क्यारी क्यारी।
आशीर्वाद दिया वृक्षों ने,
खुश रह बेटी प्यारी॥ [१]

***

सखियों के स्वर में :

आंगन तजकर चली चांदनी। [२]

***

वीर बालक का रुप वर्णन -

शिशु धीरे धीरे मुस्काया, बिजली खिल गई चाँदनी पर।
चन्दा में ज्योत्सना सिमट गई, भर गये ज्योति से घर॥ [३]

***

यशोदा का विरह :

गंगा बनकर यमुना बनकर।
अर्घ्य चढ़ाती है आँखे।
वर्धमान आगे बढते हैं,
दीप जलाती हैं आँखे॥ [४]

वन में स्वागत :

वन नागों नें पगों में
मणियाँ धरी उतार

---

१. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "तालकुमुदिनी" सर्ग-३, पृ.८६
२. वही, सर्ग-३, पृ.८५
३. वही, "जन्म ज्योति", सर्ग-४, पृ.१०७
४. वही, "वनपथ" सर्ग-१०, पृ.२७१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नभ नदियों ने पगों में,
लडियाँ धरी उतार[1]

***

चरण पकड़कर स्वामी के वह सिसक रही थी,
मोती की लडियाँ नयनों से बरस रही थी ॥[2]

***

नयन के ऐसे मुक्ता कोष
धरा पर बिखरे जैसे ओस[3]

***

पृथ्वी पीड़ा सर्ग में कवि ने पृथ्वी की व्यथा को अतिशयोक्ति अलंकार द्वारा अपने भावों की अभिव्यक्ति सुंदर ढंग से की है,-

पृथ्वी की पीड़ा को कवि ने, कविताओं से धैर्य दिया।
फूलों पर गिरे आँसूओं को, कुछ किरणों ने पहचान लिया ॥[4]

***

स्वभावोक्ति अलंकार :

भगवान महावीर काव्य में वीर की बाल प्रकृति का स्वभावोक्ति अलंकार द्वारा कविने स्वाभाविक वर्णन किया है -

बालक, सौम्य, अचञ्चल, शांत
सिन्धु-सा तरल और गम्भीर।
निरन्तर माँ को रहा निहार -
रही हो जो उद्वग्न अधीर[5]

***

---

१. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "दिव्यदर्शन" सर्ग-११, पृ.२७४
२. "श्रमण भगवान महावीर" कवि योधेयजी, सोपान-८, पृ.३२६
३. वही, सोपान-७, पृ.३१०
४. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "पृथ्वी पीड़ा", सर्ग-२, पृ.६७
५. "श्रमण भगवान महावीर" कवि योधेयजी, सोपान-७, पृ.२६४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आँखों में जिसके हो आँसु,
बैठी-बैठी वह रोती हो।
कुछ बीच-बीच में हँस भी दे,
फिर उफन उफन कर रोती हो। [१]

राजा का चिंतन :

पक्षी-पक्षिण-मोर-मोरनी, फल कपोत के नव जोड़े।
सरस प्रेम में मग्न सभी पर, राजपुरूष थे मुख मोड़े॥ [२]

***

संदेह अलंकार :

रानी त्रिशला की केशरानी की सौन्दर्यता का वर्णन कवि शर्माजी ने किया है -

कैसी थी वह चिकुर राशि या बदली उमग थी सावन की।
नीलझील सी आँख थी या दो पंखुरी पंकज पावन की। [३]

***

राजासिद्धार्थ का चिंतन :

उर्द्ध गगन में दृष्टि कि जैसे, कोई उन्हें बुलाता हो।
या कि तेज का अंश स्वर्ग से, धरती पर आता हो॥ [४]

***

यशोदा का सौन्दर्य :

चिकुर राशी थी या सावन की नीर भर घनश्याम घटा थी।
रत्नराजि से सज्जित वेणी थी या नभ संरि शुभ्र छटा थी॥
वह ललाट या प्रेमी उरका चरम साधना का उत्कर्ष।
भ्रकुटिवक्रता मघवा धनुका घोषित करती थी अपकर्ष॥ [५]

***

---

१. ''श्रमण भगवान महावीर'' : कवि योधेयजी, सोपान-२, पृ.७७
२. ''भगवान महावीर'' : कवि शर्माजी, ''जन्मधाम'', सर्ग-२, पृ.१९
३. वही, पृ.१८
४. वही
५. वही, ''परिणयसूत्र'', सर्ग-६, पृ.७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि ने काव्य में भगवान के जाते समय मार्ग में खड़ी हुई यशोदा का मनोहारिणी अद्भूत चित्रण काव्य में चित्रित किया है, जो उनको देखकर संदेह होना स्वाभाविक है-

खड़ी यशोदा राह में,
या बिजली की मूर्ति
या पथ में सहसा प्रकट,
हर अभाव की पूर्ति ॥[१]

***

भगवान महावीर वन में प्रस्थान करते समय उनका अलौकित रुप-सौन्दर्य देखकर वन के प्राणियों के मस्तिष्क में भिन्न-भिन्न प्रकार का संदेह होना, उसी का सजीव वर्णन कवि ने काव्य में अंकित किया है -

ऋतुराज है या ताज है,
ऋतुराज है या साज है।
ऋतुराज अद्भूत राज सुख,
ऋतुपति प्रकृति का राज है ॥[२]

***

स्वर्णिम वसन्ती फूल है,
या भूमि पर उतारे उगे
ये रुप के शिशु खिलते
या खगों ने मोती चुगे ?[३]

***

जेवर लड़ी निधियाँ पड़ी,
या सिद्धियों की भक्ति हैं।
उपलब्धियाँ बिखरी पड़ी,
या नौ रसों की शक्ति है ॥[४]

***

---

१. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "वनपथ", सर्ग-१०, पृ.२५५
२. वही, "दिव्यदर्शन", सर्ग-११, पृ.२७७
३. वही
४. वही, पृ.२७८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवियों ने काव्य के अन्तर्गत व्यतिरेक, अनुप्राश, दृष्टान्त, उदाहरण आदि अलंकारो का स्वाभाविक चित्रण करके काव्य के भावों को जागृत किया है-

व्यतिरेक :

एक एक मणि ऐसी द्युतिमय
जड़ी रहेगी उस में प्राण।
नभ के नक्षत्रों से बढ़कर-
होगी जगमग ज्योर्तिमान। [१]

***

उस रुप ने उस मूर्ति ने तम को पराजित कर दिया।
उस पूर्ति ने उस मूर्ति ने संसार धन से भर दिया॥ [२]

अनुप्रास :

तड़ाग थे, स्वच्छ तडाग हों यथा,
सरोज थे, फूल्ल सरोज हों यथा।
शशांक था, मंजु शशांक हो यथा।
प्रसन्नता पूर्व शरत्वभाव था॥ [३]

***

अन्त्यानुप्राश :

पीड़ा चसक रही है।
क्रीडा कसक रही है॥ [४]

***

दृष्टान्त अलंकार :

भीतर की अनन्त सत्ता को
भूल गया यह जीव अजान।

---

१. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, "बाल-लीला" सोपान-२, पृ.८१
२. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "तालकुमुदिनी" सर्ग-३, पृ.७७
३. "वर्द्धमान" : कवि अनूपशर्मा, सर्ग-५, श्लो.४, पृ.१४०
४. "वीरायण" : कवि मित्रजी, सर्ग-८, पृ.२०२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भीतर भरी सुगन्ध उसी के -
वन में खोजे मृग नादान।[१]

***

नव-समाज का प्रभुने गठन किया था ऐसे,
शिल्पकार प्रतिमा को करता निर्मित जैसे।[२]

***

पर अब सेठ धनाऊ, निश्चय कर बैठे थे,
बिन बोले ही चले, मोह माया को तजकर।
जैसे कोई वीर सिपाही, युद्ध भूमि में,
चल पड़ता है, शत्रु-विजय करने को सजकर।[३]

***

तन ऊंचा नीचा हृदय,
जैसे ऊंचा ताड़,
सब बाढ़ों से विकट है,
पापी मन की, बाढ़॥[४]

***

पड़े पिंजरे में दुःखी,
तन की कैद कठोर।
कैद छोड़ जागे नहीं,
आ आ लौटे भोर॥[५]

***

---

१. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, सोपान-७, पृ.२९६
२. वही, सोपान-८, पृ.३२७
३. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "प्यास और अंधेरा" सर्ग-७, पृ.१७१
४. वही
५. वही, "वनपथ" सर्ग-१०, पृ.२५२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बिना वृक्ष के बैल अभागिन, ऐसी ही स्थिति मेरी,
जैसे सलिल बिना सरिता हो, शुष्क रेत समय है चेरी है । [१]

***

उदाहरण अलंकार :

पिंजड़े में हो बंद पक्षिणी, व्यथा नहीं कह पाती है ।
चुप चुप रोती है उरमें ही, बिना तेल के ज्यों बाती है ॥ [२]

***

चन्द्रमा से ज्यों सुधाकर स्राव
तैरती हो ज्यों लहर पर नाव
कान से सुनकर कि वचनामृत ।
हुआ गौतम का सफल वह व्रत - [३]

***

वास्तव में महाकाव्यों में अनेक अलंकारों का अत्यन्त काव्योचित प्रयोग हुआ है । परम्परागत अलंकार कौशल के अतिरिक्त कविवरों ने काव्यों में अपनी भावमयी कल्पना से सुषमा के अनेक नये सुमन उपजाये हैं । कहीं-कहीं शब्दों की कल्पना में अर्थ और मृदुता का इतना विस्तार भरा है कि परिभाषाएँ और कल्पनाएँ काव्यमय हो गई हैं ।

प्रबन्धों में छन्द दर्शन

प्रस्तुत भगवान महावीर महाकाव्यों में कवियों ने छन्दों का सुंदर ढंग से निरुपण किया है । उन्होने काव्यों में वर्णिक और मात्रिक दोनों ही प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है । कवि अनूप शर्मा कृत "वर्धमान काव्य" संपूर्ण "वंशस्थ" छन्द में वर्णित है । कहीं-कहीं मालिनी, द्रुतविलम्बित और शार्दूलविक्रीडित छन्द का भी निर्वाह हुआ है । कवि ने भगवान महावीर की विविध घटनाओं का चित्रण "वंशस्थ" छन्द में प्रस्तुत किया है । त्रिशला के रुप सौन्दर्य का मनोहारि चित्रण कवि ने काव्य में खींचा है । "वंशस्थ" छन्द में जगण, तगण, जगन और रगण-इस प्रकार प्रत्येक १२ वर्णों का होता है -

---

१. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, "यशोदा विरह" : सर्ग-१५, पृ.१६४
२. वही
३. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-६, पृ.२७२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वंशस्थ :

सु-आनना सुन्दर-चन्द्र कान्त-सी
सुकेशिनी नील शिखा-समान थी,
सु-पाद से आरूण पद्म-राग-सी
सु-शोभिता रत्नमयी सुभीरु थी। [१]

***

विलोकती मंजु मृगी-समान ही
बनी मराली सम चल-युक्त सीं,
सदा पिकी-सी कल कूजती हुई,
निवेश को थी रचती अरण्य-सी [२]

***

कविने राजा सिद्धार्थ के यश गाथा का "वंशस्थ" छन्द में सुंदर वर्णन किया है

यही यशस्वी हरिवंश व्योम के,
दिनेश सिद्धार्थ प्रदिप्तमान थे,
प्रसिद्ध वे भूपति सार्वभौम थे,
सतोगुणी थे, जिन-धर्म-दूत थे। [३]

***

त्रिशलादेवी को रात्रि में आये हुए स्वप्न के पश्चात् प्रभात कालीन वातावरण का चित्रण वंशस्थ छन्द में देखिए -

विहंग ऐसे बहु मोदमें सने
प्रभात में पूर्ण प्रसन्न ज्यों हुये,
समीर भी अंबर की मलीनता,
बुहारता था जल सींच ओसका। [४]

***

---

१. "वर्द्धमान" : कवि अनूपशर्मा, सर्ग-१, श्लो. ५५, पृ.४९
२. वही, श्लो. ६२, पृ.५०
३. वही, श्लो.२८, पृ.४२
४. वही,सर्ग-४., श्लो. ३, पृ.११७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बालक की शोभा का वर्णन देखिए -

अपूर्व था बालक गौर रंग का,
कपोल दोनों ऋतुराज-पुष्प-से
लसे खिलौने करमें सुवर्ण के,
अजस्त्र-संचालित पाद-युग्म थे।[1]

बालक वीर की करूणा :

सखे! विलोके वह दूर सामने
प्रचंड दावा जलता अरण्य में
चलो, वहाँ के खग-जीव जन्तु को
सहायता दें यदि हो सके, अभी।[2]

***

मनुष्य, पक्षी, कृमि, जीव, जन्तु की,
सदैव रक्षा करना स्वधर्म है,
अतः चलो कानन में विलोक लें
कि कौन-सी व्याधि प्रवर्द्धमान है।[3]

***

कवि ने भगवान महावीर का प्रतिकूल-अनुकूल उपसर्गों में भी मन की समाधि का ''वंशस्थ'' छन्द में साक्षात् चित्रण काव्य में चित्रित किया है।

तुषार वर्षा-मय-शीत-काल में,
स्व-ध्यान-उष्मा-मय-योग-मग्न थे,
दवाग्नि-वर्षा-मय-ग्रीष्म-काल में
स्व-ज्ञान-शैत्याश्रय-भोग-लग्न थे।[4]

***

---

१. ''वर्द्धमान'' : कवि अनूपशर्मा, सर्ग-८, श्लो.६७, पृ.२४५
२. वही, सर्ग-९, श्लो. १७, पृ.२६१
३. वही, श्लो. १९, पृ.२६१
४. वही, सर्ग-१५, श्लो. ७५, पृ.४५७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मालिनी : कविने जन्म से पूर्व वार्तालाप का चित्रण मालिनी छन्द में काव्य में वर्णित किया है। उसमें दो नगण, मगण, और दो यगण इस प्रकार प्रत्येक चरण पन्द्रह वर्णोंका होता है -

जय रति-पति ! तेरी हो, तुझे सर्वदा ही
कुलगुरू अबलाएँ मानती के लियें है,
पर अब जिस प्राणी को सखे ! जन्म देगा,
वह विजित तुझे भूमी में आ करेगा। [१]

***

द्रुतविलम्बित : वीर प्रभु का जन्म के समय की छवि का द्रुतविलम्बित छन्द में कविने काव्य में चित्रण अंकित किया है। उसमें नगण, दो भगण और रगण इस प्रकार प्रत्येक चरण में १२ होते हैं -

हृदय की प्रति-मूर्ति बहिर्गत।
भवन की सुषमा छवि ईश की,
तनय हो अवतीर्ण हुई, अहो।
शुभ-विदेह धराधिप-धाम में। [२]

***

कविने भगवान महावीर के शब्दों में उद्बोधन देते हुए शार्दूलविक्रीडित छन्द का सुंदर प्रयोग काव्य में किया है। यह छन्द में मगण, सगण, जगण, सगण, दो तगण और गुरु इस प्रकार प्रत्येक चरण में १९ वर्ण होते हैं -

इस में बारहवें वर्ण पर यति होती है -

भव्यों ! है यह मेदिनी शिविर-सी जाना पडेगा कभी;
आगे का पथ ज्ञात है न, इससे सद्बुद्धि आये न क्यों।
ले लो साधन धर्म के, न तुम् को व्यापे व्यथा अन्यथा,
है जैनेन्द्र-पदारविन्द-तरणी संसार पाथोधि की। [३]

***

---

१. "वर्द्धमान" : कवि अनूपशर्मा, सर्ग-१ पद सं. १४०, पृ.७०
२. वही, सर्ग-८ पद सं. ९७, पृ.२५३
३. वही, पद सं. २४३, सर्ग-१७, पृ.५८५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोहा :

इस छन्द के पहले और तीसरे चरणों में १३ मात्राएँ होती हैं तथा दूसरे और चौथे चरणों में ११ मात्राएँ। इस प्रकार प्रत्येक दल में २४ मात्राएँ रहती हैं। सम (दूसरे-चौथे)चरणों के अन्त में गुरु-लघु रहना चाहिए।

नजर न लग जाये कहीं, तिलक लगा दे श्याम।
मुँह पर मेरी पुतलियाँ सदा श्याम सुखधाम॥ [१]

***

एक सहस वसु अधिक जे, लक्षण जिनवर देह।
पृथक् पृथक् कछु वरनऊँ, आगम अर्थ सनेह॥ [२]

***

दरशनकर सुरराज इम, सन्मति सार्थक नाम।
कर्म निकन्दन वीर है, वर्धमान गुणधाम॥ [३]

***

अब सुन क्षेत्र जु ऋद्धि को, वरनौ शाखा दोय।
प्रथम अधिन्न महानसी, क्षेत्र महालय होय। [४]

***

चैत्यालय उत्कृष्ट जुत, मध्यलोक परमान।
चउसय अट्ठावन प्रमिति, व्यतर अधिक बखान॥ [५]

***

प्रथम सौधर्म इन्द्र के हाथ, कलश दये दे वन सब साथ।
एक सहस वसु भुजा कराय, सकल कलश ढारे हर्षाय॥ [६]

***

---

१. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "जन्मज्योति", सर्ग-४, प-.१९
२. "वर्द्धमान" : कवि नवलशाह, नवम् अधिकार, पद सं. १५, पृ.८७
३. वही, अष्टम् अधिकार, पद सं. ८१, पृ.८२
४. वही, दशम् अधिकार, पद सं. २४१, पृ.१२९
५. "वर्द्धमान पुराण" : नवम अधिकार, पद नं. २३३, पृ.९८
६. वही, अष्टम् अधिकार, श्लो.४६, पृ.८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छप्पय :

छप्पय में कुल छह चरण होते हैं। उनमें पहले चार रोला के २४-२४ मात्राओं के (११-१३ की यतिसे) और अन्तिम दो उल्लाल के २८-२८ (१५-१३ पर यति से) मात्राओं या २६-२६ (१३-१३ परयति से) मात्राओं भी होती हैं।

जा पूरव अवतारमास, षट तै नव लौं वर,
बरसे रत्न अमोल, सुभग छविवन्त पिता घर।
देखसु अतिशय रुप, हेमगिरि करयौन्वहेन सुर,
नृपतिभयौ नहिं सोई, किए तब सहस अक्ष उर।
वर्द्धमान श्रियवर्द्ध अति, मान कीर्ति जगमें सही,
मान वर्द्ध हिरदै नहीं, सुवर्द्धमान वासव कही।[1]

***

कवि की लघुता का वर्णन :

सारस्वत नहि पठ्यौ, काव्य पिंगल नहि सिख्यौ।
तरक छन्द व्याकरण, अमरकोष हि नहि दिख्यौ॥
अल्पवृद्धि थिर नांहि, भक्तिवश भाव बढायौ द्रव।
जिन मत के अनुसार, ग्रन्थ को पाल लगयौ॥
बुद्धिवन्त सज्जन विनय, हास्य भाव मत कोई करो।
तुकहीन छन्द जो अमिल जौ, तो तो विचार अक्षरों धरौं॥[2]

***

सोरठा :

सोरठा के विषम (पहले-तीसरे) चरणों में ११ और सम (दूसरे चौथे) चरणों में १३ अर्थात् प्रत्येक दल में २४ मात्राएँ होती हैं इसके पहले-तीसरे चरणों में तुक मिलती है।

किंचित तप नहिं कीन, दान सुपात्रै न दियौ।
जिन पूजा कर हीन, अशुभ कर्म पोतै परै॥[3]

---

१. "वर्द्धमान पुराण" : कवि नवलशाह, प्रथम अधिकार, श्लो.४, पृ.१

२. वही, षोडश अधिकार, पृ.२८३

३. वही, तृतीय अधिकार, पद सं. १५१, पृ.२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरसों सम ह्वै पाप मिथ्या, मेरु समान दुख।
प्राण अन्त बुध आप, ऐसी जान न कीजिये ॥ [१]

***

रोला :-

इस छन्द के प्रत्येक चरण में ११ और १३ के विराम से २४ मात्राएँ होती है। महावीर काव्य में कविने रोला छन्द का सुन्दर प्रस्तुतीकरण किया है-

सोना-चाँदी, रत्न-धान-धन अतुल सम्पदा,
दे डाली, निज हाथों से भूखे नंगों का।
और विश्व के लिए त्राण की राह खोजने,
चले तपाने, दहकाने, अपने अंगों को। [२]

***

सार : (ललितपद)

इस छन्द के प्रत्येक चरण में १६-२ पर यति से २८ मात्राएँ होती है, जैसे कवि ने "श्रमण भगवान महावीर" काव्य में इस ललितपद छंद को सुंदर ढंग से सँजोया है -

गाँवों की सीमा से बहर, एका पेड़ के नीचे,
पद्मासन में थे बैठे प्रभु, अपना ध्यान लगाए।
प्रतिपल उनकी शुद्ध चेतना, भीतर झांक रही थी,
रहे नाक के अग्र भाग पर, अपनी दृष्टि जमाए। [३]

***

त्रिभंगी :

इस छंद के प्रत्येक चरण में, १०, ८, ८, और ६ के विराम से ३२ मात्राएँ होती हैं। अन्त में गुरू होना चाहिए, एवं जगण वर्जित है-

सुरपति ने माला पहनाई, फिर कहाँ वीर ! जय हो जय हो।
ज्वाला जिसके तन पर जल है, तुम वह जय हो तुम वह लय हो ॥

---

१. "वर्द्धमान पुराण" : कवि नवलशाह, द्वितीय अधिकार, पद सं.१३२, पृ.१६
२. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेजयी, षष्टम् सोपान, पृ.२२३
३. वही, पंचम् सोपान, पृ.१९०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जल तुम को गला न पायेगा, तुम भ्राता हो तुम त्राता हो।
तुम पिता भुवन भर के दाता, तुम हर अनाथ की माता हो। [१]

***

कंचनमय झारी रतननि जारी,
क्षीर समुद्र जल सुख भरियं
शीतल हिमकारं पूजित सारं
ढारत अनुपम धार त्रयं
पूजत सुरराजं हर्ष समाजं,
जिनवर चरणं कमल जुमं
जग दुःख निवारं सब सुख कारं,
दायक सो शिवसुख परमं ॥ [२]

***

दुर्गुण से दुर्गुण बढ़ता है, बढ़ा बडी की होड़ पनपती।
अग्नि पुंज इधन से त्यों, आग अधिक से अधिक भड़कती ॥
विष के बाण विषैले अंकुर, फिर पौधा पादप बन जाता।
माया के फन्दे बंध जाते, जीव, जीव का अरि बन जाता ॥ [३]

***

चौपाई :

१६ मात्रा की इस चौपाई छन्द में चार चरणों का समान तुक और अन्तिम दो गुरू वर्ण या एक गुरू होने चाहिए।

यह मेरा तेरा सुत त्रिशला, शिशु पर न्यौछावर हो बोली।
रस और दूध से भीग गई दोनों माताओं की चोली ॥ [४]

---

१. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "जन्मज्योति" सर्ग-४, पृ.९९
२. "वर्द्धमान पुराण" : कवि नवलशाह, एकादश अधिकार, पद सं.१९९, पृ.१६०
३. "भगवान महावीर" : कवि शर्माजी, त्रयोदश सर्ग, पृ.१८८
४. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "जन्मज्योति", सर्ग-४, पृ.१००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैं लोभ हारकर पीडित हूँ, सन्मति ने जब सब कुछ छोड़ा।
मैं मोह पराजित भटक रहा, जब त्राता ने बन्धन तोड़ा ॥ [१]

***

कवित्त या मनहरण :

इस छन्द के प्रत्येक चरण में ३१ वर्ण होते हैं। इसमें सोलहवें वर्ण पर यति होती है। अन्तिम वर्ण गुरू (ड) होता है। शेष वर्णो के लिए लघु-गुरू के क्रम का कोई बन्धन नहीं होता-

वीतराग देव छद्मस्थ पनैं जोग और,
सूक्ष्म सांपराय और गुणस्थान जहीं हैं।
क्षुधा तृषा शीत उष्ण दंश मशक चरजा,
सेज्या सन बंधरु अलाभ रोग सही हैं॥
तृण स्पर्श मल स्पर्श प्रज्ञा एहि चतुर्दश,
परीषह कहूँ करम जोग तै लही हैं।
सबै मुनि उपशम गुणस्थान ताही लग,
बाईस परीषा उदैचारिततैं कहीं हैं ॥ [२]

***

गीतिका :

गीतिका के प्रत्येक चरण में १४-१२ की यति से २६ मात्राएँ होती है। अन्त में क्रमशः लघु-गुरू होते हैं। इस छन्द के प्रत्येक चरण के तीसरे, दसवें, सत्रहवें और चौवीसवें मात्रा स्थान पर लघु वर्ग होना चाहिए-

पाख मास उपास साधते, ध्यान धरि कालहि हनै।
जाहि भोजन निमित्त ग्रामहि, तहां विधि कछु नहि बनै॥
खेद उर तस करत नाहीं, परम समता थिर रहैं।
क्षुधा इहि विधि सहत जे मुनि, तिनहु के हम पद गहैं॥ [३]

---

१. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "उद्धार", सर्ग-१३, पृ.३१४
२. "वर्धमान पुराण" : कवि नवलशाह, दशम अधिकार, पद सं. ३१५, पृ.१३८
३. वही, पद सं. २९३, पृ.१३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समान सवैया :

समान सवैया के प्रत्येक चरण में ३२ मात्राएँ होती हैं १६, १६ मात्राओं पर यति रहती है। अन्त में दो गुरू होते हैं।

जितशत्रु की सुन्दर कन्या संग हम चाह रहे तेरी शादी,
है नाम यशोदा लड़की का अति रुपवान है शहजादी।
महाराजा भी आकर बोले यह उत्तर देना ही होगा,
यह प्रश्न जटिल बनता, जाता, इसको हल करना ही होगा॥[१]

***

सुनकर सेठानी गई तभी मेंढ़कको घर पर ले आई,
बस तभी ढिंढोरा सुना वीर पूजा की इसको सुधि आई,
इसने भी पूजा करने की निश्चय से तब मन में ठानी,
इक कमल पांखुड़ी मुंहमें ले चल दिया सुमर कर जिन वाणी,[२]

मत्तगयन्द सवैया :

सात भगण (ऽ।।)और दो गुरू (ऽऽ) के क्रम से २३ वर्णो का मत्तगयन्द सवैया होता है।

अम्बुज सौं जुग पाय बनै, नखर देख नरवत्त भयो भयभारी।
नूपुर की झनकार सुनै, द्दग शोर भयौ दशहू दिश भारी॥
कंदल थंभ बनै जुग जंघ, सुचाल चलै गज की पिय प्यारी।
क्षीण बनौ कटि केहरि सौ,तन दामिनि होय रही लज सारी॥[३]

***

हरिगीतिका :

इस छन्द के प्रत्येक चरण में १६-१२ के विराम से २८ मात्राएँ होती है, अन्त में लघु गुरू होते हैं -

सुरसरि की धारा हो जैसे-
शुद्ध भाव थे जगते।

---

१. "त्रिशलानन्दन महावीर" : कवि हजारीलाल, पृ.४४
२. वही, पृ.७३
३. "वर्धमान पुराण" : कवि नवलशाह, अधिकार-७, पद सं. ११०, पृ.७०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हस्तामलक सिद्धि थी सारी-
दूर नहीं कुछ लगते ॥ [१]

***

महावीर अनगार धर्म के-
लिए स्वतः उद्यत हैं।
त्याग मोह सम्पूर्ण परिग्रह-
जीवन में ही रत हैं ॥ [२]

***

कवियों ने प्रबन्ध काव्यों मे हिन्दी, संस्कृत छन्द के अलावा अड़िल्ल आदि प्राकृत छन्दों का भी सुंदर निर्वाह किया है।

छन्दबद्ध रचनाओं के उपरान्त परीक्षण करने पर अनुभव हुआ कि कवियों ने कहीं-कहीं शास्त्रीय छन्दों का प्रयोग नहीं भी किया है। यद्यपि काव्य का पठन करने पर उनके अन्त्यानुप्रास मिलते हैं। उनके अक्षरों और मात्राएँ भी प्रचलित शास्त्रीय छन्दों के समान ही लगती है। परन्तु उनके गण लघु-गुरु आदि नहीं मिलते हैं। कभी-कभी ऐसा लगता है कि सोलह या अट्ठाईस मात्रा का सरसीय या हरिगीतिका का छन्द है या चौपाई या सोरठा है। परन्तु इन छन्दों की कसौटी पर ये स्खलित मालूम होते हैं, लेकिन इनकी प्रवाहमयता और गति में, काव्य के पठन में या रसनिष्पत्ति में कोई बाधा नहीं आती है। इसीलिए ऐसे छन्दों को वजनी छन्द कहा जाता है। अर्थात् जो पद जिस छन्द के निकटवर्ती लगता है वह उसीका वजनीछन्द कहा जाता है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है देखिए। यह छन्द चौपाई के निकट है लेकिन चौपाई नहीं है-

जो देव विमान दिखा तुमको
उसका पल यही विचारा है।
वह जीव तुम्हारे गर्भाशय-
मैं सुर पुर त्याग पधारा है ॥ [३]

***

---

१. "जयमहावीर" : कवि माणकचन्द, सप्तम् सर्ग, पृ.७६
२. वही, अष्टम् सर्ग, पृ.७९
३. "परमज्योति महावीर" : कवि सुधेशजी, सर्ग-४, पृ.१३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैं चिरसे आश लगाये हूँ
अतएव मुझे न निराश करो।
परिणय की स्वीकृति दे बेटा।
पूरी मेरी अभिलाष करो॥[१]

***

भारत का कण कण बोल उठा, यह जन्म मुक्तिका उजियाला।
जिसमें हिम की शीतलता हो, ऐसी भी होती है ज्वाला॥
जो पशु बल अंकुश अजेय अवतीर्ण हुआ वह बलशाली।
रीता न रहा कोई दीपक, रीति न रही कोई थाली॥[२]

***

यह छन्द समान सवैया के निकट है, लेकिन समान सवैया नहीं है, इसीलिए हम इसको "समान सवैया" के वजन का छन्द कहेंगे।

महावीर ने उस देवी को संयम देकर,
मोक्ष पन्थ की उस पथिका को राह दिखाकर,
नारी के गौरव को था अक्षुण्ण बनाया,
चन्दनबाला को सतियों की मुख्य बनाकर[३]

***

यह छन्द रोला के निकटवर्ती है, किन्तु शास्त्रीय नियमानुसार यह रोला छन्द नहीं है, क्योंकि एक चरण में न मात्रा का मिलन हैं और न नियमानुसार विराम चिह्न है।

या शतदल हो गया बन्द
पंखुडियाँ सोई-
वातायन से चलकर आया
पवन हठीला -[४]

***

---

१. "परमज्योति महावीर" : कवि सुधेशजी, सर्ग-१०, पृ.२७७
२. "वीरायण" : कवि मित्रजी, "जन्मज्योति", सर्ग-४, पृ.९७
३. "श्रमण भगवान महावीर" : कवि योधेयजी, अष्टम् सोपान, पृ.३०५
४. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-१, पृ.११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विश्व का प्राचीन भारत देश
सिन्धु धोता चरण
हिम का या किरीट सुवेश-
खुल गया इतिहास लो प्राचीन-[1]

***

उपर्युक्त अछन्दस छन्द की रचना है। न चारों पंक्ति में छन्द की मात्रा मिलती है। एक चरण बड़ा है तो दूसरा चरण छोटा है। ऐसा होने पर भी कवि की काव्य-कौशलता के कारण भावों की गतिमयता में बाधा नहीं पहुँची है।

अंत में इतना ही कहूँगी कि कवियों ने संभवतः शास्त्रीय छंदों का प्रयोग किया है। जहाँ वह संभव नहीं हुआ वहाँ पर भी काव्य की गति, प्रवाह में कोई स्खलन नहीं आया। काव्य की गति बराबर बनी रही है। यह भी कवि का काव्य कौशलता ही है। यद्यपि छंद स्खलन है पर प्रवाहमहत्ता उसका सौंदर्य भी है।

ऐसे वजनी प्रवाहमय छंद के अनेक उदाहरण प्रबंध काव्यों में दृष्टव्य है।

सभी प्रबंध काव्यों के अध्ययन के पश्चात् इतना कहूँगी कि प्रायः सभी कवियों ने भावों के अनुरुप भाषा के साथ शास्त्रीय छंदो का या छन्दबद्ध (वजनी) छंदों का प्रयोग किया है।

*****

---

१. "तीर्थंकर महावीर" : कवि गुप्तजी, सर्ग-१, पृ.४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदर्भ ग्रंथसूचि

(अ) मूल प्रबन्ध काव्य ग्रन्थ

१. **वर्द्धमान**
ले. कवि अनूप शर्मा
काशी : भारतीय ज्ञानपीठ, १९५१ प्रथम संस्करण

२. **भगवान महावीर**
कवि डॉ. रामकृष्ण शर्मा
भरतपुर : कौडियान महोल्ला, सरस्वती सदन अप्रकाशन

३. **श्रमण भगवान महावीर चरित्र**
कवि अभयकुमार योधेय
मेरठ (उ.प्र.)भगवान महावीर प्रकाशन संस्थान,
वी/७०, जैन नगर, प्रथम संस्करण १९७६

४. **वीरायण**
कवि रघुवीरशरण मित्र
मेरठ : भारतोदय, प्रकाशन, प्रथम संस्करण, वीर निर्वाण सं. २५००

५. **चरम तीर्थंकर श्रीमहावीर**
आचार्य श्रीमद्विजयविद्याचन्द्रसूरि
राजगढ : श्री मोहनखेडा तीर्थ, १९७५, प्रथम संस्करण

६. **तीर्थंकर महावीर**
कवि छैलबिहारी गुप्त
इन्दौर : श्री वीर निर्वाण-प्रकाशन समिति,१९७६ प्रथमावृत्ति

७. **परम ज्योति महावीर**
कवि धन्यकुमार जैन सुधेश
इन्दौर : श्री फूलचंद जवरचंद गोधा जैन ग्रंथमाला
८, सर हुकमचंद मार्ग, १९६१, प्रथम संस्करण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. **जय महावीर, *कवि माणकचन्द,***
विकास प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स, बीकानेर (राज.)१९८६, प्रथम संस्करण

९. **त्रिशलानन्दन महावीर**
कवि हजारीमल जैन
सकरार (झाँसी) साहित्य सदन, द्वितीयावृत्ति,

१०. **वर्धमान पुराण**
कवि नवल शाह
देहली : श्री जैन साहित्य समिति,
१७६८, प्रथमावृत्ति

(ब) प्रयुक्त ग्रंथ सूचि (मूल ग्रंथ)

१. **अन्तकृतदशांगसूत्र**
अनु. हस्तिमलजी म.
जयपुर : सम्यज्ञान प्रचारक मण्डल, प्रथमावृत्ति, १९६५

२. **अन्तकृतदशांग प्र.सं. युवाचार्य मधुकरमुनि**
अनु. साध्वी श्री दिव्यप्रभा
श्री आगम प्रकाशन समिति
ब्यावर (राज.)१९८१ प्रथमावृत्ति

३. **आचारांगसूत्र**
अनु. श्री सौभाग्यचन्द्रजी म.
श्री महावीर साहित्य प्रकाशन मंदिर
माणेकचोक, अहमदाबाद, १९३६, प्रथमावृत्ति

४. **आचारांगसूत्र**
प्र. सं. युवाचार्य मधुकरमुनि
सं. चन्दसुराना "सरस"
श्री आगम प्रकाशन समिति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्यावर (राज.)१९८०, प्रथमावृत्ति.

५. **आचारांगचूर्णि, *जिनदास गणिवर्य***
रतलाम : ऋषभदेव केशरीमल

६. **आवश्यक चूर्णि भा.-१**
ऋषभदेव केशरीमल श्वे. संघ,
रतलाम (म.प्र.), १९२८

७. **उत्तरपुराण**
श्री गुणभद्राचार्य
अनु. सं. हीरालाल जैन
काशी : भारतीय ज्ञानपीठ, १९४४, प्रथमावृत्ति.

८. **उत्तराध्ययनसूत्र**
अनु. पं. श्री घेवरचंदजी बांठिया "वीरपुत्र"
अखिल भारतीय साधुमार्गी, जैन संस्कृति-रक्षक संघ,
सैलाना (म.प्र.)१९७४ प्रथमावृत्ति

९. **उत्तराध्ययन चूर्णि**
रतलाम : ऋषभदेव केशरीमल संस्था, १९३३.

१०. **उपासकदशांग**
प्र.सं. श्री युवाचार्य मधुकर मुनि
अनु. डॉ. छगनलाल शास्त्री
श्री आगम प्रकाशन समिति
ब्यावर (राज.)१९८०, प्रथमावृत्ति

११. **ऋग्वेद**
सं. विश्विबन्धुना
विश्वेश्वरानन्द : वैदिक शोध संस्थान, १९६४, प्रथमावृत्ति

१२. **कल्पसूत्र**
टीका : समयसुन्दरगणि
बम्बई, १९३९

१३. **कल्पसूत्र**
अनु. खरतरगच्छीय उपाध्यायश्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लक्ष्मीवल्लभगणि, भाषानुवादिका,
प.पू. श्री सज्जनश्रीजी म.जैन साहित्य प्रकाशन समिति,
कलकत्ता, सं. २०३८.

१४. **काव्यप्रकाश :**
आचार्य विश्वेश्वर,
बनारस : ज्ञानमण्डल लिमिटेड, १९६०, प्रथम संस्करण,

१५. **चउपन्न महापुरिस चरिय**
शीलाचार्य, अनु. सं. हेमसागरसूरि,
सूरत : जैन पुस्तेक फंड, १९६९, प्रथमावृत्ति

१६. **जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति**
टीका : शान्तिचन्द्र,
बम्बई, १९२०

१७. **जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति : ऋषभचरित : द्वितीय वक्षस्कार**
प्र. सं. युवाचार्य श्री मधुकर मुनि
अनु. डॉ. छगनलाल शास्त्री, मुख्य संपादक पं. शोभचन्द्र,
भारिल्ल
ब्यावर : श्री आगम प्रकाशन समिति, १९८६.

१८. **ज्ञाताधर्मकथा सूत्र**
सं. शोभचन्द्र भारिल्ल
अहमदनगर : श्री तिलोकरत्न -
स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बौर्ड, पाथर्डी
१९६४, प्रथमावृत्ति

१९. **ज्ञाताधर्मकथा**
युवाचार्य श्री मधुकरमुनि
अनु. पं. शोभचन्द्र भारिल्ल
ब्यावर : श्री आगम प्रकाशन समिति, १९८१, प्रथमावृत्ति.

२०. **ठाणं**
सं. मुनि नथमल
जैन विश्वभारती, लाडनूँ (राज.)सं. २०३३ प्रथम संस्करण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. (क). **तत्वार्थसूत्र :**
वाचक उमास्वाति प्रणीत, सं. कृष्णचन्द्र जैनागम दर्शनशास्त्री,
बनारस : श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम.

२२. (ख) **तत्वार्थसूत्र : उमास्वाति विरचित**
सं. डॉ. मोहनलाल मेहता
वाराणसी : पार्श्वनाथ विश्राश्रम शोध संस्थान

२३. (ग) **तत्वाधिगमसूत्र : उमास्वातिजी विरचित**
अनु. पं. शांतिलाल केशवलाल
अहमदाबाद : पालडी, जैन मर्चन्ट सोसायटी,
सं. २०४४, प्रथमावृत्ति,

२४. **तिलोय-पण्णीत्ती (त्रिलोक-पज्ञप्ति)भा.१.**
हिन्दी भाषा अनु. पं. बालचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री
शोलापुर : जैन संस्कृति संस्करण संघ, १९४३, प्रथमावृत्ति
तिलोयपण्णतह भाग-१
श्री यतिवृषभाचार्य
शोलापुर : जैन संस्कृति संरक्षण संघ, १९५६, प्रथमावृत्ति.

२५. (क) **त्रिषष्टीशलाकापुरूष चरित्र**
हेमचन्द्राचार्य,
अहमदाबाद : अरिहंत प्रकाशन, सं. २०४१. नवीन आवृत्ति

२६. (ख) **त्रिषष्टीश्लाकापुरूष चरित्र**
अनु. श्री कृष्णलाल वर्मा
बम्बई : श्री गोडीजी जैन मंदिर ज्ञान समिति.

२७. (ग) **त्रिषष्टीशलाकापुरूष चरित्र**
हेमचन्द्राचार्य
भावनगर : श्री जैन धर्म प्रसारक सभा, १९२६, आ.३

२८. **दशवैकालिक सूत्र**
शय्यंभवसूरि, सं. अमरमुनि
लाहौर : जैन शास्त्रमाला कार्यालय, १९४६, प्रथमावृत्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९. **दशवैकालिक चूर्णि**
मणिविजय सिरिज, भावनगर.

३०. **दीर्घनिकाय, *सं. महाबोथि,***
अनु. भिक्षुराहुल, भिक्षु जगदीश काश्यप, बनारस : महाबोधि सभा, १९३६.

३१. **दीघनिकायपालि**
प्रधान संशोधक - भिक्खु जगदीश
दिल्ली : पाली प्रकाशन मण्डल,

३२. **नन्दीसूत्र**
अनु. सं. आत्मरामजी म.
लुधियाना : आत्मराम जैन प्रकाश समिति
प्रथमावृत्ति, १९६६.

३३. **नन्दीसूत्र**
प्र., सं. श्री युवाचार्य मधुकरमुनि
अनु. साध्वी उमरावकुंवर अर्चना
ब्यावर : श्री आगम प्रकाश समिति
१९८२, प्रथमावृत्ति

३४. **निशीथचूर्णि**
सं. उपाध्याय अमरमुनि एवं
मुनि कनैयालाल "कमल"
सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, १९५७, प्रथम संस्करण

३५. **प्रवचनसार (पवयणसार)**
श्री मत्कुन्द कुन्दाचार्य विरचित :
अगास : श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम
चतुर्थ आवृत्ति, १९८४.

३६. **प्रवचनसारोद्धार भा. १**
नेमिचंद्रसूरि अनु. हीरालाल हंसराज
पालीताणा : मोहनलाल गोविंदजी, १९२२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७. **भगवती सूत्र भा. १-२**
वृत्ति अभयदेवसूरि, अनु. बेचरदास जीवराज
बम्बई : जैनागम प्रकाशन संस्था, प्रथमावृत्ति १९१३, १९२३.

३८. **भगवतीसूत्र (व्याख्या प्रज्ञप्ति)भा. १**
गणधर भगवान सुधर्मास्वामी प्रणीत **अनु.** घेवरचंद बांठिया "वीरपुत्र", सैलाना : अ.भा.सा. जैन संस्कृति रक्षक संघ, १९६४.

३९. **भगवतीसूत्रसार भा.४**
पूर्णानन्दविजयजी म.
साठंबा : विद्याविजयजी स्मारक ग्रंथमाला, १९८१, प्रथमावृत्ति

४०. **भगवती - भा.१**
युवाचार्य श्री मधुकरमुनि
सं. अनु. श्री अमरमुनि
ब्यावर : श्री आगम प्रकाशन समिति, १९८२, प्रथमावृत्ति.

४१. **भगवतीसूत्रसार संग्रह भा.२**
मुनि श्री विद्याविजयजी म.
साठंबा : श्री विद्याविजयजी स्मारक ग्रंथमाला, १९८० प्रथमावृत्ति,

४२. **श्रीमद् भागवत भा. १-२.**
महर्षि वेदव्यास
गोरखपुर : गीताप्रेस, १९५१, द्वितीय संस्करण

४३. **महानिशीथसूत्र (आगम-सुधा-सिन्धु)**
दशमो विभाग : शांतिपुरी :
श्री हर्षपुष्पामृत जैन ग्रन्थमाला लाखाबादल,

४४. **महापुराण भा.१**
जिनसेनाचार्य सं. जन. पं. पन्नालाल
काशी : भारतीय ज्ञानपीठ, १९५१.

४५. **महापुराण भा. १.**
महाकवि पुष्पदन्त विरचित
सं. डॉ. पी. एल. वैद्य
अनु. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, १९७९, प्रथम संस्करण

४६. **श्री महाभारत**
महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास प्रणीत भा.७
बम्बई : भद्र समीप कालबादेवी रोड

४७. **महाभारत शांतिपर्व,** अनु. सं. शास्त्री गिरजाशंकर भायाशंकर
अहमदाबाद : सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय, १९२६, पंचमावृत्ति.

४८. **विशुद्धिमार्ग भा.१**
आचार्य बुद्धघोषकृत
अनु. त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्म रक्षित
वाराणसी : महाबोधि सभा, सारनाथ, प्रथम संस्करण १९५६.

४९. **समयसार**
श्री मत्कुन्दकुन्दाचार्य विरचित
सं. मनोहरलाल शास्त्री
बम्बई : जैन ग्रंथ उद्धारक कार्यालय,
१९१९, प्रथमावृत्ति

५०. **समयसार**
आचार्य कुन्दकुन्द सं. बलभद्र जैन
दिल्ली : श्री कुन्दकुन्द भारती
७-ए राजपुर रोड, १९७८, प्रथमावृत्ति.

५१. **समयसार**
श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य विरचित :
सं. पं. पन्नालाल जैन
अगास श्रीमद् राजचंद्र आश्रम,
१९८२, तृतीय संस्करण,

५२. **समवाओ**
सं. विवेचक युवाचार्य महाप्रज्ञ
लाडनूं (राज.) : जैन विश्वभारती,
१९८४, प्रथम संस्करण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५३. **समवायांगसूत्र**
प्र.सं. युवाचार्य श्री मधुकर मुनि
अनु. पं. हीरालाल शास्त्री
ब्यावर : श्री आगम प्रकाशन समिति , १९८२, प्रथमावृत्ति.

५४. **सांख्यकारिका**
डॉ. ब्रजमोहन चतुर्वेदी, दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, १९६९, प्रथम संस्करण.

५५. **सूत्रकृतांग गम टीका : शीलाचार्य**
सं. अम्बिकादत्तजी ओझा
राजकोट श्री राजकोट स्थानकवासी संघ, सं. १९९३, प्रथमावृत्ति.

५६. **सूत्रकृतांगसूत्र भा. १-२**
प्र. सं. युवाचार्य श्री मधुकर मुनि, चंदसुराना "सरस"
ब्यावर : श्री आगम प्रकाशन-समिति, १९८२, प्रथमावृत्ति.

५७. **स्थानांग**
प्र. सं. युवाचार्य श्री मधुकरमुनि
अनु. हीरालाल शास्त्री
ब्यावर : श्री आगम प्रकाशन समिति,१९८१, प्रथमावृत्ति.

५८. **हरिवंशपुराण**
आचार्य जिनसेन
सं. अनु. पं. पन्नाला जैन
वाराणसी : भारतीय ज्ञानपीठ, १९४४, प्रथमावृत्ति

(क) समीक्षात्मक ग्रन्थ

१. **श्री अमरचंद्रसूरिजी**
श्री तीर्थंकर चरित्र, १९९३, श्री जैन आत्मानंद सभा, भावनगर.

२. **श्री अमोलखऋषिजी,**
अनु.श्री घेवरचंदजी, १९७९, श्री लक्ष्मी पुस्तक भंडार, गाँधीरोड़, ब्रीज निकट, अहमदाबाद।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. **सं. डॉ. अशोककुमार सिंह**
श्रमण पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी - ५

४. **श्री कल्याण विजयगणी**
श्रमण भगवान महावीर, १९९८ प्रथमावृत्ति
प्र. श्री. क. वि. शास्त्र संग्रह समिति, जालोर (राज.)

५. **श्री कुमार सत्यदर्शी**
क्रान्तिकारी महावीर
श्री जैन श्वेताम्बर महासभा-उत्तर प्रदेश मेरठ

६. **पंडित कैलाशचन्द्र शास्त्री**
जैन सिद्धान्त, १९८३, प्रथम संस्करण,
बी/४५-४७ कनॉट प्लेस, नयी दिल्ली - ११० ००१

७. **पं. कैलासचंद्र शास्त्री**
जैन धर्म, १९५५ तृतीय संस्करण
भारतीय दिगम्बर जैन संघ, चौरासी, मथुरा

८. **डॉ. कोमलचन्द्र जैन**
बौद्ध और जैन आगमों में नारी जीवन
सन् १९६७, प्र. सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति

९. **डॉ. गुणवंत शाह**
अनुवादक- डॉ. भानुशंकर मेहता
महामानव महावीर विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

१०. **सं. गोपालदास जीवाभाई पटेल**
श्री महावीर कथा, १९४१, प्रथमावृत्ति
श्री जैन साहित्य प्रकाश समिति,
केर ऑफ : गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद।

११. **मुनि श्री चन्द्रशेखरविजयजी**
त्रिभुवन प्रकाश महावीर देव सं. २०३६ पाँचवाँ संस्करण,
५०८२/३, दूसरी मंजिल, याज्ञिक इन्स्टिट्यूट के सामने,
रतनपोल के निकट, गाँधी रोड, अहमदाबाद -३८० ००१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. **मुनि श्री चन्द्रशेखरविजयजी**
विज्ञान और धर्म, सं. २०३२, तृतीय संस्करण,
५०८२/१३, दूसरी मंजिल, याज्ञिक इन्स्टिट्यूट के सामने,
रतनपोल के निकट, गांधीरोड, अहमदाबाद - ३८० ००१.

१३. **डॉ. जगदीशचन्द्र जैन**
महावीर वर्धमान, द्वितीय संस्करण, १९५३.
प्र.भारत जैन महामण्डल, वर्धा

१४. **डॉ. जगदीशचन्द्र जैन**
जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज,
सं. २०३२, प्रथम संस्करण
चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१.

१५. **जगदीशचन्द्र जैन**
भगवान महावीर, १९७७, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नयी दिल्ली.

१६. **जयभिक्खु**
भगवान महावीर, १९७२, चतुर्थ आवृत्ति,
चन्द्रनगर सोसायटी, जयभिक्खु मार्ग, आनन्दनगर, अहमदाबाद.

१७. **जवाहरचन्द्र पटनी**
श्री वर्द्धमान महावीर, १९७५, प्रथमावृत्ति,
श्री तीर्थेन्द्रसूरि स्मारक संघ, बामण्वाड़जी तीर्थ

१८. **श्री ज्ञानमुनि**
भगवान महावीर के पाँच सिद्धान्त, सं. २०१५, प्रथमावृत्ति,
आचार्य श्री आत्माराज जैन प्रकाशनालय,जैन स्थानक, लुधियाना.

१९. **डॉ. झिनकु यादव**
जैन धर्म की ऐतिहासिक रुपरेखा, १९८१, प्रथम संस्करण,
प्र. इण्डिक अकादमी, दिल्ली, वाराणसी।

२०. **आचार्य श्री तुलसी**
भगवान महावीर, १९७४, प्रथमावृत्ति,
जैन विश्वभारती प्रकाशन, लाडनूँ (राज.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. **डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री**
जैन धर्म और भगवान महावीर, १९७५, प्रथमावृत्ति
सिंघई खुन्नीलाल राधाबाई जैन ट्रस्ट
२३३, जवाहर मार्ग, मालगंज, चौराहा, इन्दोर (म.प्र.)

२२. **देवेन्द्रमुनिशास्त्री**
जैन दर्शन स्वरुप और विश्लेषण, १९७५, प्रथम प्रवेश
श्री तारकगुरू जैन ग्रन्थालय, शास्त्री सर्कल, उदयपुर, (राज.)

२३. **आचार्य देशभूषणजी**
भगवान महावीर और उनका तत्वदर्शन, सन् १९७३, प्रथमावृत्ति,
कुचाबुलाकी बेगम,
श्री जैन साहित्य समिति, ऐस्प्लेनेड रोड, दिल्ली-६.

२४. **धनंजय-** दशरुपकम्
चौखम्बा विद्याभवन, चौक, बनारस।

२५. **अनु. नगीनदास पारेख**
काव्यविचार, १९४४, प्रथमावृत्ति, गुजराती साहित्य परिषद, बोम्बे.

२६. **ले. मुनि नगराजजी म.**
आगम ओर त्रिपिटक : एक अनुशीलन
जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा, प्रथम संस्करण, १९६९.

२७. **मुनि नथमलजी म.**
सं. मुनि दुलहराज, १९७४, प्रथम बार
जैन विश्वभारती प्रकाशन, लाडनूं (राज)

२८. **डॉ. नगेन्द्र**
रस सिद्धांत
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण, १९६४.

२९. **डॉ. नेमीचन्द जैन**
वैशाली के राजकुमार तीर्थंकर, वर्द्धमान महावीर
श्री वीर निर्वाण ग्रंथ प्रकाशन समिति, इन्दौर (म.प्र.)

३०. **डॉ. नेमिचन्द शास्त्री**
तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परंपरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री भारत वर्षीय दि. जैन विद्धत्परिषद, १९७४ प्रथम

३१. **ले. सं. स्वर्गस्थ वकील नंदलाल लल्लुभाई**
श्री महावीरस्वामीचरित्र १९३६, तृतीयावृत्ति
श्री मुक्तिकमल जैन मोहनमाला, बड़ौदा।

३२. **मुनि श्री न्यायविजयज म.**
जैनदर्शन, १९८३, तृतीयावृत्ति,
श्री हेमचन्द्राचार्य जैन सभा, हैमचंद्र मार्ग, पाटन (उ.गु.)

३३. **पंय पट्चंद्रशास्त्री**
श्री वीर निर्वाण ग्रंथ प्रकाशन समिति, इन्दौर (म.प्र.)१९७४, प्रथम.

३४. **डॉ. प्रेमसागर जैन**
हिन्दी भक्ति काव्य और कवि, १९६४, प्रथम संस्करण
अलीपुरपार्क प्लेस, कलकत्ता-२७.

३५. **ले. आचार्य बलदेव उपाध्याय**
भारतीय दर्शन, १९६०, षेष्ठ संस्करण,
शारदा मंदिर, रवीन्द्रपुरी, बुगकुण्ड वाराणसी-५

३६. **श्री भरतमुनि**
सं. श्री बाबुलाल शुक्ल, शास्त्री, २०-२९ प्रथम संस्करण
चौखम्बाा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी-१.

३७. **श्री भुवनविजयजी म.सा.**
महावीर दर्शन, २०३१, प्रथमावृत्ति
श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ, कटक (ओड़िसा)

३८. **ले. श्री मधुकरमुनि, श्री रतनमुनि, श्री चंद सुराना "सरस"**
तीर्थंकर महावीर, १९७४, सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा-२.

३९. **महेन्द्रकुमार फुसकेले**
तीर्थंकर, १९७५, प्रथम संस्करण
जनता प्रेस प्रकाशन, सागर नमकमण्डी, कटरा बाजार, सागर (म.प्र.)

४०. **डॉ. मोहनलाल मेहता-** जैन धर्म-दर्शन १९७३,
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी-५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१. **मोहनलाल मेहता**
जैन-दर्शन १९५९, प्रथम पदार्पण,
श्री सन्मति ज्ञानपीठ, लोहमण्डी, आगरा।

४२. **मुनि श्री यशोविजयजी**
तीर्थंकर भगवान श्री महावीर, सं. २०२९, प्रथमावृत्ति
जे. चित्तरंजन एण्ड कुं. ३१२ मेकर भवन ३,
२१, न्यु मरीन लेन्स, बम्बई-४०० ०२०.

४३. **रतिभानुसिंह "नाहर"**
प्राचीन भारत का राजनैतिक और सांस्कृतिक इतिहास
द्वितीय संस्करण, १९६१.
किताब महल प्राइवेट लिमिटेड, रजि. ओफिस
५६-ए, जीरो रोड, इलाहाबाद।

४४. **सं. डॉ. रमेश सु. बेटाई**
भारतीय साहित्य विचार मंजुषा खंड-१
यूनिवर्सिटी ग्रंथनिर्माण बोर्ड, अहमदाबाद-६. प्रथम १९७५.

४५. **ले. राजवशं सहाय ""हीरा," अलंकार शास्त्र की परंपरा**
चौखम्बा संस्कृत सीरीझ आफिस,
वाराणसी-१ प्रथम - संस्करण, २०२६.

४६. **ले. राजेन्द्रमुनि**
सं. लक्ष्मण भटनागर, भगवान महावीर जीवन और दर्शन
श्री तारक गुरू जैन ग्रंथालय, उदयपुर (राज.)१९७४.

४७. **ले. राजेन्द्रमुनि शास्त्री**
सं. श्री लक्ष्मण भटनागर जैन धर्म,
प्रकाशन वही. सं. २०३८.

४८. **सं. श्री राजेन्द्रविजयजी म.**
श्रमण भगवान श्री महावीर जीवन दर्शन, सं. २०३७
श्री महावीर तत्वज्ञान प्रचारक मण्डल, अंजार (कच्छ)

४९. **रामधारीसिंह दिनकर**
संस्कृति के चार अध्याय, १९६२, तृतीय संस्करण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदयाचल आर्यकुमार रोड, पटना-४.

५०. **पं. रामबहोरी शुक्ल**
काव्यप्रदीप, १८७६, नवीन संस्करण
हिन्दी भवन, इलाहाबाद-२११ ००२.

५१. **आचार्य विजयेन्द्रसूरि**
तीर्थंकर महावीर भा.१, १९६०, प्रथमावृत्ति
काशीनाथ सराक, यशोधर्म मंदिर,
१६६, मार्जवान रोड, अंधेरी, बम्बई-५८.

५२. **आचार्य विजयधर्मसूरिजी म.**
श्रमण भगवान महावीर, हिन्दी प्रथमावृत्ति, सं. २०३१.
श्री मुक्तिकमल जैन मोहन ग्रंथमाला, बड़ौदा.

५३. **आचार्य श्री विजयधर्मसूरिजी म.सा.**
सं. श्री यशोविजयजी, सं. २०४२, चतुर्थावृत्ति
श्री मुक्तिकमल जैन मोहन ग्रंथमाला,
रावपुरा, कोठी पोल, नंदकुंज, बड़ौदा.

५४. **वीरेन्द्रकुमार जैन**
अनुत्तर योगी : तीर्थंकर महावीर, भा.१, १९६४, प्रथमावृत्ति
श्री वीर निर्वाण ग्रंथ प्रकाशन समिति, इन्दौर (म.प्र.)

५५. **श्री वीरेन्द्रकुमार सकलेचा एवं रामधन शर्मा**
श्री अमर भारती, १९६६, अंक-४, पृ.५, ॥
श्री सोनाराम जैन मन्त्री, सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा-२.

५६. **श्री वीरेन्द्रकुमार एवं चन्द्रसुराना "सरस"**
श्री अमरभारती, १९६८, अंक-३, पृ.१०३, १०, प्रकाशक-वही.

५७. **शांतिलाल शाह**
महावीर दर्शन, सं. २०२३ द्वितीयवृत्ति
मेघराज जैन पुस्तक भंडार, गोडीचाल, झीका स्ट्रीट, बोम्बे-२.

५८. **डॉ. शिखरचन्द जैन-** जैन धर्म और दर्शन
बाहुबली पब्लिकेशन्स, २१/८, शक्तिनगर, दिल्ली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५९. (१) **डॉ. शेखरचन्द्र जैन**
जैन धर्म सिद्धान्त और आराधना,
समन्वय प्रकाशन, ६, उमियादेवी सोसायटी नं.२
अमराईवाडी, अहमदाबाद-३८० ०२६.

६०. (२) **राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी काव्यकला**
प्रकाशन वर्ष १९७२, जयपुर पुस्तक भवन, जयपुर.

६१. **सत्यकेतु विद्यालंकार**
भारत का प्राचीन इतिहास, १९६० द्वितीय संस्करण
सरस्वती सदन, मसूरी.

६२. **सं. समदर्शी**
अनु. सरोज शाह
भगवान महावीर, हिन्दी संस्करण, प्रथम प्रवेश १९६७.
पूज्य आत्माराम जैन प्रकाशन समिति, लुधियाना.

६३. **सं. डॉ. सागरमल जैन**
श्रमण १९८४, अं. ६ पृ.३.१५, २०, २४, २७, २९.

६४. **सं. सिरेमल सेठिया**- स्मारिका
श्री वर्धमान युवक मण्डल, बिरलाग्राम, नागदा (म.प्र.)

६५. **पं. सुखलालजी संघवी**
जैन धर्म का प्राण, १९६५, प्रथमावृत्ति,
सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली.

६६. **पं. सुखलालजी संघवी**
भारतीय तत्व विद्या, १९६०.
ज्ञानोदय ट्रस्ट, अनेकान्त विहार, अहमदाबाद-९.

६७. **पं. सुखलालजी**
दर्शन और चिंतन, भा.१. १९५७.
सन्मति समिति, गुजरात विधानसभा, भद्र, अहमदाबाद-१.

६८. **सुरेशमुनि**
सन्मति महावीर, सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६९. **मुनि सुशीलजी म.**
जैन धर्म, १९५८, प्रथमावृत्ति,
श्री अखिल भारतीय श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस, नई दिल्ली.

७०. **ले. हर्षचंदजी म.सा.**
सं. पनजीदास नारायणजी
श्री, महावीरचरित्र, १९४५, द्वितीयावृत्ति
प्र.शाह नानालाल धरमशी बुकसेलर एण्ड पब्लिशर, भावनगर।

७१. **हजारीप्रसाद द्विवेदी**
भारतीय नाट्यशास्त्री की परम्परा और दशरुपक्रम
राजकमल प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड,८, फैजबाजार, दिल्ली-६.

७२. **ले. एवं निर्देशक आचार्य हस्तीमलजी म.**
सं. श्री देवेन्द्रमुनिशास्त्री आदि
जैन धर्म का मौलिक इतिहास, जयपुर : जैन इतिहास समिति,
प्रथम संस्करण, १९७१.

७३. **ले. डॉ. हीरालाल जैन**
भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान
व्याख्यान भाग-१
भोपाल : मध्य प्रदेश शासन साहित्य परिषद

७४. **तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदयतीर्थ**
मंत्री पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए-४, बापूनगर, जयपुर (राज.)
प्रथम संस्करण, १९७४.

७५. **श्री अमर भारती, अंक-३ सन् १९६८**
उपाध्याय अमरमुनि
श्री सन्मति ज्ञान पीठ
आगरा-२.

*****

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री जिनकुशलसूरि दादावाडी सांचोर (राज.)

दादावाडी प्रेरिका :

प.पू.स्व.प्र.श्री विचक्षणश्रीजी म.सा.की सुशिष्या

सांचोर खरतरगच्छ उद्धारिका

प.पू.श्री मनोहरश्रीजी म.सा.एवं मुक्तिप्रभाश्रीजी म.सा.सा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org